MAHN402CCT

# भारतीय साहित्य

एम.ए.

(चतुर्थ सेमेस्टर के लिए)

पेपर – 14


**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© **Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad**

Course : Bharatiy Sahitya

**ISBN: 978-81-XXX=-XX-X**
**First Edition: November, 2024**

| | | |
|---|---|---|
| Publisher | : | Registrar, Maulana Azad National Urdu University |
| Edition | : | 2024 |
| Copies | : | 500 |
| Price | : | 313/- |
| Copy Editing | : | Dr. Wajada Ishrat, MANUU, Hyderabad |
| | | Dr. L. Anil, DDE, MANUU, Hyderabad |
| Cover Designing | : | Dr. Mohd. Akmal Khan, DDE, MANUU, Hyderabad |
| Printing | : | Print Time & Business Enterprises, Hyderabad |

**Bharatiy Sahitya**

**For**

**M.A. Hindi**

4th Semester

*On behalf of the Registrar, Published by:*

**Directorate of Distance Education**

Maulana Azad National Urdu University

Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat

*Director:*dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in

Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

*© All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher (registrar@manuu.edu.in)*

## संपादक

**डॉ. आफ़ताब आलम बेग**
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

## Editor

**Dr. Aftab Alam Baig**
Assistant Registrar
DDE, MANUU

## संपादक-मंडल
## (Editorial Board)

**प्रो. ऋषभदेव शर्मा**
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिन्दी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय,
मानू

**Prof. Rishabha Deo Sharma**
Former Head, P.G. and Research
Institute, Dakshin Bharat Hindi Prachar
Sabha, Hyderabad
Consultant (Hindi), DDE, MANUU

**प्रो. श्याम राव राठोड़**
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.,हैदराबाद

**Prof. Shyamrao Rathod**
Head, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

**प्रो. गंगाधर वानोडे**
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, सिकंदराबाद, हैदराबाद

**Prof. Gangadhar Wanode**
Regional Director
Central Institute of Hindi
Secunderabad, Hyderabad.

**डॉ. आफ़ताब आलम बेग**
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

**Dr. Aftab Alam Baig**
Assistant Registrar, DDE, MANUU

**डॉ. वाजदा इशरत**
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

**Dr. Wajada Ishrat**
Guest Faculty/Assistant Professor
(Cont.)
DDE, MANUU

**डॉ. एल. अनिल**
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

**Dr. L. Anil**
Guest Faculty/Assistant Professor
(Cont.)
DDE, MANUU

**पाठ्यक्रम-समन्वयक**

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

| लेखक | इकाई संख्या |
|---|---|
| • **डॉ. वाजदा इशरत,** अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफेसर (सं), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू | 1, 2 |
| • **प्रोगोपाल शर्मा** ., पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग अरबा मींच विश्वविद्यालय, इथियोपिया (पूर्व अफ्रीका( | 3, 4, 5 |
| • **डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा**, एसोसिएट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नै | 6,7,12 |
| • **प्रो. देवराज**, पूर्व अधिष्ठाता, अनुवाद विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा | 8, 9 |
| • **डॉ. जी. वी रत्नाकर**, एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मानू, हैदराबाद | 10 |
| • **डॉ. एल. अनिल**, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफेसर(सं), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू, हैदराबाद | 11, 16 |
| • **श्री ,प्रवीण प्रणव** .वरिष्ठ निदेशक (प्रोग्राम मैनेजमेंट), माइक्रोसॉफ्ट हैदराबाद , | 13 |
| • **डॉ. शशिबाला**, पूर्व हिन्दी अध्यापक, केंद्रीय विद्यालय, राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद | 14, 15 |

# विषयानुक्रमणिका


| | | | |
|---|---|---|---|
| संदेश | : | कुलपति | 7 |
| संदेश | : | निदेशक | 9 |
| भूमिका | : | पाठ्यक्रम–समन्वयक | 11 |

| खंड/ इकाई | | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| खंड 1 | : | | |
| इकाई 1 | : | भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप | 13 |
| इकाई 2 | : | भारतीय साहित्य का अंतः संबंध | 33 |
| इकाई 3 | : | भारतीय साहित्य की अवधारणा एवं विकास | 43 |
| इकाई 4 | : | भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं | 58 |
| खंड 2 | : | | |
| इकाई 5 | : | भारतीय साहित्य की मुख्य धाराएं | 72 |
| इकाई 6 | : | 'तेलुगु साहित्य का इतिहास : मध्यकाल तक | 88 |
| इकाई 7 | : | तेलुगु साहित्य का इतिहास : आधुनिक काल | 106 |
| इकाई 8 | : | बाङ्ला साहित्य का इतिहास (प्राचीन और मध्यकाल) | 130 |
| खंड 3 | : | | |
| इकाई 9 | : | बाङ्ला साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल) | 155 |
| इकाई 10 | : | संस्कार उपन्यास: तात्विक विवेचन | 182 |
| इकाई 11 | : | घासीराम कोतवाल : वस्तु और समीक्षा | 197 |
| इकाई 12 | : | तेलुगु उपन्यास : आखिर जो बचा (बुच्चिबाबु) | 205 |

खंड 4 :
इकाई 13 : पंजाबी कवि पाश की निर्धारित कविताओं का विवेचन 224
इकाई 14 : ओडिया कवि सीताकान्त महापात्र की निर्धारित कविताओं का विवेचन 249
इकाई 15 : मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की निर्धारित कविताओं का विवेचन 267
इकाई 16 : 'तेलुगु कविता : जल रहीं झोपड़ियाँ कविता संग्रह – बोई भीमन्ना 282
**परीक्षा प्रश्नपत्र का नमूना**

प्रूफ रीडर:

**प्रथम** : डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर(सं),
दू. शि. नि., मानू

**द्वितीय** : डॉ. एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (सं),
दू. शि. नि., मानू

**अंतिम** : डॉ. आफ़ताब आलम बेग, सहायक कुलसचिव, दू. शि. नि., मानू.

# संदेश

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह NAAC मान्यता प्राप्त एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का अधिदेश है: (1) उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार और विकास (2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, और (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। यही वे बिंदु हैं जो इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग करते हैं और इसे एक अनूठी विशेषता प्रदान करते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर जोर दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी समुदाय के लिए समकालीन ज्ञान और विषयों की पहुंच को सुविधाजनक बनाना है। लंबे समय से उर्दू में पाठ्यक्रम सामग्री का अभाव रहा है। इस लिए उर्दू भाषा में पुस्तकों की अनुपलब्धता चिंता का विषय रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू विश्वविद्यालय मातृभाषा / घरेलू भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री प्रदान करने की राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा बनने को अपना सौभाग्य मानता है। इसके अतिरिक्त उर्दू में पठन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण उभरते क्षेत्रों में अद्यतन ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने या मौजूदा क्षेत्रों में नए ज्ञान प्राप्त करने में उर्दू भाषी समुदाय सुविधाहीन रहा है। ज्ञान के उपरोक्त कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री की अनुपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीनता का वातावरण बनाया है जो उर्दू भाषी समुदाय की बौद्धिक क्षमताओं को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है। ये वह चुनौतियां हैं जिनका सामना उर्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। स्व-अध्ययन सामग्री का परिदृश्य भी बहुत अलग नहीं है। प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में स्कूल/कॉलेज स्तर पर भी उर्दू में पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता पर चर्चा होती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम केवल उर्दू है और यह विश्वविद्यालय लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम प्रदान करता है, इसलिए इन सभी विषयों की पुस्तकों को उर्दू में तैयार करना विश्वविद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय अपने दूरस्थ शिक्षा के छात्रों को स्व-अध्ययन सामग्री अथवा सेल्फ लर्निंग मैटेरियल (SLM) के रूप में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराता है। वहीं उर्दू माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए भी यह सामग्री उपलब्ध है। अधिकाधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें, इसके लिए उर्दू में इलेक्ट्रॉनिक पाठ्य सामग्री अथवा eSLM विश्वविद्यालय की वेबसाइट से मुफ़्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि संबंधित शिक्षकों की कड़ी मेहनत और लेखकों के पूर्ण सहयोग के कारण पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च-स्तर पर प्रारंभ हो चुका है। दूरस्थ शिक्षा के छात्रों

की सुविधा के लिए, स्व-अध्ययन सामग्री की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए सर्वोपरि है। मुझे विश्वास है कि हम अपनी स्व-शिक्षण सामग्री के माध्यम से एक बड़े उर्दू भाषी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे और इस विश्वविद्यालय के अधिदेश को पूरा कर सकेंगे।

एक ऐसे समय जब हमारा विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना चुका है, मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि विश्वविद्यालय का दूरस्थ शिक्षा निदेशालय कम समय में स्व-अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकें तैयार कर विद्यार्थियों को पहुंचा रहा है। देश के कोने कोने में छात्र विभिन्न दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहे हैं। यद्यपि पिछले वर्षों कोविड-19 की विनाशकारी स्थिति के कारण प्रशासनिक मामलों और संचार में भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किए गए हैं।

मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस परिवार का अंग बनने के लिए ह्रदय से बधाई देता हूं और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

**प्रो. सैयद ऐनुल हसन**

कुलपति

# संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से हुआ और इस के बाद 2004 में विधिवत तौर पर पारंपरिक शिक्षा का आग़ाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए।

देश की शिक्षा प्रणाली को बेहतर अंदाज़ से जारी रखने में UGC की अहम् भूमिका रही है। दूरस्थ शिक्षा (ODL) के तहत जारी विभिन्न प्रोग्राम UGC-DEB से मंजूर हैं।

पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है कि दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के छात्रों के मेयार को बुलंद किया जाये। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक़ दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवत्तापूर्ण करके स्व-अध्ययन सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड- 24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार किया गया है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज़ पर आधारित कुल 17 पाठ्यक्रम चला रहा है। साथ ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम भी शुरू किए जा रहे हैं। शिक्षार्थियों की सुविधा के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बेंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकत्ता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 6 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह, अमरावती और वाराणसी) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क मौजूद है। इस के अलावा विजयवाड़ा में एक एक्सटेंशन सेंटर कायम किया गया है। इन क्षेत्रीय केन्द्रों के अंतर्गत 160 से अधिक अधिगम सहायक केंद्र (Learner Support Centre) और 20 प्रोग्राम सेंटर काम कर रहे हैं, जो शिक्षार्थियों को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (DDE) अपने शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल कर रहा है। साथ ही सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ़ ऑनलाइन तरीके से ही दिया जाता है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर शिक्षार्थियों को स्व-अध्ययन सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध है। इसके साथ-साथ शिक्षार्थियों की सुविधा के लिए SMS और व्हाट्सएप्प ग्रुप एवं ईमेल की व्यवस्था भी की गयी है। जिसके द्वारा शिक्षार्थियों को पाठ्यक्रम के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसेलिंग, परीक्षा आदि के बारे में सूचित किया जाता है। गत वर्षों से रेगुलर काउंसेलिंग के अतिरिक्त एडिशनल रेमेडियल क्लासेस(ऑनलाइन) उपलब्ध कराये जा रहे हैं। ताकि शिक्षार्थियों के मेयार को बुलंद किया जा सके।

आशा है कि देश की शैक्षणिक और आर्थिक रूप में पिछड़ी आबादी को आधुनिक शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी। आने वाले दिनों में शैक्षणिक जरूरतों के अनुरूप नई शिक्षा नीति (NEP 2020) के अंतर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों में परिवर्तन किया जायेगा और आशा है कि यह दूरस्थ शिक्षा को अत्यधिक प्रभावी और कारगार बनाने में मददगार साबित होगा।

**प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान**
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

# भारतीय साहित्य

# इकाई 1: भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मूल पाठ: भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.1 भारतीय साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा

1.3.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

1.3.3 भारतीय साहित्य के अध्ययन की अवश्यकता

1.3.4 भारतीय साहित्य के अध्यन की समस्याएँ

1.3.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

1.4 पाठ सार

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

1.6 शब्द संपदा

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

## 1.1 : प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं भारत एक विशाल देश है, यहाँ अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ रीति रिवाज और तौर तरीके हैं। जिस तरह गुलदस्ते में अलग-अलग रंग के फूल होते हैं, किन्तु उन सभी को मिलाकर एक छटा होती है, उसी तरह भारत की सभी भाषाएँ एक ही भारतीय संस्कृति प्रतिबिम्बित करती है। और यही एकता हमारे देश का प्राण है।

हम जानते हैं कि साहित्य और संस्कृति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सदियों से भारत बहुजातीय बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है। किन्तु भारत की यह बहुजातीयता यहां बसने वाली भारतीयों के विकास में कभी बाधक नहीं रही, बल्कि उनकी ताकत रही है। भारतीय भाषाओं का साहित्य अपनी विभिन्नता और वैशिष्ठय के बावजूद कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों में समान दिखता है। यह समानता ही भारतीय साहित्य का आधार है। आज हिंदी एकता की प्रतीक है। हिंदी पर संस्कृत की छाप दिखाई स्पष्ट दिखाई देती। हम देखते हैं कि छायावादी कवियों के काव्य में संस्कृत साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। हिंदी के साथ साथ इसका प्रभाव बंगला, मराठी, मलयालम, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं पर

भी है। जैसे हम देखते हैं कि राम के चरित्र को सीाी भाषाओं में गाया गया है; केवल उसमें नाम का अन्तर पाया जाता है। कहीं वह कम्ब रामायण हैं तो कहीं रंगनाथ रामायण, कहीं कृत्तिवास रामायण तो कहीं वह अध्यात्म रामायण कहा गया है। इन सभी रामायणों की भाषा भले ही अलग हो पर आत्मा सब की एक है।

सभी भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण में इतनी एकरूपता है, इतनी समानता है कि यदि एक को पढ़ने के बाद दूसरे का अध्ययन करें तो भाषा के फर्क को छोड़कर हमें यह पता ही नहीं चलता कि हम किसी अनजाने प्रदेश में आ गए हैं। वही पात्र है, वही प्रतीक है और वही जीवनदर्शन है, भेद या अन्तर केवल भाषा और लिपि में है। देशकाल के आधार पर यहाँ जातिगत और माषिक भिन्नता अवश्य है पर देशकाल से जुड़ी इन विभिन्नताओं के बावजूद हमें यहाँ एक अपूर्व अभिन्नता भी दिखलाई पड़ती है।

## 1.2 उद्देश्य

छात्रों ! प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय साहित्य के अर्थ एवं परिभाषा से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य के स्वरूप को समझेंगे।
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य के राष्ट्रीयता में योगदान से परिचित होंगे।

## 1.3 मूल पाठ: भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं स्वरूप

### 1.3.1 भारतीय साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय भाषाओं का साहित्य अपनी विभिन्नता और वैशिष्य के बावजूद कुछ मूलभूत प्रवृतियों में समान दिखता है। वह समानता ही भारतीय साहित्य का आधार है। भारतीय साहित्य का आशय स्पष्ट करते हुए डा. नगेन्द्र ने कुछ प्रवृतियों की चर्चा की है। प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की शुरूआत में नाथ साहितय रचा गया है। इस सम्प्रदाय का संगठन और दिशा निधारण चिंतन गोरखनाथ का रहा है इसलिए अनेक नाम पर रखे सम्प्रयाय को नाम पंथ कहा गया। मराठी और बांग्ला में नाथ सम्प्रदाय की धारा प्रबल रही है। दक्षिण में कर्नाटक के बसव के नेतृत्व में चले वीरशैव आंदोलन ने बचन साहित्य को जनम दिया। तमिल में शैव कवियों नायनारों की समृद्ध परम्परा रही

जैसा कि हम जानते हैं 'भारतीय साहित्य की अर्थ परिधि अत्यन्त व्यापक और जटिल है। स्थूल रूप में भारत की विविध भाषाओं के साहित्य की समष्टि का नाम भारतीय साहित्य है। भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है - भारत के उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू

भाषाएँ बोली जाती हैं। पूर्वी प्रदेश में उड़िया बंगला और असमिया, मध्य पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मल्यालम भाषा का विस्तार है। इसके अलावा कश्मीरी डोंगरी, सिंधी, कोकणी आदि भाषाएँ हैं, इनमें सभी भाषाओं का अपना साहित्य है। इनमें से अधिकांश भाषाएँ सभी दृष्टियों से बहुत ही समृद्ध है। इनमें वैदिक संस्कृत लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। इनमें से प्रत्येक साहित्य का अपना स्वतंत्रता और प्रखर वैशिष्टय है। जैसे तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु के द्विअर्थीकाव्य, मल्यालम के संदेशकाव्य, मराठी के पवाड़े, गुजराती के आख्यान, बंगाल का मंगलकाव्य, असमिया के बड़गीत, पंजाबी के वीरगीत, उर्दू की गज़ल और हिन्दी का रीतिकाव्य, छायावादी काव्य आदि। अतः भारतीय साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यों का संचित कोष है।

तात्विक रूप में भारतीय साहित्य एक इकाई है, उसका मिला जुला अस्तित्व है, जो भारतीय जीवन की अनेकता में एकता को अभिव्यक्त करता है। तामिल, तेलुगु, मराठी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी आदि विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त विभिन्न साहित्य एक होकर भारतीय साहित्य की पाने के अधिकारी है। अगर हम हिंदी साहित्य की बात करें तो उसमें खड़ी बोली के साहित्यकार प्रसाद, पंत, निराला, प्रेमचंद, अज्ञेय, यशपाल आदि की रचनाओं के साथ-साथ अवधी, ब्रज मैथिली आदि भाषाओं के साहित्यकार जायसी, सूर, तुलसी, विद्यापति आदि की कृतियों को भी हम समाहित करते हैं।

अतः निष्कर्ष के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि भारत सदियों से बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है।

डा. नगेन्द्र के अनुसार- "भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का नाम भारतीय साहित्य है और भारतीय मनीषा का अर्थ है, भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना सहस्त्राब्दियों से संचित अनुभूतियों और विचारों के नवनीत से जिसका निर्माण हुआ है। यह भारतीय मनीषा ही भारतीय संस्कृति, भारत की राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य का प्राणतत्व है"

**भारतीय साहित्य का अर्थ**

डा. इंद्रनाथ चैधरी के अनुसार भारतीय साहित्य के तीन अंग हैं-

1. संस्कृत साहित्य
2. भारतीय द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखा साहित्य
3. विभिन्न प्रांतीय भाषाओं जैसे हिंदी, बंगला, मराठी, तमिल आदि में लिखा गया साहित्य जिनमें विषय एवं भागवत एकसूत्रता स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

बी.के. गोकाक के अनुसार- "साहित्य की शैली, कथ्य, पृष्ठभूमि काव्यरूप संगीत तथा जीवन दर्शन सब मिलकर एक अभिन्न तत्व के रूप में भारतीय साहित्य को भारतीयता में प्रकट करते हैं।"

डा. राधाकृष्णन के अनुसार - "भारतीय वाङ्मय एक है जो विविध भाषाओं में रचा गया है" उपनिवेशवाद और आधुनिकता द्वारा शिक्षा संस्थानों की स्थापना से पहले

डा. सत्यभूष वर्मा के अनुसार - "भारतीय साहित्य की परिकल्पना अभी हमसे दूर है। भारतीय साहित्य के नाम से जो ग्रंथ अकादियों आदि द्वारा प्रकाशित होते हैं, उनमें भी अलग-अलग भाषा साहित्यों की चर्चा है, परंतु संपूर्ण भारतीय साहित्य की अंतर्धाराओं पर अधिक विचार नहीं किया गया है। भारतीय साहित्य की परिकल्पना में सबसे बड़ी बाधा अन्य साहित्यों की सीधी जानकारी की कमी है"

डा. रामविलास शर्मा के अनुसार- "प्राचीन संस्कृत साहित्य, पाली या अपभ्रंश साहित्य को भारतीय साहित्य नहीं मानते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य को भी भारतीय कहना वे युक्तिसंगत नहीं समझते। उनका कहना है कि अंग्रेज़ों से स्वाधीनता पाने के भारतीय जनता ने एक कायम रखी थी, इस तरह भारतीय साहित्य के इतिहास का अर्थ होगा अंग्रेज़ी और संस्कृत में भारतवासियों द्वारा लिखे हुए साहित्य का इतिहास। इसमें वह संस्कृत साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो 20वीं शती में, विशेषतः उसके उत्तराध में रचा गया है। इस प्रकार यह देखते हैं कि भारतीय साहित्य के अध्ययन में अनेक समस्याएँ देखी जाती है। जैसे

1. अनेक भाषाएँ
2. विविध विधाओं में हज़ारों रचनाएँ
3. वर्णीकरण में समानता की सीमाएँ
4. अनुवाद की समस्याएँ
5. तुलनात्मक अध्ययन की विपुलता

### 1.3.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य अगर भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आता है तो उसके ठोस कारण हैं। इन कारणों को रेखांकित करके ही भारतीय साहित्य का आशय समझा जा सकता है। ये कारण हैं:

(क) तमाम भारतीय प्रांतों का साझा अतीत। यह साझापन टकराहटों, संधियों, संघर्षों, समझौतों से निर्मित है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उतार चढ़ाव से भरी राजनीतिक

गतिविधियाँ अन्ततः संस्कृति और साहितय पर असर डालती रही हैं। साहित्य का विकास राजनीतिक घटनाक्रम से अप्रभावित नहीं रह सकता है।

(ख) सामाजिक संरचनाओं में एक सीमा एक अभिन्नता। समान सामाजिक पदानुक्रम अधिकांश हिस्सों में मौजूद है। जनता की चित्तवृत्ति की ज़मीन पर ही हुआ।

(ग) समान साहित्यिक और शास्त्रीय स्रोत। अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य का उपजीव्य एक है और वे समान काव्यशास्त्रीय मानदण्डों से सम्बद्ध होते हैं। इन उपजीव्य काव्यों पर शास्त्रों का 'अनुवाद' सभी प्रमुख भाषाओं में होता रहा है।

(घ) समान साहित्यिक आंदोलनों से जुड़ाव। साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के अखिल भारतीय स्वरूप का सबसे अच्छा उदाहरण मध्यकालीन भक्ति आंदोलन है।

जिस महादेश में थार जैसा रेगिस्तान हो, हिमाच्छादित प्रान्त हों, चेरापूँजी जैसा वर्षा क्षेत्र हो और समुद्र की गोद में बसे हुए इलाके हों वहीं की जीवन-शैली समरूप नहीं हो सकती। रहन-सहन में इतनी भिन्नता शायद ही कहीं और देखने को मिले। लेकिन, यह भी सच है कि जीवन-मूल्यों में जैसी समानता इस भिन्नता के आवरण के भीतर मौजूद है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन के लगभग एक से आदर्श, संस्कारों में समानता, स्थिति-विशेष में अभिन्न प्रतिक्रिया इस देश के समस्त भूभाग को आपस में जोड़ती है। आपको एक-सी बोध-कथाएँ सब जगह सुनने को मिलेंगी। लोक-गीतों, संस्कार गीतों में समान भावनाएँ प्रवाहित दिखेंगी। दृष्टांतों की अन्तर्वस्तु प्रायः एक-ही आदर्श को स्वीकारती प्रतीत होगी। पंचतंत्र, जातक, रामायण और महाभारत की कथाएँ इस देश की मिट्टी-पानी में घुली हुई हैं। ज्ञानानुशासनों के, शास्त्रीय मानदण्डों के स्रोत भी लगभग समान हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी, वात्स्यायन का कामसूत्र, धर्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र और धनुर्वेद के ग्रंथ सबके लिए संदर्भ रूप रहे हैं। साहित्यशास्त्र के आचार्य कुछ बुनियादी बातों पर सहमत दिखायी पड़ते हैं। उदाहरण के लिए हम व्याकरण को ले सकते हैं। काव्यशास्त्र के प्राचीनतम आचार्यों में से एक भामह (पाँचवीं-छठी शताब्दी) पाणिनी व्याकरण को श्रद्धा की चीज़ बताते हैं - 'श्रद्धेयं जगति मतं हि पाणिनीयं' (काव्यालंकार, पृष्ठ 63)। वामन (नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) इसी मत का अनुकरण करते हैं। उनके लगभग समकालीन ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन का कहना है: 'व्याकरण-मूलत्वात सर्वविद्यानम्'। सभी विद्याओं का मूल व्याकरण है। काव्य के लिए व्याकरण की अपरिहार्यता निर्देशित करते हुए काव्यमीमांसाकार राजशेखर (दसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) लिखते हैं: 'शब्दानामन्वाख्यानं व्याकरणम्'। शब्दों की सिद्धि करना व्याकरण का प्रयोजन है। इसी तरह से कुछ अन्य बुनियादी मसलों पर भारतीय साहित्याचार्यों में सहमति देखी-ढूँढी जा सकती है। यह संदर्भगत सहमति भारतीय साहित्य की निर्मिति का एक आधार है। लेकिन, भारतीय साहित्य का प्रमुख आधार काव्यशास्त्रीय मानदण्डों पर दीर्घकालिक विमर्श है। केरल से लेकर कश्मीर तक की साहित्यिक कृतियों की समालोचना के प्रतिमानों का

कभी कोई क्षेत्रीय रूप नहीं बना। यह अवश्य है कि काव्यशास्त्र के अधिकांश प्रारंभिक आचार्य कश्मीर प्रांत के थे पर उनके लिखे ग्रंथ भारत भर के काव्य रसिकों के बीच समादृत थे। संस्कृत को बेशक ज्यादा महत्व मिला हो, परन्तु भाषा के संबंध में ऊँच-नीच का भाव, उपेक्षा और बहिष्कार की प्रवृत्ति प्रायः नहीं रही है। वाङ्मय के भीतर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का परिगणन किया जाता रहा है। कुछ आचार्य (जैसे दण्डी) मिश्र भाषा को भी इन तीन भाषाओं के बाद जोड़ते हैं। काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में लक्षण-विवेचन-उदाहरण के प्रसंग में प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाएँ उसी समादर के साथ उद्धृत की जाती रही है जिस तरह संस्कृत की। नाटकों में तो भाषिक वैविध्य के प्रचुर उदाहरण उपलबध ही हैं। काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायों-अलंकार रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य का प्रसार प्रांतीय न होकर अखिल भारतीय रहा है। इसी तरह वे किसी भाषा-विशेष के काव्य शास्त्रीय सम्प्रदाय के रूप में सीमित नहीं रहे हैं। सहूलियत के लिए भले ही उन्हें संस्कृत का काव्यशास्त्र कह दिया जाता हो, परन्तु वे भारतीय वाङ्मय के काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय हैं। आज भी तमाम आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का इनसे गहन संबंध बना हुआ है। मराठी, बांग्ला, हिंदी, कन्नड़ जैसी भाषाओं का काव्यशास्त्र तथाकथित संस्कृत काव्यशास्त्र से कितना भिन्न है यह विचार का विषय है। भारतीय साहित्य की निर्मिति का यही आधार है। सघन संवाद के लम्बे इतिहास ने इसे निरंतर जीवंत रखा है, विस्तृत किया है और पुख्ता बनाया है।

### 1.3.3 भारतीय साहित्य के अध्ययन की अवश्यकता

प्रत्येक समाज की अपनी गतिकी होती है। समाज का गतिविज्ञान समझने के लिए उसकी आधारभूत संरचनाओं, मूल्यों, विश्वासों या समग्र जीवन-पद्धति का अध्ययन ज़रूरी होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन आधारभूत संरचनाओं की आपसी टकराहट के परिणाम होते हैं। समाज का प्रतिबिम्ब होने के नाते साहित्य इन टकराहटों का संचित कोष बनता है। भारतीय आंदोलन और भारतीय साहित्य इसी तर्क से परस्पर जुड़ते हैं और उनके इस जुड़ाव का असर अनुवाद-कार्य पर दिखायी देता है।

किसी भी समाज में उठने वाले आंदोलन उस समाज की संकटापत्र स्थिति के सूचक होते हैं। सामान्य स्थितियों में किसी समाज के सदस्य आंदोलनोंन्मुख नहीं हुआ करते। लोग जब किसी बड़ी दिक्कत से रूबरू होते हैं तो उसके प्रतिकार हेतु संगठित एवं सक्रिय होते हैं। ऐसी प्रतिकारपूर्ण सक्रियता और संगठन आंदोलन कहा जात है। संकट भीतरी होता है और बाहरी भी। कभी-कभी दोनों की मिली-जुली स्थिति भी दिखायी पड़ सकती है। भारत के आंदोलनों को ध्यान में रखकर कहें तो यहाँ प्रारंभ में आंतरिक संकटों के परिणामस्वरूप आंदोलनों का जन्म हुआ। ये आंतरिक  संकट धर्म और सामाजिक पदानुक्रम से उपजे थे। बौद्ध मत तथा जैनधर्म पारम्परिक हिन्दू/ब्राह्मण धर्म में आई विकृतियों से जूझने के क्रम में पनपे। कर्मकाण्ड, यज्ञ आदि का आयोजन तथा उसमें की जाने वाली हिंसा ने जिन लोगों के मन में वितृष्णा पैदा की, उन्होंने

बौद्ध तथा जैन धर्मों की शरण ली। ये नास्तिक मत कहे गए। बौद्धधर्म ने ब्राह्मण सर्वोच्चता का पुरजोर खण्डन किया, 'जनभाषा' पालि में अपनी शिक्षाएँ दीं और बौद्ध विहारों की व्यवस्था करके वैकल्पिक स्थान उपलब्ध करवाया। समाज के निम्न वर्गों का उसके प्रति रूझान होने की यह प्रमुख वजहें थीं। यह आंदोलन राज्याश्रय पाकर भारत की सीमा लांघकर वैश्विक भी हुआ। संस्कृति और सामाजिक संरचना पर बौद्ध आंदोलन का व्यापक और गहरा असर पड़ा। बौद्ध मत जिसे 'धम्म' कहा जाता है कालान्तर में दो टुकड़ों में बंटा हीनयान और महायान। महायान अपनी उदारवृत्ति के चलते अधिक लोकप्रिय रहा। विभिन्न कलाओं पर उसकी उल्लेखनीय छाप पड़ी। जैनधर्म अपनी साधनापरक कठिनता के चलते बौद्ध धर्म जितना फैल नहीं सका। मगर, उसकी धारा हमेशा बनी रही। उसमें बौद्ध धर्म की तरह विशृंखलता नहीं आयी। इसके बाद भक्ति आंदोलन ने अखिल भारतीय स्तर पर सक्रियता हासिल की। इस आंदोलन के जन्म के कारण में आंतरिक कारणों के साथ बाह्य कारणों का भी योग रहा है। विद्वानों ने इस्लाम धर्मानुयायी आक्रमणकारियों को भक्ति आंदोलन के उदय में महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखा है साथ ही तथाकथित निम्न जातियों- शिल्पकारों, दस्तकारों की परिस्थितिगत बदलाव के चलते मुखर होती आत्माभिव्यक्ति, धर्म के मुहावरे में सामाजिक बराबरी की माँग को भी उत्तरदायी माना है। भक्ति आंदोलन के बाद अगला आंदोलन राष्ट्रीय मुक्ति का स्वतंत्रता आंदोलन है। इस आंदोलन का परिप्रेक्ष्य राजनीतिक है। औपनिवेशिक सत्ता से संघर्ष करते हुए
स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने आंतरिक प्रश्नों पर भी ध्यान दिया और सामाजिक सुधार तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के आंदोलन भी चलाए। स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) से एक दशक पहले ही प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत हो गयी थी जो स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में पूरी ऊर्जा के साथ दिखा। साहित्य और कला रूपों पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। राजनीति के मुहावरें को इस आंदोलन ने बहुत भीतर तक परिवर्तित किया।

भारत की सांस्कृतिक एकता का निर्माण और प्रस्फुटन आंदोलनों के दौरान होता रहा है। इस एकता की अभिव्यक्ति सबसे ज्यादा साहितय में हुई है। साहित्य की भूमिका का आंदोलनों के संदर्भ में विवेचन करें तो पाएँगे कि एक ओर वह आंदोलन की मानसिकता के निर्माण में सहायक बनता है तो दूसरी ओर आंदोलन की प्रक्रिया तथा परिणति का दस्तावेज़ भी होता है। आंदोलन में सक्रिय विभिन्न शक्तियों के संघात-प्रतिघात की बारीकियों को जानने का विश्वनीय माध्यम साहित्य ही होता है। बौद्धधर्म के आंदोलन ने पालि में प्रभूत साहित्य का सृजन किया। पाली (गाँव की बोली) इसकी वजह से समादृत भाषा बन गयी। आज भी जीवित भाषा के रूप में समाप्त होकर पाली अगर अध्ययन का विषय बनी हुई है तो बहुत कुछ बौद्धधर्म की बदौलत ही। पाली में संग्रहित वचनों का संस्कृत में अनुवाद करने से स्वयं गौतमबुद्ध ने निषेध किया था, लेकिन कालान्तर में बौद्ध साहित्य और दर्शन ग्रंथों की रचना पालि में हुई। 'बुद्धचरित' जैसा विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य तथा वज्रसूची जैसे तीक्ष्ण विवेचन वाला ग्रंथ संस्कृत में ही रचा गया।

बौद्ध आंदोलन ने भारतीय साहित्य के निर्माण में महती भूमिका निभायी है। जैन कवियों ने भी उपदेशपरक काव्य के अतिरिक्त प्रबंधात्मक रचनाओं से साहित्य का भंडागार समृद्ध किया है।

भारतीय साहित्य का निर्माण अगर किसी आंदोलन ने किया है, तो वह निस्संदेह भक्ति आंदोलन है। अलग-अलग भाषाओं में मध्ययुगीन संत कवियों ने एक ही चेतना को शब्द दिए। यह चेतना अपनी बनावट और स्वभाव में अखिल भारतीय थी। नामदेव ने मराठी भाषी होकर हिंदी में भी रचनाएँ कीं और कबीर तमाम प्रांतों में वहाँ के रंगों में ढाल दिए गए और उनकी रचनाएँ उन प्रांतीय भाषाओं में गायी। रचना और रचनाकार से ऐसी छूट पहले या बाद में कभी नहीं ली गई थी। कबीर ने पोथी के प्रभुत्व को ललकारते हुए कहा था कि मैं 'आँखिन देखी' कहता हूँ। 'कागद लेखी' (शास्त्रों की पोथियाँ) उलझाने वाली होती हैं। यह बल कबीर ने तत्कालीन जन-मानस की बदली प्रवृत्ति से भी ग्रहण किया होगा। उनका अपना साहस तो था ही। तुलसीदास ने साहित्य की आंदोलनधर्मी परिभाषा निर्धारित करते हुए कहा कि वहीं साहित्य कीर्तिवान होता है जो गंगा की तरह सबका भला करे,

'कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।'

हिन्दुओं और मुसलमानों में सामंजस्य तथा सौमनस्य पैदा करने के लिए सूफी कवियों की एक श्रृंखला ही बन गयी। हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेम कथाओं को इन सूफियों ने अपने प्रेमाख्यानों का आधार बनाया और प्रेम की धारा प्रवाहित की।

भारतीय विद्वानों और साहित्यकारों ने नवोदित राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप नए साहित्य के सृजन पर बल दिया और अनुवादों की जरूरत रेखांकित की। ये अनुवाद यूरोपीय भाषाओं विशेषकर अंग्रेज़ी से अभिशप्त थे। इसके साथ भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवादों पर खासकर ज़ोर दिया जा रहा था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885) रवीन्द्रनाथ टैगोर (1867-1941) और सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) की अनुवाद की आवश्यकता से जुड़ी चिंताएँ इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 1877 में लिखा,

''पै सब विद्या की कहूँ होई जु पै अनुवाद।''
निज भाषा मँह तो सबै याको लहै सवाद।।
अंगरेज़ी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खज़ाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।। (भारतेन्दु ग्रंथावली,पृ. 736)

टैगोर ने बांग्ला और भारती ने तमिल भाषा में अनुवाद की गति-प्रगति पर बल दिया। इनके सरोकारों के केन्द्र में अपनी-अपनी भाषाओं की उन्नति के साथ भारतीय साहित्य और अंततः भारत के स्वत्व की प्रतिष्ठा का लक्ष्य था।

स्वतंत्र भारत के साहित्यिक आंदोलन और अनुवाद

भारत को राजनीतिक स्वाधीनता मिलने के बाद यहाँ के बौद्धिक और साहित्यिक परिदृश्य में निर्णायक परिवर्तन की ज़मीन तैयार हुई। लेखकों और विद्वानों ने औपनिवेशिक निर्मितियों के दुष्प्रभावों को पहचानने और उनसे मुक्त होने की क्रमिक और सजग कोशिश की। प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत आज़ादी प्राप्ति से पहले हो चुकी थी। वह स्वाधीन भारत का पहला बड़ा आंदोलन भी बना। इस आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय होने के साथ सच्चे अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय था। आंदोलन से जुड़े लेखकों ने साम्राज्यवादी- सामंतवादी शक्तियों के विरुद्ध कलम चलायी और इस विरोध को ऊर्जा देने वाले साहित्य का अनुवाद बड़े पैमाने पर किया। इस दौर में भारतीय साहित्य का विश्व साहित्य से सम्पर्क गहरा हुआ। तालस्ताय, दोस्तोव्स्की, गोर्की की रचनाएँ सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई। गोर्की का उपन्यास 'माँ पढ़कर क्रांतिदर्शी भारतीयों की एक समूची पीढ़ी ही बड़ी हुई है। इधर भारतीय रचनाकारों जैसे प्रेमचंद का विश्व की तमाम भाषाओं में अनुवाद हुआ। अध्यात्म की छवि से मुक्त भारत की नयी छवि का निर्माण इसी दौर में हुआ।

अस्सी के दशक में उभरे नारीवादी लेखन और आंदोलन के अनुवाद की गति को आगे बढ़ाया और भारतीय साहित्य में जेण्डर के प्रश्न को प्राथमिक प्रश्न बना दिया। इसी के साथ दलित आंदोलन भी उभरा और साहित्यिक सक्रियता तथा वैचारिक क्रियाशीलता की नयी ऊँचाई दिखायी पड़ी। मराठी-हिंदी दलित साहित्य के मशहूर अनुवादक डा. सूर्यनारायण रणसुभे ने अनुवाद के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लिखा है जब-जब वर्ण व्यवस्था के विरोध में आंदोलन होने लगते हैं समता का जब-जब आग्रह होने लगता है, विषमतावादी समाज व्यवस्था के विरोध में जब विद्रोह की मशाल जलायी जाती है तब यहाँ के सृजन में मौलिकता आने लगती है। अन्य भाषाओं में स्थित उत्कृष्टकृतियों के अनुवाद का प्रयत्न शुरू हो जाता है। (अनुवाद का समाजशास्त्र, पृ. 20) विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों मंे भारतीय दलित साहित्य का जब से समावेश किया जाना आरंभ हुआ है तब से दलित साहित्य की कृतियों का अनुवाद अधिकाधिक गतिमय

स्वतंत्रता आंदोलन ने साहित्य की भंगिमा ही बदल दी। भक्ति आंदोलन ने जिस भारतीय साहित्य का स्वरूप् निर्मित किया था स्वतंत्रता आंदोलन ने उसे विशिष्ट तेवर प्रदान किया। आंतरिक और वाह्य औपनिवेशिक दबाव से जूझने के क्रम में राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ जिसने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को एक व्यंितव देकर सांस्कृतिक पुनरोदय-नवजागरण की चेतना से सम्पृक्त किा। प्रगतिवादी आंदोलन ने इस चेतना का विस्तार करते हुए भारतीय साहित्य को वैश्विक संदर्भों से जोड़ा और किसान-मज़दूर की चिंता को प्राथमिक बनाकर आंदोलनधर्मी साहित्य का नया दौर प्रारंभ किया। परवर्ती आंदोलन इसी के प्रभाव को अपनाते हुए अलग-अलग दिशाओं में आगे बढ़े।

**आंदोलन, साहित्य और अनुवाद का भारतीय संदर्भः**

थाओं का लोकानुवाद के किसी आधिकारिक इतिहास में नहीं मिलेगा। इसे समझने के लिए इतिहास, साहित्य और अनुवाद की अपनी जड़ी भूत धारणा को उदार बनाना होगा।

**स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्रीय साहितय का निर्माण और अनुवादः**

राष्ट्र के रूप में भारत की परिकल्पना औपनिवेशिक काल में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान की गयी। यूरोप को माडल के रूप में देखा गया। एकल संस्कृति वाले यूरोप के राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) और बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक के बीच का बुनियादी फर्क कई बार नज़र अंदाज़ भी किया गया। एक राष्ट्र के रूप में भारत की जो अस्मिता बन रही थी उसमें औपनिवेशिक दृष्टि की निर्णायक भूमिका थी। भारत जो वास्तव में था वह एक तरफ और जिस भारत को औपनिवेशिक शक्ति के प्रतिनिधि गढ़ रहे थे वह दूसरी तरफ। यह औपनिवेशिक गढ़ंत ज़्यादा प्रभावशाली रही। राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में शामिल भारतीयों ने प्रदत्त चश्में से खुद को, अपनी परम्परा को, अपनी सभ्यता-संस्कृति को देखा। इसके मिश्रित परिणाम निकले। यूरोपीय पुनर्जागरण की रोशनी में, प्रबोधन कालीन ज्ञान की यत्किंचित प्रेरणाओं से इस निर्माणाधीन राष्ट्र में समाज सुधार के आंदोलन चले। 'समाजों' (ब्रह्म समाज, थियासाॅफिकल सोसायटी, प्रार्थना समाज आदि) का निर्माण हुआ। इन्हीं हलचलों के बीच नयी भारतीयता बनी। नया साहित्य रचा गया। जिसे हम आज 'भारतीय साहित्य' कहते हैं वह औपनिवेशिक काल की ही उपज है। अंग्रेज़ों, पुर्तगालियों, डचों और फ्रांसीसियों (जिनके उपनिवेश इस देश में स्थापित थे) के लिए भारत एक 'वास्तविक' स्थिति थी। भारतीय इतिहास, भारतीय जन, भारतीय संस्कृति जैसे पदबंध तभी चलन में आए। 'भारतीय साहित्य' पदबंध और अवधारणा भी तभी निर्मित हुई। इस निर्मित में अनुवादों की निर्णायक भूमिका है। भारतीय ग्रंथों का यूरोपीय भाषाओं में बड़े पैमाने पर अनुवाद हुआ। इससे भारत की एक छवि अस्तित्व में आयी। अनुवादकों के पूर्वग्रह और निहित-प्रकट स्वार्थ भी इस समूची प्रक्रिया में सक्रिय रहे। ईसाई मिशनरियें द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में किए जाने वाले अनुवादों, खासकर बाइबिल के अनुवाद के इन भाषाओं में अभिनव गद्य का जोर-शोर से चल निकली। गद्य के विकास और अनुवादों की बढ़ोत्तरी में गहरा संबंध है।

हुआ है। आज आदिवासी साहित्य और प्रवासी साहित्य के सृजन-परिदृश्य में आ जाने से अनुवाद के क्षेत्र में संभावनाओं के नए क्षितिज दिखायी पड़ रहे हैं। भारतीय साहित्य की पहचान का यही समकालीन परिप्रेक्ष्य है।

### 1.3.4 भारतीय साहित्य के अध्यन की समस्याएँ

भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर विचार विमर्श आवश्यक है। निम्नलिखित बिन्दुओं को समझ सकेंगे तभी हमें समस्याओं को सुलझाने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

- भारतीय साहित्य की विशालता
- भारतीय साहितय की संकल्पना की संभावना
- बहुभाषी समाज
- सांस्कृतिक बहुलता
- बहु-जातीयता
- राष्ट्रीयता एवं भारतीयता
- तुलनात्मक अध्ययन
- अनुवाद, भाषांतर, रूपांतर
- भाषा समन्वय
- शिक्षण-अध्ययन एवं अध्यापन की दशा और दिशा

भारतीय साहित्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने का प्रयास लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आरंभ हुई। इसका नियमित अध्ययन और अध्यापन 20वीं सदी के उत्तरार्ध से होने लगा। आधुनिक काल में 'राष्ट्र' की नूतन संकल्पना उभरकर आयी। अमूर्त धारणा को मूर्त रूप देने के लिए अनेक परिभाषाएँ की गई जिनपर हम पहले ही विचार कर चुके हैं।

इसी संकल्पना के तहत भारतीयता को निरूपित करने के लिए 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना भी साकार होने लगी।

परंतु राष्ट्रवाद के भव्य महाख्यान के बीच ही 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना का जन्म हुआ है। अंग्रेज़ों की पराधीनता से मुक्ति प्राप्त करने के ले भारतीय प्रायद्विप् में फैले विभिन्न प्रांत को एकसूत्र में बाँधने के लिए भारत नामक राष्ट्र का जन्म हुआ। स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता के लिए क्रांतिकारी संघर्ष और अहिंसात्मक सत्याग्रह किए गए।

- उपनिवेशवाद से उपजे पिछ्ड़ेपन से जूझना पड़ा।
- सामंती संस्कारों का अंत नहीं हुआ।
- पूँजीवादी व्यवस्था के औद्योगिक विकास की ओर प्रवृत हुआ।
- बिखरते गाँव और महानगरों का अनियोजन विस्तार हुआ।

वस्तुतः अनेक राज्यों वाले एक संघ देश के रूप में भारत सरकार हुआ जिसमें अनेक दलों से युक्त प्रजातंत्र पनपा। यह देश पौराणिक, मध्यकालीन, सामंतकालीन, आधुनिक और भूमंडलीकरण की पूँजीवादी संस्कृति का मिश्रित परिणाम है।

इस प्रकार इस भारत नामक भौगोलिक इकाई के भीतर अनेक भाषाओं में रचे गए साहित्य को भारतीय साहित्य के अंतर्गत संकलित करना अत्यंत कठिन है। क्योंकि भारतीय

साहित्य भी भारत के अनुरूप बहुभाषिक, बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक है। जिसकी चेतना को समझने के लिए परिभाषा पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे महसूस करने की क्षमता आवश्यक है।

इस संदर्भ में प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने वाले केरल के साहित्यकार जी. शंकर कुरूप् का कथन अत्यंत प्रासंगिक है-

"भारतीय साहित्य परंपरा से मेरा मतलब संकेतों एवं सिद्धांतों से नहीं। प्रत्येक शिशिर के बीत जाने पर आगामी बसंत के आतप प्रकाश को आत्मसात करने की प्रेरणा देते हुए नवीन विकास का आरंभ करने वाले वृक्षों का आमूलगत प्रसूत होने वाला जीवरस है।"

इस प्रकार भारतीय साहित्य विस्तृत है और उसे प्रगुणात्मक माना गया है और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की पंक्तियों में परिलक्षित होता है7

भारत नहीं स्थान का वाचक
गुण-विशेष नर का है
एक देश का नहीं
शील वह भूमंडल भर का है।

परंतु अनेक पश्चिमी विद्वानों का मत इससे भिन्न भी है। पश्चिम में बसे प्रवासी भारतीय विद्वान नीहार रंजन रे भी भारतीय साहित्य की आवधारणा से असहमत हैं। उनके मतानुसार भारत के भाषा-वैविध्य की दृष्टि से साहित्य की अस्मिता उसकी भाषा में ही निहित है। इसी प्रकार कार्लटन का ॅलेज के अर्नाब चकलादर अपने लेख 'लेंग्वेज, नेशन दि कश्चन आफ इंडियनलिटरेचर' में लिखते हैं कि भारतीय साहित्य के सर्वज्ञात होने का दावा करना बहुत कठिन है। दूसरे शब्दों में भारतीय साहित्य का अध्ययन हमेशा आंशिक ही होता है क्योंकि अनेक भाषाओं का ज्ञान कम लोगों को होता है। परंतु समस्यों भारतीय साहित्य के अध्ययन के महत्वपूर्ण अंग है।

**शिक्षण की दशा और दिशा-**

भारतीय साहित्य विश्वविद्यालयों में एम.ए. के पाठ्यक्रम में एक पत्र के रूप में इसे पढ़ाया जाता है। स्कूल के स्तर पर ही इसकी नींव रखी जानी चाहिए। भूमंडलीकरण, कंप्यूटर और इंटरनेट आदि आ गया है। रोज़गारोन्मुखी पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को आकर्षित कर सकेगा। भारतीय साहित्य की विशालता आध्यापन को सीमित कर देती है। कुशल अनुवादकों की कमी है। श्रेष्ट अनुवादकों को लक्ष्य एवं स्त्रोत भाषा के साथ-साथ समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज, बोल-चाल के व्यवहारिक भाषा ज्ञान का भी उचित प्रशिक्षण देने के लिए कार्यशालाएँ तथा यात्राओं द्वारा विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए। भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए स्वतंत्र विभाग की स्थापना ही इस महती कार्य को साकार कर सकती है।

**भाषांतरण एवं रूपांतरण**

भाषांतरण एवं रूपांतरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण रामायण और महाभारत का है। इनका भाषांतरण एवं रूपांतरण आसेतु हिमाचल मिलता है। देशभर की भाषाओं में रामायण

रच गया है। बांग्ला में 'कृतिवास रामायण', उड़िया में 'विलंका रामायण', तमिल में 'कम्ब रामायण', कन्नड़ में 'तोरने रामायण' आदि। इसी प्रकार महाभारत भी अनेक भाषाओं में रचा गया है।

इन पर आधारित महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, लोकगीत उपलब्ध हैं।

फारसी की रचनाएँ जैसे 'अरबी रातें' (अरेबियन नाइट्स) 'सिंदबाद जहाज़ी', 'अलीबाबा चालीस चोर' अत्यंत लोकप्रिय हैं। अरबी-फारसी भारतीय जीवन का अंतर्भाग है।

उमर खाय्यम की रुबाइयाँ, गुलिस्ताँ बोस्ताँ, खलिल जिब्रान की लघु कथाएँ भी भारतीय साहित्य में अंतर्निहित है।

धर्म, दर्शन और विभिन्न संप्रदायों से संबंधित साहित्य का विशाल भंडार भारतीय जनता के दैनंदिन जीवन में समाहित है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश का विपुल साहित्य की दीर्घ परंपरा निरंतर प्रवाहित होती आ रही है। संस्कृत के कालिदास, बाणभट्ट, भास, अश्वघोष, भवभूति, जयदेव, राजशेखर जेसे रचनाकारों का रचनाएँ धूमिल नहीं हुई है। सिद्ध, नाथ, जैन, नाथ परंपराएँ जीवंत हैं। शैव, वैष्णव, शक्ति संप्रदायों के विचारों ने गहरी छाप छोड़ी है। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्त, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, चार्वाक दर्शन के विद्वान देशभर में व्याप्त हैं।

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि की अनुगूँज अनेक भाषाओं और बोलियों में मिलती है। भक्ति-युग मं भाषा का आदान-प्रदान महत्वपूर्ण है। केरल में जन्मे शंकराचार्य, ने कश्मीर तक यात्रा की।

मुग़ल शासनकाल भाषा के आदान-प्रदान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। दक्षिण में आज भी दक्खिनी भाषा का प्रचलन है जिसमें साहित्य भी समृद्ध है। इसी प्रकार सूफी काव्य परंपरा आज भी जनमानस में बसी हुई है। उर्दू साहित्य की समृद्ध और शेरो-शायरी और गज़ले भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग हैं। यह सब भाषांतरण एवं रूपांतरण से ही संभव हुआ है और आज भी हो रहा है।

**अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन**

भारतीय साहित्य को सम्यक रूप से संकलित करने में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुवाद की प्राचीन परंपरा रही है परंतु 21 वीं सदी को अनुवाद युग कहा जाता है। इस कार्य में व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि संस्थाओं का भी योगदान है। इनमें प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

- भारतीय ज्ञानपीठ न्यास (बनारस, 1944 में स्थापत)
- केन्द्रीय साहित्य अकादमी (1954, दिल्ली)
- के.के. बिड़ला फाउंडेशन (1991, दिल्ली)

- जोशुला फाउंडेशन (तेलुगु कवि मुर्रम जोशवा की स्मृति में स्थाि‍पत)
- कथा (दिल्ली)

इन अकादमियों ने पुरस्कार, अनुवाद, प्रकाशन, पत्रिकाओं एवं संगोष्ठियों के माध्यम से भारतीय साहित्य के प्रति समर्पित रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरंभ 19 वीं सदी के उत्तरार्ध से होता है। यह भारतेन्दु कहलाता है। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने अनुवाद का बृहत कार्य का आरंभ किया था। राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत के 'रघुवंश' और 'मेघदूत काव्य' का अनुवाद किया था। इसी प्रकार 'ऋतुसंहार', 'कुमार संभव', 'नारद भक्ति-सूत्र' आदि अनूदित कृतियाँ मिलती हैं।

संस्कृत, बंगला से अनूदित नाटकों की बहुलता हैं। 'उत्तर रामचरित', 'अभिज्ञान शआकंतलम', 'प्रबोध चंद्रोदय', 'मृच्छकटिक', 'रत्नावली', 'वेणीसंहार' आदि संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया गया।

बांगला में सर्वाधिक अनुवाद माइकेल मधुसूदन के नाचकों के हुए और उपन्यासों में बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यासों का अनुवाद हुआ श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ द्वारा रचित हरमिच 'डेजर्टेड विपेज' का अनुवाद एकांतवासी योगी, 'ऊज़ट ग्राम' के नाम से किया था।

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' (1866-1932) के पिता भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अंतरंग मित्र थे। वह उर्दू-फारसी के विद्वान ही नहीं हिन्दी कविता के प्रेमी थे। उर्दू, फारसी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, बांग्ला, भाषाओं के ज्ञाता थे। बहुभाषी ज्ञान रखने वाले साहित्यकारों के उत्तम उदाहरण हैं।

भारतीय साहितय के विकास के लिए अनुवाद अनिवार्य साधन है। अनुवाद में काव्यानुद सबसे कठिन है। काव्यानुवाद पुनः सृजन की प्रक्रिया है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समान ही तेलुगु साहित्य में कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु का योगदान रहा।

### 1.3.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

भारतीय साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि भारत की जनसंख्या बहुधर्मी - बहुजातीय एवं बहुभाषी होने के बाद भी राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। वर्तमान साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट देखी जा सकती है। विभिन्न भाषाओं में लिखी गई विधा या भारतीय साहितय विभिन्न भाषा में लिखा गया भारतीय साहित्य भारतीय समाज के स्वरूप् को प्रतिबिंबित करता है। भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना एवं उनके प्रभाव का दस्तावेज़ है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में अनेक विषयों पर साहित्य लिखा गया है। महानगर हो, ग्राम हो, नारी, दलित, आदिवासी, धर्म विमर्श आदि

अनेक विषयों द्वारा भारतीयता का बिंब उभरता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इंग्लिश अर्थात भारतीय अंग्रेज़ी लेखन और प्रवासी लेखन द्वारा भी भारत की छवि उभरती है।

**भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता और राष्ट्रीयता**

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का देश है - उत्तर पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू, पूर्व में ओडिआ, बंगाली और असमिया, मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगु आदि हैं। इनके अतिरिक्त और भी भाषाएँ जिनका साहित्य और भाषावैज्ञानिक महत्व कम नहीं है। जैसे- कश्मीरी, डोगरी, सिन्धी, कोंकणी, तूरू आदि हैं पंजाबी और सिन्धी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश सीमाएँ कितनी मिली जुली हुई हैं। इसी प्रकार मराठी और गुजराती का जन जीवन ओत प्रोत है, किन्तु क्या उनके बीच में किसी प्रकार की भांति सम्भव है। दक्षिण भाषाओं का 'उद्रम एक हैः सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं। परन्तु क्या कन्नड़ या मलयालम या तमिल और तेलुगु स्वरूप के विषय में शंका हो सकती है। यही बात ओडिया, बंगला और असमिया के विषय में सत्य है। बंगला के गहरे प्रभाव को पचाकर असमिया और ओडिया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये हुए हैं।

दक्षिण में तमिल और उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भाषाओं का काल प्रायः समान है। प्रायः सभी भाषाओ का आदिकाल पंद्रहवीं सदी तक चलाया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्य का विकास लगभग एक सा है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त है।

अब साहित्य की पृष्टधार पर बात की जाये तो भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं हैं, फिर भी उनका साहित्यिक रिक्थ समान है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला शास्त्र के अंतर्गत उपनिषद, षडदर्शन, स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थ - 'नाट्यशास्त्र', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'रसगंगाधर' आदि की विचार-विभूति का उपयोग भी सभी ने निरंतर किया है।

यहाँ पर इन समान प्रवृत्तियों का संक्षेप में विश्लेषण कर लेना समीचीन होगा।

सबसे पहली प्रवृत्ति जो भारतीय वाङ्मय में प्राय समान मिलती है, नाथ साहित्य है। दो चार को छोड़ सभी भाषाओं के प्रारंभिक साहित्य के विकास में नाथ पंथियों तथा साधुओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वभावतः नाथ साहित्य का सृजन दक्षिण में उत्तरी और पूर्वी भारत के अपेक्षा बहुत कम हुआ है मराठी और बंगाल में नाथ साहित्य की विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई। मराठी में तो स्वयं गोरख नाथ की वाणी मिलती है। बंगाल वस्तुतः नाथ संप्रदाय का गढ़ था। गुण और परिणाम दोनों की ओर से बंगाल के नाथ साहित्य समृद्ध है। उसमें बौद्धों के सहजिया

संप्रदाय का साहित्य और चर्या गीत आदि की धारा भी घुलमिल गयी है। बंगाल के बाद इस सम्प्रदाय का दूसरा विकास केंद्र था पंजाब, ओडिशा और असाम में भी इस तरह के साहित्य लिखे गये हैं।

दूसरी आरंभिक प्रवृति चारण काव्य है। यह भी अधिकांश भाषाओं में प्रायः सामान है। अपनी प्राचीनता के अनुरूप ही तमिल में चारण काव्य संगम काल के आरंभ से ही मिलता है। संगमकाल का प्रसद्धि महाकाव्य 'सिलाप्पदिकारम' भी एक प्रकार का चारण काव्य है। तेलुगु में 'पालनाटिवीर चरितम', मलयालम में 'पद्मय पटटकल', मराठी के मध्ययुगीन 'मविराख्याना' अथवा वीरगीत रूप 'पोवाड़ा' चारण काव्य, गुजराती साहित्य में श्रीधर चरित 'रणमल छंद' और पद्मनाभा का मकन्हडदे, पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह का 'अमर काव्य', हिंदी में 'पृथ्वीराज रासो', 'आल्हाखंड', फिर भूषण, सूदन आदि की रचनाएँ चारण काव्य के अमूल्य उदाहरण हैं।

भारतीय काव्य की तीसरी प्रमुख प्रवृत्ति है संत काव्य। इसकी परंपरा भी प्रायः सर्वत्र विद्यमान है तमिल के अठारह सिद्ध संत कवि थे जिन्होंने सरस वाणी में रहस्यवादी रचनाएँ की हैं। तेलुगु के वेमन, वीरब्रह्मम और कनड़ के सर्वज्ञ आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं। मराठी का संत काव्य तो अत्यंत प्रसिद्ध है ही। गुजरात में भी संत कवि प्रीतम दास की कविताओं उल्लेखनीय हैं। ओडिशा में धम्र की महिमा संत कवि भीम भोई की कविताओं में मिलती है।

अब प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा पर बात करें तो वह भी भारतीय भाषाओं में प्रायः समान रूप से व्याप्त है। पंजाब और हिंदी में प्रेमाख्यान की परंपरा अत्यंत विस्तृत है।

तमिल में वैष्णव काव्य का संग्रह 'नालायिर प्रबंधम' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन कन्नड़ साहित्य के इतिहास का तृतीय चरण 'वैष्णव काल' के नाम से प्रसिद्ध है। मलयालम प्रमुख वैष्णव काव्य है एजुत्तच्चन की 'अध्यात्म रामायण'। वैष्णव काव्यधारा की सबसे अधिक गति गुजराती और पूर्वी भाषाओं - अर्थात बंगला, असमिया और ओडिया के साहित्य में देखने को मिलती है।

अब हम आधुनिक काल के बारे में थोड़ी सी चर्चा कर लेते हैं। जहाँ भारतेंदु और उनके मंडल के कवियों ने साहित्य का प्राचीन रूपों का नवीकरण और उनके नवीन रूपों का सृजन कर नव जीवन की चेतना को अभिव्यक्त किया। उसी समय पंजाब में गुरुमुख सिंह मुसाफिर, हिरासिंग दर्द आदि कवियों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचना कर रहे थे। हिंद में राष्ट्रीयता की भावना मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी के काव्यों में प्रचुर परिणाम में मिलता है आधुनिक साहित्य की ओर एक प्रमुख प्रवृत्ति है स्वच्छंदतावाद। इस धारा के प्रमुख कवि हैं - प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी आदि।

आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी स्वतंत्रता की प्राप्ति जिसने सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया भारत ने सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त अपनी

स्वतंत्रता को विश्वमुक्ति के रूप में ग्रहण किया है। भारत की सभी भाषाओं में इस अवसर पर मंगलगान लिखे गए जो सात्विक उल्लास और लोक कल्याण की भावना में ओतप्रोत है।

विगत शताब्दी, स्वतंत्रता से पूर्व से 1947 ई. तक आधुनिक साहित्य के सामान्यतः चार चरण हैं: (1) पुनर्जागरण (2) जागरण सुधारकाल (3) रोमानी सौंदर्य दृष्टि का उन्मेष तथा (4) साम्यवादि सामाजिक चेतना का उदय। तमिल के पुनर्जागरण के नेता थे रामलिंग स्वमिगल - इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के पुनरुथान का प्रयत्न किया। अनंतर कविसुब्रमन्य भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रांति को अपने, काव्य में वाणी प्रदान की। तेलुगु में पुनर्जागरण नेतृत्व विरेशलिंगम ने किया मलयालम, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी नवजागरण का सूत्रपात हुआ। भारतीय भाषाओं का कदाचित सबसे समृद्ध आधुनिक साहितय है बंगाल का 19वीं सदी में राजा राममोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि की प्रेरणा से पूरे बंगाल साहित्यकारों में नवीन धारा प्रवाहित होने लगी। इस तरह ओडिया, असामी और अन्य भाषाओं में भी नवजागरण का प्रभाव दिखाई देता है।

अबतक हम भारतीय वाङ्मय की केवल विषय वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है, किन्तु काव्य शैलियों और काव्य रूपों की समानता भी कम महत्वपूर्ण नहीं। भारत के प्राय सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियाँ - महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे चरित काव्य, प्रेमगाथा शैली, रस, पद शैली आदि समान रूप में मिलती है। अनेक वर्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देसी छंद दोहा, चैपाई आदि भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छंद हैं। इधर - आधुनिक युग के पश्चिम के अनेक काव्य रूपों और छंदों का जैसे प्रगित काव्य और उसके अनेक भेदों, जैसे संबोधन गीत, शोक गीत, चतुर्दशपीका और मुक्त छंद, गद्य गीत आदि का प्रचार भी भाषाओं में हो चुका है।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय साहितय अनेक भाषाओं में रचित एक विचारधारा में प्रवाहित साहित्य जैसा है।

## 1.4 पाठ सार

हमने इस इकाई में भारतीय साहित्य की अवधारणा का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। भारतीय साहित्य के आधारभूत तत्व, भारतीय साहितय की निर्मिति का इतिहास इस इकाई का केन्द्रीय हिस्सा बना। राष्ट्र निर्माण से पहले भारत की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक संरचना में मौजूद थी। एक सी सामाजिक मर्यादाएँ लगभग समान जीवन मूल्य और जीवनादर्श इस भू खण्ड के लोगों को एकता के सुत्र में बाँधते थे। साहित्य इस एकता के प्रतिबिंबन का प्रमुख आधार रहा है

आंदोलनों की एक परम्परा भारत की धरती पर चली। इन आंदोलनों ने सांस्कृतिक एकता के ताने बाने को पुननिर्मित, पुनपरिभाषित किया और साहितय तथा अनुवाद पर उल्लेखनीय असर डाला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों ने उक्त आत्म छवि में परिष्कार संभव किया और परिवर्तित वैश्विक पटल में सार्थक हस्तक्षेप भी किया। इस हस्तक्षेप में अनुवादों का उल्लेखनीय योगदान रहा।

आंदोलनों की एक परम्परा भारत की धरती पर चली। इन आंदोलनों ने सांस्कृतिक एकता के ताने बाने को पुननिर्मित किया और साहित्य पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्क बढ़ने से एक तरफ सम्पर्क भाषा का निर्माण हुआ तो दूसरी तरफ अनुवादों की माँग बढ़ी।

## 1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं।

- इस इकाई का मुख्य हिस्सा भारतीय साहित्य के स्वरूप, राष्ट्रीय चेतना, भारतीय साहित्य की निर्मिति आदि है।
- इस इकाई में हमें पाया कि एक सी सामाजिक मर्यादाएँ लगभग समान जीवन मूल्य और जीवनादर्श इस भूखण्ड के लोगों को आपस में एकता से सूत्र में बाँधते हैं।
- साहित्य इस एकता के प्रतिबिंबन का मुख्य आधार रहा है।
- बौद्ध - जैन आंदोलनों, भक्ति आंदोलन ने धर्म के लोकतंत्रीकरण पर बल देकर पारम्परिक वर्चस्व को सफल चुनौती दी।

## 1.6 शब्द संपदा

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अनुगूँज | - | उपदेशात्मक वाणी |
| 2. | दर्शन | - | तत्वज्ञान |
| 3. | बहुधर्मी | - | विभिन्न धर्म |
| 4. | बहुजातीय | - | विभिन्न जाति |
| 5. | बहुभाषी | - | विभिन्न भाषा |
| 6. | ओतप्रोत | - | प्रचुर मात्रा में |

## 1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खण्ड (अ)**

### (अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भारतीय साहित्य के स्वरूप ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विवेचन कीजिए।

2. भारतीय साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता का विवेचन विश्लेषण कीजिए।

3. राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण में अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

**खण्ड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भारतीय साहित्य के अध्यन की समस्याओं का विवेचन कीजिए।

2. भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता को स्पष्ट कीजिए।

3. भारतीय साहित्य के स्वरूप् का वर्णन कीजिए।

**खण्ड (स)**

**। सही विकल्प चुनिए**

1. भारतीय साहित्य के अध्ययन की मूल समस्या है

(क) धार्मिकता (ख) राजनीति (ग) बहुभाषी समाज (घ) राष्ट्रीयता

2. राष्ट्रवाद के भव्य महाख्यान के बीच किस साहित्य की संकल्पना का जन्म हुआ

(क) भक्ति (ख) धार्मिक (ग) सामाजिक (घ) भारतीय

3. भाषांतरण एवं रूपांतरण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है।

(क) रामायण और महाभारत (ख) जर्मन साहित्स

(ग) चायनीज़ साहित्य (घ) भारतीय साहित्य

(क) गोबर (ख) रमेश (ग) सुरेश (घ) रामनाथ

।। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ............ साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. समाज का .................... समझने के लिए उसकी आधारभूत संरचनाओं, मूल्यों, विश्वासों, या समग्र जीवन पद्धति का अध्ययन ज़रूरी होता है।

3. साहित्यिक सांस्कृतिक आंदोलनों के अखिल भारतीय स्वरूप का सबसे अच्छा उदाहरण मध्यकालीन .......................... आंदोलन है।

3. गोदान ........................... करना चाहता है।

।।। सुमेल कीजिए

| | |
|---|---|
| (1) संगम साहित्य | (क) मल्यालम |
| (2) पवाड़े | (ख) तमिल |

(3) संदेश काव्य (ग) हमराठी

## 1.8 पठनीय पुस्तकें

1. डा. नगेंद्र, भारतीय साहित्य, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

2. डा. रामछबीला त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

## इकाई 2: भारतीय साहित्य का अंतः संबंध

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मूल पाठ: भारतीय साहित्य का अंतः संबंध

2.3.1 भारतीय साहित्य में भारतीय भाषाओं का जन्मकाल

2.3.2 भारतीय साहित्य में विकास के चरण

2.3.3 भारतीय साहित्य की समान साहित्यक परंपरा

2.3.4 भारतीय साहित्य और बहुभार्षिकता

2.3.5 भारतीय साहित्य और संस्कृत भाषा

2.3.6 भारतीय साहित्य और बहुसांस्कृतिकता

2.3.7 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

2.4 पाठ सार

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

2.6 शब्द संपदा

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

2.8 पठनीय पुस्तकें

### 2.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं भारत सदियों से बहुजातीय बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है। किन्तु भारत में रहने वाले लोगों में भारत की यह बहुजातीयता कभी भी बाधक सिद्ध नहीं हुई। भारत एक विशाल देश है, यहाँ अनेक धर्म है, अनेक भाषाएँ हैं। अनेक रीति रिवाज और तौर तरीके हैं। भारतीय साहित्य को भाषा, भौगोलिक क्षेत्र, राजनीतिक, एकता और जनता के आधार पर पहचाना जा सकता है। भारतीय साहित्य का गौरव वैदिक साहित्य है, जो वेदों में संकलित है, और यह साहित्य भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक विचारधारा को प्रतिष्ठित करता है। इसमें अनेक भाषाओं का योगदान है। भारतीय साहित्य की आत्मा एक है। जिस प्रकार अनेक धर्मो विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति एक है, इसी प्रकार अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य एक है। इसमें सभी जगहों पर एकता दिखाई देती है।

## 2.2 उद्देश्य

छात्रों ! प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय साहित्य में आप भारतीय भाषाओं के योगदान को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के विकास के चरण से परिचित होंगे।
- भारतीय साहित्य में बहुसांस्कृतिकता को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य और संस्कृत के अंतः संबंध को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य और बहुभाषिकता के संबंध को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता के संबंध से परिचित होंगे।

## 2.3 मूल पाठ: भारतीय साहित्य का अंतः संबंध

### 2.3.1 भारतीय साहित्य में भारतीय भाषाओं का जन्मकाल

भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि तमिल और उर्दू भाषा को छोड़कर भारत की लगभग सभी भाषाओं का जन्मकाल प्रायः समान है। तेलुगु साहित्य का प्रारंभ ईसा की ग्यारहवीं सदी से माना जाता है। तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम कवि 'नन्नय' है। उसी प्रकार जब हम कन्नड़ भाषा को देखते हैं तो कन्नड़ का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ ''कविराजमार्ग'' है जिसके रचनाकार नरेश नृपतुंग हैं और जिसका रचनाकाल है 814 से 877 ई.। उसी प्रकार मल्यालम की प्रथम रचना ''रामचरित'' है, जो अनुमानतः तेरहवीं शती की रचना है। गुजराती और मराठी भाषा का आविभविकाल लगभग एक ही समय अर्थात् बारहवीं सदी माना जाता है। बंगला साहित्य का प्रारम्भ हम चर्योगीतो से मानते हैं। जिसका रचनाकाल दसवीं से बारहवीं शती के बीच माना जाता है। असमिया साहित्य के कवि हेमसरस्वती सबसे प्राचीन कवि हैं और इनका समय भी तेरहवीं सदी के अन्त में माना जाता है। उड़िया में भी तेरहवीं सदी में ही व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीत पाए जाते हैं। पंजाबी और हिंदी भाषा में भी ग्यारहवीं सदी से ही व्यवस्थित साहित्य के दर्शन होते हैं। केवल दो भाषाएँ तमिल और उर्दू ऐसी है जिनका जन्मकाल भिन्न है। तमिल संस्कृत के समान ही प्राचीन भाषा है और उर्दू का जन्म अमीर खुसरो की रचनाओं से माना जाता है।

**बोध प्रश्न**

(1) तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम कवि का नाम बताएँ।

### 2.3.2 भारतीय साहित्यों के विकास के चरण

अगर हम भारतीय साहित्यों के विकास के चरण की बात करते हैं तो हम पाते हैं कि इनके विकास के चरण भी समान ही है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का आदिकाल पन्द्रहवीं शती तक चलता है। पूर्व मध्यकाल अर्थात भक्तिकाल की समाप्ति सत्रहवीं शती के मध्य में तथा उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की समाप्ति अंग्रेज़ी सत्ता की स्थापना के साथ होती है। और इसी समय से आधुनिक का प्रारंभ हो जाता है। अतः इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी

भारतीय साहित्य चार चरणों में विभक्त है और अधिकांश साहित्यों का विकास क्रम लगभग एक सा है।

अगर हम राजनीतिक जीवन के विकासक्रम की बात करें तो भारतवर्ष में शताब्दियों तक राजनीतिक व्यवस्था एक समान रही है। मुगलों के शासनकाल में तो लगभग एक सौ पचास वर्षों तक उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम में घनिष्ठ सम्पर्क बना रहा। राजपूतों के राजवंश भारत के अनेक भागों में शासन कर रहे थे, उनकी सामंतीय शासन प्रणाली प्रायः एक सी थी। बाद में अंग्रेज़ों ने तो केन्द्रीय शासन व्यवस्था कायम कर भारत की एकता को और दृढ़ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

अगर हम सांस्कृतिक जीवन के विकास क्रम की बात करें तो वह भी एक सा है। देश में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन हुए, जिनका प्रभाव पूरे भारत पर पड़ा। इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप शैव-शाक्त संयोग से नाथ सम्प्रदाय का उदय हुआ जो उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक फैला हुआ था। धीरे धीरे बौद्ध धर्म का हथास होने लगा जिसके फलस्वरूप सिद्ध सम्प्रदाय के प्रथम चरण में इन सम्प्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इसके बाद संत सम्प्रदाय निर्गुण भक्ति का प्रचार करते रहे, सूफी सम्प्रदाय उत्कृट प्रेमानुभूति को लेकर उत्तर पश्चिम से दक्षिण तक फैल गये। इसके बाद वैष्णव भक्ति आन्दोलन का आरंभ हुआ जो समस्त देश में बहुत ज़ारों से फैल गया। राम और कृष्ण की भक्ति की अनेक पद्धतियों का देश भर में प्रसार हुआ और पूरा भारत सगुण ईश्वर के लीलागान से गुंजित हो उठा। दूसरी तरफ मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव भी बढ़ रहा था। तभी अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। वे सारे देश में स्थापित हो गये। अपनी शिक्षा, संस्कृति के माध्यम से अपने धर्म का प्रसार करने लगे और इसी प्राच्य और पाश्चात्य के सम्पर्क से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

**बोध प्रश्न**

(1)

### 2.3.3 भारतीय साहित्यों की समान साहित्यक परंपरा

जैसा कि हम जानते हैं, भारत की भाषाओं का परिवार एक नहीं है, किन्तु फिर भी उनकी साहित्यिक परंपरा एक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण भागवत, कालिदास, भवभूति आदि की अगर कृतियाँ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला है। उपनिषद स्मृतियाँ, काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थ जैसे भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, आनंदवर्धन का ध्वन्यालोक, मम्मट का काव्यशास्त्र आदि का सभी ने हमेशा उपयोग किया है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओं के ये ग्रन्थ हमेशा प्रेरणास्रोत रहे हैं। इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता अपने आप ही आ गई है। अतः उनमें एक समान प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है जो इस प्रकार है।

**(1) नाथ साहित्य की प्रवृत्ति:-**

प्रायः हम यह देखते हैं कि सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में नाथपंथियों और शिवभक्तों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दक्षिण भारत में नाथ साहित्य का सृजन पूर्वी और उत्तरी भारत की अपेक्षा कम रहा है। दक्षिण में शिव की सगुण भक्ति ही प्रमुख थी। यही कारण है कि तमिल के 'नायनभार', तेलुगु के 'पालकुरिकि' तथा कन्नड़ के वीर शैवाद के उन्नायक बसवेश्वर आदि उत्तर भारत के नाथ और सिद्ध कवियों से मूलतः भिन्न थे। दक्षिण भारत के कवि शुद्ध भक्त कवि थे, उत्तर और पूर्व के सिद्ध और नाथ कवि योगी अथवा तांत्रिक साधक थे। फिर भी नाथ पंथियों का प्रभाव सुदूर दक्षिण तक पहुंच गया था। तेलुगु का "नवनाथचरित्राम्" इसका सही प्रमाण है। मराठी और बंगला साहित्य में नाथ साहित्य की विशिष्ठ धारा प्रवाहित हुई है। मराठी में तो स्वयं गोरखनाथ की वाणी मिलती है जिसका नाम है "अमरनाथ सनवड"। बंगला का नाथ साहित्य गुण और परिमाण दोनों की दृष्टि से बंगला का नाथ साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। असमिया और उड़िया में नाथ साहित्य की कोई स्वतंत्र काव्यधारा प्रवाहित नहीं हुई है। पंजाब में भी नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जाता है। हिंदी में तो नाथपंथियों की बहुत सी गद्यपद्यमयी रचनाएँ पाई जाती हैं। अतः इस प्रकार भारतीय साहित्य में नाथ साहित्य की प्रवृति व्यापक तौर से पाई जाती है।

**(2) चारण काव्य की प्रवृति:-**

भारत की भाषाओं में चारण काव्य की प्रवृत्ति प्रायः समान है। तमिल में चारण काव्य संगमकाल के आरंभ से ही मिलता है। पतुप्पाट्टु में से कई की रचनाओं में चारण-काव्य के उदाहरण मिलते हैं। संगम युग का प्रसिद्ध महाकाव्य सिलप्पदिकारम एक प्रकार का चारण काव्य है। तेलुगु में श्रीनाथ का लोकप्रिय काव्य "पलनाटिवीर-चरित्राम्" चारण काव्य का अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है। मराठी के अध्ययुगीन वीरगीत रूप पवाड़े चारणकाव्य के ही अन्तर्गत आते हैं। पवाड़े के गीतों में चारणकवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं और वीरों का यशोगान किया गया है। गुजराती साहित्य में श्रीधररचित रसमल्लछंद आदि अनेक वीर इस प्रधान काव्य लिखे गये हैं। गुरू गोविंदसिंह ने पंजाबी में वीर रसपूर्ण अमरकाव्य की रचना की है। हिंदी साहित्य में तो आदिकाल का नाम ही वीरगाथाकाल या चारणकाल है।

**(3) संतकाव्य की प्रवृति:-**

संतकाव्य की परम्परा भी प्रायः अधिकांश भारतीय साहित्य में देखने को मिलती है। तमिल के "अठारह सिद्धर" संत कवि थे जिन्होंने सरल वाणी में रहस्यवादी रचनाएँ की है। तेलुगु में वेमन वीरब्रहम्म और कन्नड़ के सर्वज्ञ आदि संतपरम्परा के कवि हैं। मराठी का संतकाव्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संत ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ वारकरी पंथ के संतकवि को अत्यन्त समृद्ध किया है। गुजराती में भी संतकाव्यों की परम्परा बहुत अधिक रही है। बंगाल के बाउग गीतों के रचयिता भी ये संत कवि ही थे। पंजाबी में गुरूनानक तथा अन्य सिख कवियों के द्वारा

रचित संतकाव्य बहुत अधिक है। हिंदी में संतकाव्य परम्परा में कबीर दादू आदि द्वारा रचित बहुत अधिक साहित्य है। उर्दू में सूफी मूक्तक कवियों ने इसमें अपना योगदान दिया है।

**(4) प्रेमाख्यानक काव्य की प्रवृत्ति:-**

भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानक काव्य की परम्परा समान रूप में पाई जाती है। तेलुगु में "राजशेखर चरित्रम", "रसिक जनमनोभिराम", "चन्द्रलेखाविलासम" आदि अनेक प्रेम की अनुभूति को व्यक्त करने वाले काव्य है। गुजराती साहित्य में प्रेमाख्यान काव्य की परम्परा अधिक समृद्ध है। असायत की 'हंसावलि', हीरानंद की "विद्याविलासिनी" सोलहवीं शती में रचित नरपति की "नंदबत्तीसी", गणपति का "माधवानल" "कामकंदला दोग्धक", कुशललाय की "ढोलामारू चैपाई" आदि प्रेमाख्यानक काव्य की अत्यंत प्रसिद्ध और सुंदर कृतियाँ हैं। बंगला में विद्या सुन्दर की प्रणय गाथा को लेकर अनेक कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है। पंजाबी और हिंदी में तो प्रेमाख्यान काव्यों की परम्परा अत्यंत व्यापक है। उर्दू में लौकिक, अलौकिक विरह प्रधान मसनतियों की रचना हुई है। मुल्लावजही का "क़ुतुबमुश्तरी", इब्ननिशाती का "फुलवन" आदि रचनाएं एवं उर्दू शायरों की प्रेमगाथाएं भी इसी के अन्तर्गत आती है।

**(5) वैष्णव काव्य की प्रवृति:-**

वैष्णव काव्य प्रवृति भारतीय साहित्य की बहुत महत्वपूर्ण प्रवृति मानी जाती है। दक्षिण की भाषाओं में वैष्णव भक्ति भावना का बहुत अधिक पूट पाया जाता है। तमिल में वैष्णव काव्य का संग्रह "नालायिरप्रबंधम्" नाम से प्रसिद्ध है। इसके रचयिता बारह आलवार भक्त है। तेलुगु में रामकाव्य और कृष्णकाव्य की दोनों ही धाराएँ प्रवाहित हुई है। तेलुगु का प्राचीनतम रामायण "रंगनाथ रामायण" है, जिसकी रचना तरेहवीं सदी में हुई थी। प्राचीन कन्नड़ साहित्य के इतिहास का तृतीय चरण वैष्णवकाल के नाम से प्रसिद्ध है। मल्यालम वैष्णव काव्य का आदि ग्रन्थ 15वीं शती में रचित "कृष्णगाथा" है। मराठी में एकनाथ ने भागवत धर्म का प्रचार प्रसार किया है। गुजराती में कृष्णभक्ति की प्रधानता है। बंगला का वैष्णव साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है। असमिया साहित्य में रामकाव्य में रामकाव्य की रचना की है। उड़िया में भी कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ है। उड़िया में रामकाव्य के अन्तर्गत बलरामदास की उड़िया रामायण प्रमुख है। उर्दू में नज़ीर अकबराबादी ने कृष्ण भक्ति की नज़में लिखी हैं। पंजाबी में सिख गुरू गोविंदसिंह ने राम और कृष्ण का चरित्र चित्रण किया है। हिन्दी में तो वैष्णव काव्य का विपुल भंडार पाया जाता है।

**(6) आधुनिक काव्य की समान प्रवृत्ति:-**

जैसा कि हम देखते हैं कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का सुत्रपात सन् 1857 की क्रांति के आसपास ही होता है। हिंदी के समान ही सभी भारतीय आधुनिक

साहित्यों में पूनर्जागरण, जागरणसुधार, रोमानी सौन्दर्य दृष्टि साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय, कमोवेश सबमें है। तमिल में पुनर्जागरण के नेता थे "रामलिंग स्वामीगल"। उसी प्रकार तेलुगु के पुनर्जागरण युग का नेतृत्व वीरेशलिंगम ने किया। कन्नड़ के आधुनिक कवियों में श्रीकंठैया शंकरभट्ट आदि ने देशभक्ति से परिपूर्ण वीरगीतों की रचना की है। मलयालम साहित्य के आधुनिक कवि केरल वर्मा, वेनमणि आदि ने राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गीतों की रचना की है। गुजराती में नवजागरणकाल के नेता थे नर्मद, जो भारतेन्दु के समकालीन थे। बंगला में ईश्वरगुप्त, मधुसूदन दत्त तथा बकिमचन्द्र आदि ने साहित्य में नवीन युग का प्रारम्भ किया। इसी प्रकार पंजाबी, उर्दू और हिंदी में उन्नीसवीं सदी के मध्य में नवजागरण का प्रारंभ होने लगा था।

### 2.3.4 भारतीय साहित्य और बहुभार्षिकता

भारत एक बहुभाषिक देश है। यहाँ मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, कश्मीरी, पंजाबी, सिंधी, हिंदी आदि विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य मिलता है। अतः विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त, विभिन्न साहित्य एक होकर भारतीय साहित्य की संज्ञा प्राप्त करता है। इन विभिन्न भाषा बोलियों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला साहित्य एक है। इनकी रचना करने वाले हिंदी भाषाई समाज की जातीय चेतना एक है। काव्य वस्तु संयोजना काव्य संवेदना आदि भी एक जैसा दिखता है। हिंदी भाषा भाषी समाज का सदस्य होने के कारण किसी व्यक्ति की मातृबोली चाहे ब्रज ही या अवधी, भोजपुरी हो या मैथिली , वह जायसी, सूर तुलसी विद्यापति आदि को अपना कवि उसी प्रकार स्वीकार करता है जिस प्रकार की वह निराला और प्रेमचंद को अपना साहित्यकार मानता है। अतः यह स्पष्ट है उसकी भाषाई विभिन्नता उसके साहित्य को एक मानने के रास्ते में बाधक नहीं है। उसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि तामिलनाडु का तमिलभाषी, आंध्रप्रदेश का तेलुगुभाषी महाराष्ट्र का मराठी भाषी और बंगाल का बंगलाभाषी, अपनी तमाम क्षेत्रीय विशिष्टताओं के बावजूद अपने व्यक्तित्व के एक वृहतर आयाम पर भारतीय है और उसके द्वारा रचित साहित्य अपने समस्त भाषाभेद के उपरांत भी एक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि भारतीय साहित्य की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्यसंवेदना समानधर्मी है और उसके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में काव्यवस्तु का संयोजन, कथारूढ़ियों का निर्वाह, भावबोध का संस्कार और शिल्पगत अभिविन्यास की प्राकृति सामाजिक है।

### 2.3.5 भारतीय साहित्य और संस्कृत भाषा

संस्कृत भाषा प्राचीन वैदिक भाषा के रूप में भरतगण की भाषा मानी जाती है। भरतगण से समुचे देश को भारत नाम प्राप्त हुआ है। भरतगण की शक्ति के कारण ही संस्कृत भाषा विभिन्न गणसमाजों के बीच व्यवहार में आने लगी संस्कृत भाषा को पाणिनी ने

परिनिष्ठित किया। संस्कृत भरत गण की भाषा थी, इसलिए उसके अध्ययन और प्रसार का केन्द्र उत्तर भारत में रहा। डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार "संस्कृत साहित्य आदि संकुचित सामन्त वर्ग का साहित्य है तो भारत में ऐसी कौन सी भाषा है जिसके साहित्य पर सामन्त वर्ग का प्रभाव नहीं पड़ा? वास्तव में संस्कृत में दो विरोधी धाराएं हैं। एक रीतिवादी दरबारी काव्य परम्परा है, दूसरी रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की परम्परा है तमिल, तेलुगु, मराठी, बंगला भाषाओं के साहित्य पर इन दोनों महाकाव्यों का अमिट प्रभाव है। इन काव्यों के बिना न तो भारतीय संस्कृति की कल्पना की जा सकती है, न तमिल तेलुगु आदि भाषाओं के साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है"

प्राचीनकाल में बौद्धिक चेतना की भाषा संस्कृत थी, जिसका व्यवहार उत्तर भारत में भी था और दक्षिण भारत में भी। बौद्धिक चेतना की संदर्भ भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग मध्ययुग तक चलता रहा, ब्रज भाषाकाल में भी, आचार्यों ने तत्वचिंतन के लिए संस्कृत भाषा को अपनाया। मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन में दक्षिण के आचार्यों की मातृभाषा द्रविड़ कुल की भाषा थीं, उनके पुनर्जागरण और जनसम्पर्क की भाषा ब्रजभाषा थी पर तत्वचिंतन की भाषा संस्कृत ही रही। इन तीनों भाषाओं के समुचित योग के सहारे ही रामानुजाचार्य, मध्बाचार्य, निम्बकाचार्य, वल्लमाचार्य जैसे आचार्यों का व्यक्तित्व प्रखर और प्रभावी बन पाया। शंकराचार्य ने भी बौद्धिक चेतना के लिए संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया। अतः भारतीय साहित्य में संस्कृत प्रमुख भाषा के रूप में रही।

### 2.3.6 भारतीय साहित्य और बहुसांस्कृतिकता

हमारे देश में संस्कृति शब्द का प्रयोग सामान्यतः मानवीय आचरण और सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में किया जाता है। भारत के संविधान में संस्कृति शब्द का प्रयोग किया गया है, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण उल्लेख अनुच्छेद 351 में भाषा के संदर्भ में किया गया है।
डॉ० मोटूरि सत्यनारायण (तेलुगु विश्व ज्ञान के संपादक) ने अपने एक लेख में लिखा है कि "भाषा संस्कृति के विकास का एक अनिवार्य अंग है और वह भी एक मानी हुई बात है कि सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया साथ-साथ चलती रहती है, और समाज का विकास अधिकांशतः भाषा के माध्यम से प्रतिबिंबित होता है। भाषा, संस्कृति व्यापार आस्था और व्यवसाय, धर्म और दर्शन सामाजिक नियम और सामाजिक प्रयाओं की विविधता होते हुए भी भाषा और संस्कृति के विकास की दृष्टि से भारत की एक विलक्षण स्यिति है। भारत की विविधता में एकता दर्शाने के निरन्तर और सफल प्रयास किये जाते रहे है।

भारतीय समाज सदियों से न केवल बहुभाषिक वरन बहुसांस्कृतिक भी रहा है। आर्य संस्कृति, द्रविड़ संस्कृति, कोल, भील संस्कृति मोट बर्मी या किरात संस्कृति ऐसी स्थिति में भारत में एक भाषाई समाज की संकल्पना निराधार है।

**बोध प्रश्न**

(1)

### 2.3.7 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीयता

भारतीय साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि भारत की जनसंख्या बहुधर्मी - बहुजातीय एवं बहुभाषी होने के बाद भी राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। वर्तमान साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट देखी जा सकती है। विभिन्न भाषाओं में लिखी गई विधा या भारतीय साहित्य विभिन्न भाषा में लिखा गया भारतीय साहित्य भारतीय समाज के स्वरूप का प्रतिबिंबत करता है। भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना एवं उनके प्रभाव का दस्तावेज़ है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में अनेक विषयों पर साहित्य लिखा गया है। महानगर हो, ग्राम हो, नारी, दलित, आदिवासी, धर्म विमर्श आदि अनेक विषयों द्वारा भारतीयता का बिंब उभरता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इंडियन इंग्लिश अर्थात भारतीय अंग्रेजी लेखन और प्रवासी भारतीय लेखन द्वारा भी भारत की छवि उभरती है।

## 2.4 पाठ सार

छात्रों ! हमने इस इकाई में भारतीय साहित्य का अंतः संबंध का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। जैसा कि हम जानते हैं भारत सदियों से बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है। अतः देशकाल के आधार पर यहाँ जातिगत एवं भाषिक भिन्नता पाई जाती है। किन्तु देशकाल से जुड़ी इन समस्त विभिन्नताओं के बावजूद हमें यहाँ एक विलक्षण अभिन्नता भी दिखलाई पड़ती है। चाहे वैदिक संस्कृत हो, या क्लासिक तमिल का संगम साहित्य हमें सभी जगह पर संस्कार चेतना एवं भावबोध में समानता देखने को मिलती है।

भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं, शैलियों और विषयों में लिखा गया है। इसका इतिहास बहुत पुराना है। वेदों से लेकर आधुनिक साहित्य तक, हर कालखंड में साहित्य ने समाज को प्रभावित किया है, और समाज ने साहित्य को। भारतीय साहित्य समाज की संस्कृति, मूल्य परंपराएं, चुनौतियाँ और परिवर्तनों को बखुबी दर्शाता है।

## 2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

- भारतीय साहित्य का गौरव वैदिक साहित्य हैं

- यह साहित्य भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक विचारधारा को प्रतिष्ठित करता है।
- भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि उर्दू और तमिल को छोड़कर भारत की सभी भाषाओं का जन्म काल प्रायः समान है।
- भारतीय साहित्य के विकास के चरण भी समान है।
- इस साहित्य ने सभी जगह पर समान प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है।
- भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकास क्रम लगभग एक सा है।
- भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में भक्ति आन्दोलन को महत्व मिलता है।
- भारतीय साहित्य में सभी भाषाओ के साहित्य में अखण्ड भारत की परिकल्पना मिलती है।
- सभी भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रवाह एक साथ दिखाई देता है।
- सभी भाषाओं के साहित्य में सिद्ध, नाथ, जैन चरित काव्यों सभी समान रूप से पाए जाते हैं।

## 2.6 शब्द संपदा

| | |
|---|---|
| 1. अंतः संबंध | - या दो से अधिक चीज़ों के बीच गहरा संबंध या जुड़ाव |
| 2. बहुभार्षिकता | - कई भाषाओं का ज्ञान होना |
| 3. बहुसांस्कृतिकता | - विभिन्न संस्कृतियों का एक साथ रहना और उनका सम्मान करना |
| 4. अभिव्यंजना | - अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करना |
| 5. विकास चरण | - कोई भी चीज़ या जीव धीरे-धीरे बदलकर परिपक्व होने की प्रक्रिया |
| 6. दर्शन | - तत्वज्ञान |
| 7. अनुगूज | - उपदेशात्मक वाणी |

## 2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खण्ड (अ)**

**(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. भारतीय भाषाओं के जन्म काल का परिचय दीजिए।
2. भारतीय साहित्य की समान साहित्यक परंपरा पर प्रकाश डालिए।
3. भारतीय साहित्य के अंतः संबंध के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

**खण्ड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

1. भारतीय साहित्य और बहुभार्षिकता को स्पष्ट कीजिए।

2. भारतीय साहित्य और संस्कृत भाषा के संबंध को स्पष्ट कीजिए।

3. भारतीय साहित्य और बहुसांस्कृतिका के संबंध का परिचय दीजिए।

**खण्ड (स)**

**। सही विकल्प चुनिए**

1. भारतीय साहित्य के अध्ययन की मूल समस्या है।

(क) धार्मिकता (ख) राजनीति (ग) बहुभाषी समाज (घ) राष्ट्रीयता

2. किस भाषा का जन्मकाल समान नहीं है।

(क) तेलुगु (ख) कन्नड़ (ग) मलयालम (घ) तमिल

3. हिंदी साहित्य में किस काल का नाम चारणकाल है।

(क) भक्तिकाल (ख) आधुनिक काल (ग) आदिकाल (घ) रीतिकाल

**।। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1. तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम कवि ................................ हैं।

2. उर्दू का जन्म ........................... की रचनाओं से माना जाता है।

3. असमिया साहित्य के सबसे प्राचीन कवि ........................ है।

**।।। सुमेल कीजिए**

| <u>भाषा</u> | <u>ग्रंथ</u> |
|---|---|
| (1) कन्नड़ | (क) चर्यागीत |
| (2) मलयालम | (ख) कविराजमार्ग |
| (3) बंगला | (ग) रामचरित |
| (4) पुनिया | (ग) गाँव की चमारिन |

## 2.8 पठनीय पुस्तकें

(1) डॉ० नगेंद्र, भारतीय साहित्य, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

(2) डॉ० रामछबीला त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

## इकाई 3. भारतीय साहित्य की अवधारण एवं विकास

इकाई की रूपरेखा
3 .1 प्रस्तावना
3 .2 उद्देश्य
3 .3 मूल पाठ : भारतीय साहित्य की अवधारणा एवं विकास
3 .3.1 भारतीय साहित्य : अर्थ और परिभाषाएं
3. 3.2 नामकरण और पृष्ठभूमि
3 .3.3 भारतीय साहित्य का अतीत
3 .3.4 भारतीय साहित्य: विशेषताएं और प्रवृत्तियाँ
3 .3.5 भारतीय साहित्य का विकास क्रम
3. 4 पाठ सार
3.5 पाठ की उपलब्धियां
3 .6 शब्द संपदा
3 .7 परीक्षार्थ प्रश्न
3 .8 पठनीय पुस्तकें

### 3.1 : प्रस्तावना

जैसे भिन्न भिन्न नस्लों, संप्रदायों और भाषाओं आदि के तथाकथित लेबलों के बावजूद भी हम सब भारतीय हैं, उसी प्रकार विभिन्न भाषाओं में लिखा गया हमारा साहित्य भी भारतीय साहित्य है। भारतीय साहित्य का इतिहास लगभग चार हजार वर्ष पुराना है। यदि कोई एक सिलसिलेवार लिस्ट बनाए तो इसकी प्राचीनता, सीमा और सदियों से हुए इसके विकास को आसानी से देखा-दिखाया जा सकता है। भारतीय साहित्य इसकी अनेक भाषाओं में लिखा गया साहित्य है, यह कहना कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन अधिक जरूरी बात इसके विकास पर नजर दौड़ाना है। यह जानना और समझना खासा दिलचस्प होगा कि आखिर कैसे इसका विकास हुआ। वे विषय और चिंताएँ जिनके साथ इसकी शुरुआत हुई, कौन सी हैं ? और वे बातें या आधार क्या हैं जिनकी वजह से आज तक यह विकास जारी है? भारतीय साहित्य को एक कहना आम बात है, लेकिन जब तक इस साहित्य की जड़ों की खोज नहीं की जाती, तब तक आसपास दिखाई देने वाली शाखाओं को उनके ऐतिहासिक और साहित्यिक संदर्भों में ठीक तरह से नहीं समझा जा सकता। इस इकाई में भारतीय साहित्य की अवधारणा और उसके विकास को तफ़सील से समझने-समझाने की कोशिश की गई है। इसकी जड़ों की तलाश करते हुए इसके विकास क्रम को देखना मजेदार होने वाला है।

### 3.2 : उद्देश्य

इस इकाई के पाठ से आप:

- भारतीय साहित्य की अवधारणा को समझ सकेंगे।

- भारतीय साहित्य से तात्पर्य और अभिप्राय को स्पष्ट जान लेंगे।
- भारतीय साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास के खास-खास बिंदुओं को देख सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के विकास क्रम में तफ़सील से समझ बूझ सकेंगे।

## 3.3 : मूल पाठ : भारतीय साहित्य की अवधारणा एवं विकास

### 3.3.1 भारतीय साहित्य : अर्थ और परिभाषाएँ

'भारतीय साहित्य' पद में दो शब्द हैं – भारतीय और साहित्य। 'भारतीय' में मूल शब्द भारत है और इसमें 'ईय' प्रत्यय लगा है। भारत का अर्थ है –भा+ रत (प्रकाश में रत) । कह सकते हैं कि भारत रोशनी या इल्म से भरा-पूरा और भरपूर है। साहित्य वह लेखन है जिसमें सह+हित या सबका फायदा होता है। भारतीय साहित्य अंधरे से उजाले की ओर ले जाता है। भारतीय साहित्य मोटे तौर पर 'सर्व-भारतीय संवेदना' या 'एहसासे-हिंदुस्तानियत' है।यह एहसास भारत के हर जज्बे में है तो उसके अदब-आदाब में भी है। भारतीय साहित्य का अर्थ इस प्रकार से ज्ञान का प्रकाश देने वाली रचनाओं से भरा है।वेद पुराणों से लेकर आज तक, हिंदी-उर्दू से लेकर अंग्रेजी तक भारत की सभी भाषाओं और बोलियों में लिखित और अलिखित साहित्य इसमें समाहित है।

भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है- उत्तर-पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू; पूर्व में उड़िया, बंगाल में असमिया; मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। इनके अतिरिक्त कुछ और भी भाषाएं हैं जिनका साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं है- जैसे कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोंकणी, तुलु आदि। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन 22 भाषाओं का शुमार है उनका साहित्य (अदब) बहुत समृद्ध है।इनका इतिहास भी काफी पुराना है और इन सभी में साहित्यिक धाराएं लगभग समान रूप से मिलती हैं। इसके साथ ही इन सभी भाषाओं का राष्ट्रीय चेतना और होने वाले परिवर्तनों के साथ एक-सा संबंध रहा है। यही नहीं ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से एक –सा प्रभावित इनमें से प्रत्येक का अपना साहित्य है। यह सभी दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही संपूर्ण साहित्य का संचयन किया जाये तो वह यूरोप के संकलित साहित्य से किसी भी तरह से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृतों और अपभ्रंशों के साहित्य को भी इसमें मिलाने से तो उसके अकूत खजाने की कल्पना करना भी कठिन होगा। डॉ नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि भारतीय साहित्य ज्ञान का अपार भंडार, हिंद महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी व्यापक हिमालय के शिखरों से भी ऊँचा और ब्रह्म की कल्पना से भी अधिक सूक्ष्म है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा को पेश करते वक्त यह ख्याल रखना बहुत जरूरी है कि हर भाषा का अपना एक अलग अस्तित्व है, पहचान है। भारतीय साहित्य उसके इस अलग व्यक्तित्व को नकारता नहीं है।हर भाषा और उसके साहित्य की अपनी रीति-नीति है। विविध सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, भाषिक पृष्ठभूमियों से जुड़े होने के बावजूद भारत की सभ्यता, संस्कृति और भारतीय साहित्य एक है। भारतीय साहित्य की अवधारणा भाषा साहित्य के समीकरण पर आधारित नहीं क्योंकि यहाँ बहुत सी भाषाएँ हैं। हमारी बहुभाषिक स्थिति में एक लेखक बहुत सी भाषाओं में लिखता है। इसीलिए भारतीय साहित्य को किसी एक भाषा से संबद्ध करके उसे चिह्नित नहीं किया जा सकता। जब कोई भारतीय साहित्य की बात करता है तब एक भौगोलिक क्षेत्र और राजनीतिक एकता की बात उठती है। भौगोलिक क्षेत्र की अपेक्षा भारतीयता का आदर्श हमारे लिए ज़्यादा आवश्यक है। इसकी खबर होने से ही भारतीय साहित्य की खोज-खबर ली जा सकती है। निर्मल वर्मा इसी को 'एक सभ्यता का समग्रता बोध' कहते हैं। डॉ. के. सच्चिदानंदन ने इस बात को परिभाषित करते हुए लिखा है, "अविच्छेद्य रूप में अपने सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों से एकाकार भारतीय साहित्य मूलत: भारतीय ही है—लिखा चाहे जिस भाषा में गया हो। मूलभूत एकता ने हमारे साहित्यों की मोहक विभिन्नता का गला कभी नहीं घोंटा।" डॉ रेखा उप्रेती ने इसी को मद्देनजर रखते हुए कहा है कि "बहुलता की स्वीकृति और समग्रता का बोध मिलकर ही भारतीयता और भारतीय साहित्य को सही सन्दर्भों में परिभाषित करते है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य सभी भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का समेकित रूप है। भारतीय साहित्य के इस प्रकार तीन अर्थ समझ में आ जाते हैं- संस्कृत साहित्य और उसकी विशाल परंपरा,भारत की सभी भाषाओं का साहित्य और आपस में अनुवाद के द्वारा पेश किया गया लेखन। इनमें माला के धागे सी 'भारतीयता' का सूत्र रहता है।

**बोध प्रश्न -**

- 'भारतीय साहित्य' का शाब्दिक अर्थ बताइए।
- आठवीं अनुसूची की चार भाषाओं के नाम लिखिए।
- भारतीय भाषाओं और यूरोप की भाषाओं के साहित्य में क्या कुछ तुलना की जा सकती है?
- भारतीयता से आप क्या समझते हैं?

### 3.3.2 नामकरण और पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य - भारत की सभी भाषाओं में लिखित और मौखिक साहित्य के भंडार को 'भारतीय साहित्य' कहा जाता है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं का साहित्य सम्मिलित रूप से भारतीय साहित्य है। यह एक समुच्चय है जो सभी भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का समेकित रूप है। भारतीय समाज को चित्रित करने वाला साहित्य ही भारतीय

साहित्य है। केवल भाषापरक ही नहीं बल्कि इसकी पहचान इसके भारतीय सामाजिक सरोकार से बनी है। हर वह साहित्य भारतीय समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आंचलिक पक्ष को उजागर करता है, वह भारतीय साहित्य कहलाने का हकदार है । भारतीयता को उसके समूचेपन के साथ प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही भारतीय साहित्य हो सकता है इसलिए विदेशों में भारतीय स्थितियों और समाज की अंतश्चेतना को प्रस्तुत करने वाला साहित्य भी भारतीय साहित्य की श्रेणी में स्थान प्राप्त करता है। केवल संविधान में उल्लिखित भाषाएँ ही नहीं वरन अन्य भारतीय बोलियों और उपभाषाओं में रचित साहित्य भी भारतीय साहित्य के दायरे में आता है।भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अंग्रेज़ी भाषा का उल्लेख नहीं है किन्तु भारतीय लेखकों द्वारा रचित अंग्रेज़ी साहित्य, भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय रचनाकारों के द्वारा रचित अंग्रेज़ी साहित्य की अपनी एक विशिष्ट पहचान है और इसे विश्व स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त है। इस तरह भारतीय साहित्य के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के साथ साथ भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य भी शामिल हो गया है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा के निर्माण की पहली कोशिश श्री अरविन्द ने अपनी पुस्तक 'इंडियन लिटरेचर' में की। उन्होंने वैदिक काल से लेकर भक्तिकाल तक के भारतीय साहित्य के केन्द्रीय स्वर का पता लगाया। उन्होंने कहा कि भारतीय मन का मूल स्वर आध्यात्मिक, अन्तर्दृष्टिपरक और मनोगत है। बाद में डॉ नगेन्द्र(1959), सुनीति कुमार चटर्जी (1963), कृष्ण कृपलानी(1968) आदि ने भारतीय साहित्य के मूल स्वर को स्वीकार किया। कृष्ण कृपलानी ने कहा कि समस्त भारतीय साहित्य में एक असीम सत्ता की प्रखर अनुभूति होती है।

देश की आजादी के बाद भारत के पूर्व-राष्ट्रपति सर्वेपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय साहित्य की अवधारणा को सबसे अच्छी तरह से पेश किया था। भारत में जब 'साहित्य अकादमी' का गठन हुआ तब 'भारतीय साहित्य' के बारे में बहुत से विद्वानों ने अपने अपने विचार रखने शुरू किये। यह जरूरी भी था क्योंकि देश की एकता को मजबूत करने में साहित्य का योगदान हमेशा रहा है। देश को आजादी दिलाने में लेखकों और कवियों की बड़ी भूमिका रही थी। बंकिम चंद ने यदि बंगला भाषा में 'वंदे मातरम' लिखा तो तमिल में सुब्रमण्यम भारती 'स्वदेश गीतांगल' लिख रहे थे। हिंदी में प्रेमचंद लिखते थे तो उडिया में फकीर मोहन सेनापति। उर्दू ने 'सारे जहां से अच्छा' और ' सरफरोशी की तमन्ना' ने जोश भरा। राधाकृष्णन जी ने एक बार आर्केस्ट्रा के उदाहरण से इसे इस प्रकार समझाया था। जैसे अलग-अलग वाद्य-यंत्र लेकर संगीतकार मंच पर आकर बैठते हैं तो वे अलग-अलग लगते हैं पर जब वे एक राग छेड़ते हैं तो उनका यह अलगाव मिट जाता है और एकता स्थापित हो जाती है। भारतीय साहित्य वास्तव में अनेकता में एकता की एक बढ़िया मिसाल है।

हर भाषा के साहित्य की अपनी अलग खासियत है । यह खासियत उस भाषा के इस्तेमाल करने वाले लोगों की शख़्सियत से मिलती है। पंजाबी और सिंधी, हिन्दी और उर्दू की -सीमाएँ कितनी मिली हुई हैं ! किंतु उनके अपने-अपने साहित्य की खासियतें अलग अलग है।इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जन-जीवन एक दूसरे से बहुत प्रभावित रहा है, पर वह भी अपनी अपनी खासियतों से भरा है। दक्षिण की भाषाओं का उद्गम एक है।द्रविड़ भाषा परिवार का अपना साहित्य हैं,और इसके साथ-साथ कन्नड़ और मलयालम या तमिल और तेलुगु में लेखन का अपना अपना नजरिया और रस है। यही बात बँगला, असमिया, और उड़िया के विषय में सच है। बंगाल और बांग्ला भाषा के गहरे असर के बावजूद असमिया और उड़िया का अपना अलग ही नूर है।

अनेकता में एकता, यह हिंद की विशेषता। यहाँ यह खासियत बहुत सी जबानों के द्वारा आती है। असमिया, बंगाली, डोगरी, मराठी आदि की एक अकेली किताब चाहे वह कितनी भी बढ़िया हो, आपकी इस अवधारणा को समझने में कोई खास मदद नहीं कर सकती। लेकिन जैसे ही आप इन सब किताबों को एक साथ देखते हैं और चाहे इनका मिलान करें या न करें, भारतीय साहित्य की अवधारणा साफ दिखाई देने लग जाती है। यह इस तरह होता है कि जब कोई लेखन अपनी मूल भाषाई सीमा को पार कर जाता है तो वह सुर्खरु हो जाता है।एक साथ जब कई रचनाओं को देखा जाता है तो लगता है कि इन सब में कोई साहित्यिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक जुड़ाव जरूर है। एस. राधाकृष्णन का अक्सर उद्धृत कथन "भारतीय साहित्य एक है, भले ही विभिन्न भाषाओं में लिखा गया हो" (Indian literature is one though written in many languages) यह बताता है कि भारत चाहे एक बहु- भाषी देश हो पर इनमें एक 'भारतीय' सूत्र या धागा है जो इनको एक सूत्र में जोड़ता है। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'लेंगवेजेज़ एंड लिटर्रेचर्स ऑफ इंडिया' में भारतीय साहित्य के लिए 'बहुवचन' शब्द का प्रयोग किया है। वे 'इंडियन लिटरेचर' के स्थान पर 'इंडियन लिटरेचर्स' पद का प्रयोग करने का सुझाव देते हैं।

भारतीय साहित्य के इतिहास लेखकों को यह समझने में बहुत वक्त लगा कि भारतीय साहित्य की अवधारणा अस्थिर नहीं, बल्कि स्थिर है। यह ख्याल नहीं, हकीकत है। ठीक बात है कि साहित्य भाषा-आधारित होते हैं और कोई एक अकेली "भारतीय" भाषा नहीं है जो देश के सभी साहित्य को एकजुट करती हो। पर सभी भाषाओं में एक तरह की जो 'पारिवारिक समानता' है, उसे भी तो नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जब हम "भारतीय साहित्य" (एकवचन में) जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं तो हमें सतर्क और सावधान रहने की आवश्यकता है क्योंकि इसकी एकता के लिए प्रत्येक तर्क हमें इसकी विविधता की गहरी समझ की ओर भी ले जाता है। किसी एक भाषा का साहित्य तो भारतीय साहित्य है ही, पर जब हम भारतीय साहित्य (बहुवचन में) का प्रयोग करते हैं तो इसमें 'समाहार' की और ज्यादा ताकत आ जाती है।

तब इसमें भारत में लिखा जा रहा वह साहित्य तो आ ही जाता है जिसे अंग्रेजी में लिखा जा रहा है, वह भी आ जाता है जो अनूदित होता है।

**बोध प्रश्न**

- "हर भाषा की अपनी खासियत है' इस कथन का क्या अर्थ है ?
- समाहार की ताकत से क्या अभिप्राय है ?
- भारतीय साहित्य में भारतीयों द्वारा अंग्रेजी मे लेखन का शुमार क्यों किया जाना चाहिए?

### 3.3.3 भारतीय साहित्य का अतीत

भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं है, फिर भी उनकी साहित्यिक आधारभूमि एक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत साहित्य – अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाणभट, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला। उपनिषद्, षड्दर्शन, स्मृतियाँ आदि और काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रंथ—नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण रस-गंगाधर आदि के विचारों का उपयोग भी सभी ने निरंतर किया है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये ग्रंथ कमाल के हैं जो प्रायः सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहे हैं। इनका प्रभाव निश्चय ही अत्यन्त समन्वयकारी रहा है और इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वतः ही आ गई है। यह कोई छोटी बात नहीं कि दूरी जो कुछ है वह भौगोलिक है, सोच में कोई दूरी नहीं ।

भारतीय साहित्य की अवधारणा पर विचार करते वक्त एक सवाल यह उठता रहा है कि क्या भारतीय साहित्य विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य का जोड़ भर है? या उसका कोई समेकित स्वरूप देखा-दिखाया जा सकता है? वस्तुत: भारतीय साहित्य की संकल्पना करते हुए यह बात साफ होना ज़रूरी है कि न तो किसी भारतीय भाषा विशेष को प्रतिनिधि मानकर उसके माध्यम से भारतीय साहित्य का सामान्यीकरण करना ठीक है, न अलग-अलग भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का जोड़ भर भारतीय साहित्य का स्वरूप निर्धारित करना जरूरी है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का नाम भारतीय साहित्य है; और भारतीय मनीषा का अर्थ है भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना सहस्राब्दियों से संचित अनुभूतियों और विचारों के नवनीत से जिसका निर्माण हुआ है। यह भारतीय मनीषा ही भारतीय संस्कृति, भारतीय राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य का प्राण तत्व है।"

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य के अतीत से क्या मतलब है?
- भारतीय साहित्य की अवधारणा और विकास की समझ के लिए अतीत से जुड़े रहना क्यों जरूरी है?
- भारतीय मनीषा का क्या तात्पर्य है?

### 3.3.4 भारतीय साहित्य :विशेषताएं और प्रवृत्तियाँ

भारतीय भाषाओं का साहित्य विविधता में एकता लिए हुए है । इस साहित्य का आधार विविधता नहीं समानता है। वे कौनसी समान बातें है जिनको भारत की प्रायः सभी भाषाओं में देखा जा सकता है । डॉ नगेन्द्र ने भारतीय साहित्य की अवधारणा पर विस्तार से विचार करते हुए कुछ प्रवृत्तियों की चर्चा की है :

1. प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की शुरुआत में नाथ साहित्य रचा गया है। उत्तर में गोरखनाथ, कर्नाटक में वीर शैव, तमिल में नायनार की परंपरा रही ।

2. भारतीय भाषा साहित्य की दूसरी प्रवृत्ति चारण काव्य है । चारण काव्य अर्थात राज प्रशस्तियां प्रायः सभ भारतीय भाषाओं में मिलती हैं । संस्कृत में भी यह है और तमिल के संगम साहित्य में भी । मराठी का पवाड़ा, हिंदी गुजराती का रासो साहित्य चारण काव्य के अंतर्गत आते हैं ।

3. भारतीय साहित्य की तीसरी प्रवृत्ति है संत काव्य धारा। दक्षिण से भक्ति की लहर उत्तर आयी।हिंदी में कबीर हैं तो तेलगु में वेमना। नामदेव मराठी में और गुजराती में सहजानंद, बंगाल में बाउल और पंजाबी में नानक देव ।

4. चौथी प्रवृत्ति प्रेमाख्यान काव्य की है। तमाम भारतीय भाषाओं में प्रेम के विविध रूप का आख्यान मिलता है। सूफी काव्य इसका ही रूप है।

5. पाँचवी प्रवृत्ति है वैष्णव काव्य-धारा की है । राम और कृष्ण के जीवन चरित और लीलाओं को मणिपुरी से लेकर मथुरा तक साहित्य में रचा गया है । तमिल में आलवार सबसे पुराने वैष्णव हैं। ब्रिजभाषा में कृष्ण काव्य मलयालम में रचा गया। हर भाषा में भक्ति की धारा रही।

आधुनिकता का आगमन लगभग साथ साथ ही भारत की भाषाओं में हुआ और कारण भी लगभग एक ही है – पराधीनता और स्वाधीनता की पुकार। 'खूब लड़ी मर्दानी' जैसी कविताओं को लिखने वाले हर भाषा में अनेक कवि हैं। । 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने सभी भाषाओं के साहित्यकारों को प्रभावित किया। डॉ नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक ' भारतीय साहित्य' में आधुनिक भारतीय साहित्य के चार प्रमुख पड़ावों का जिक्र भी किया है। वे हैं- पुनर्जागरण, राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष, रोमानी सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेष और साम्य वादी सामाजिक चेतना का उदय।

डॉ नगेन्द्र कहते हैं कि अगर भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य भारतीय साहित्य है तो इसकी ठोस वजह है, जैसे –

क) तमाम भारतीय प्रांतों का साझा अतीत

ख) सामाजिक संरचनाओं में एक सीमा तक अभिन्नता । समान सामाजिक पदानुक्रम की मौजूदगी ।
ग) समान साहित्यिक और शास्त्रीय स्रोत
घ) समान साहित्यिक आंदोलनों से जुड़ाव- भक्ति आंदोलन से लेकर स्वतंत्रता की खातिर आंदोलनों की एक लंबी फेहरिस्त है । इस चेतना ने सबको सरोबार किया ।
ऐतिहासिकता ने एक ओर तो भारतीय राष्ट्र की अवधारणा को मजबूती दी, दूसरी ओर समकालीनता ने 'भारतीय साहित्य' की अवधारणा को पोषित किया।
बोध प्रश्न

- "अगर भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य भारतीय साहित्य है तो इसकी ठोस वजह है" एक वजह बताइए ।
- 'साझा अतीत' को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

### 3.3.5 भारतीय साहित्य का विकास क्रम

भारतीय साहित्य शब्द का प्रयोग 1947 में भारतीय गणराज्य के निर्माण से पहले भारतीय उपमहाद्वीप में और 1947 के बाद भारत गणराज्य के भीतर निर्मित साहित्य को संदर्भित करने के लिए किया जाता है।सन् 1947 में जब भारत को आजादी मिली और इसका एक राष्ट्र के रूप में गठन हुआ, कुछ इतिहासकारों ने इस राष्ट्र को 'एक अस्वाभाविक राष्ट्र' कहा, क्योंकि उन्हें भारत की बहुभाषिकता और संस्कृति बहुलता का दूसरा नमूना संसार में पहले कहीं दिखाई नहीं दिया था। इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं समझना चाहिए कि आजादी से पहले भारतीय साहित्य नहीं था। बस, इससे पहले इसका समेकित अध्ययन इस तरह न होता था।

भारतीय साहित्य के विकास पर विचार करने वाले विद्वानों में से एक ने लिखा है- " भारतीय सभ्यता की तरह , भारतीय साहित्य का भी विकास, जो एक प्रकार से उसकी सटीक अभिव्यक्ति है, सामासिक रूप से हुआ है। इसमें अनेक युगों, प्रजातियों, और धर्मों का प्रभाव परिलक्षित होता है और सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते हैं। अत्यंत प्राचीन विकास क्रम के अतिरिक्त इसमें दो अन्य विशेषताएं भी हैं, जो सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को अपूर्व गौरव प्रदान करती है। एक है तीन हजार से अधिक वर्षों तक व्याप्त अखंड सृजन परंपरा सृजन परंपरा और दूसरी है वर्तमान में जीवित अतीत की प्राणवंत चेतना।" ( कृष्ण कृपलानी,पृष्ठ 11-12)। भारतीय साहित्य के विकास को विंटरनित्स ने अपनी तरह से बताया है, " भारतीय साहित्य का इतिहास भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त तीन-हजार वर्ष के मानसिक क्रियाकलाप का विकास क्षेत्र वह है जो हिंदुकुश पर्वत से कुमारी अंतरीप –लगभग डेढ़ लाख वर्ग मील तक फैला हुआ है –जिसका क्षेत्रफल रूस को छोड़कर समस्त यूरोप के बराबर है।"

बहु-भाषिकता, संस्कृतिबहुलता और सैद्धान्तिक विभिन्नता और भौगोलिक जटिलता आदि भारत की अपनी विशिष्टताएँ हैं। इतनी विभिन्नता के बावजूद इस देश का लोकतांत्रिक

सह-अस्तित्व का स्वरूप निश्चित ही भारत की बहुभाषिकता, इस राष्ट्र की अस्मिता और शक्ति है। भारतीय साहित्य भारत की अनगिनत भाषाओं जैसे संस्कृत, प्राकृत, पाली, बंगाली, बिहारी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, राजस्थानी, तमिल, तेलुगु, उर्दू, सिंधी, और अंग्रेजी में लिखा जाता रहा है। यह भारत की बहुभाषिकता का प्रमाण है।

आजादी से पहले 'भारतीय साहित्य' कई मायनों में अमूर्त अवधारणा रही। इसकी वजह यह थी कि पहले विदेशी विद्वानों ने भारत की संस्कृति और साहित्य की खूबियों को देखने की कोशिश की। उनकी समझ हमारी समझ के तरीकों से अलग थी। उधर के विद्वानों को ध्यान सबसे पहले भारत के पुराने साहित्य और कवियों पर पड़ा। भारतीय विद्या या इंडोलॉजी के अध्ययन में आपने भारतीय साहित्य में संस्कृत को पहली जगह दी। प्रारंभिक भारतीय साहित्य में चार वेदों का नाम सबसे पहले आता है। ये संस्कृत में लिखे गए थे। बाद में ब्राह्मण और उपनिषद जैसे ग्रंथ आए। संस्कृत साहित्य का विकास क्रम लगभग 1500 ईसा पूर्व से लगभग 1000 ईस्वी तक चला और पहली से सातवीं शताब्दी ईस्वी में अपने विकास के चरम पर पहुंच गया। पवित्र और दार्शनिक लेखन के अलावा, शृंगारिक और भक्ति गीत, दरबारी कविता, नाटक और कथात्मक लोककथाएँ जैसी शैलियाँ उभरीं। क्योंकि संस्कृत की पहचान कुछ विद्वानों द्वारा वेदों के ब्राह्मणवादी धर्म से होने लग गई थी, बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने अन्य साहित्यिक भाषाओं (क्रमशः पाली और अर्धमागधी) को अपनाया। इन और अन्य संबंधित भाषाओं से उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं का उदय हुआ। उन भाषाओं का साहित्य काफी हद तक प्राचीन भारतीय पृष्ठभूमि पर निर्भर था, जिसमें दो संस्कृत महाकाव्य - महाभारत और रामायण, साथ ही भागवत-पुराण और अन्य पुराण शामिल हैं। दार्शनिकता से भरे लेखन के साथ-साथ,दरबारी काव्य के विकास के लिए अलंकार-साहित्य का बहुत महत्व था। दक्षिण भारतीय तमिल भाषा संस्कृत प्रभाव के इस पैटर्न का अपवाद है क्योंकि इसकी अपनी एक शास्त्रीय परंपरा थी।

भारत के अतीत का विश्लेषण इन आधारों पर विदेशी विद्वानों ने किया। भारतीय साहित्य में रुचि पैदा करने और इसकी स्थापना और विकास में विंटरनिज़, चार्ल्स विलकिंस, ए बी कीथ, शॉपनहोवर, मैक्समूलर, गेटे, सर विलियम जोन्स, रोम्या रोलां आदि शुरुआत में भारतीय विद्या विशारद थे। भारतीय साहित्य की अवधारणा की स्थापना और उसके विकास में उनका योगदान है। पर , जैसा सुजीत मुखर्जी का कहना है, इन विद्वानों ने जब बाद में भारतीय साहित्य के इतिहास की अवधारणा पर ध्यान दिया तो इन्होंने अपनी दृष्टि को भाषा विज्ञान,व्याकरण तथा शब्दकोशों तक ही सीमित रखा और साहित्य के विश्लेषण के प्रति उदासीनता ही दिखाई।

भारतीय साहित्य की एक और अवधारणा इसके बाद विकसित हुई। सन 1835 में जब अंग्रेजी सरकार ने अपनी शिक्षा नीति चालू की और बाद में मैकाले के विचार सामने आए तो भारतीय साहित्य के विकास में गति आई। देश के कई विद्वान अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके अंग्रेजी में लिखने लगे। वे एक ओर तो भारतीयों को जगाना चाहते थे, दूसरी ओर वे दुनिया को दिखाना

चाहते थे कि भारतीय साहित्य संस्कृत में ही नहीं अंग्रेज़ी में भी लिखा जा सकता है। अंग्रेजी में लिखे गए गद्य का सामाजिक धरातल भारत की सांस्कृतिक एकता का परिचायक था।

भारतीय साहित्य के विकास का सीधा संबंध भारतीय भाषाओं के जन्म और उनके विकास से भी जुड़ा है। भारतीय भाषाओं में सभी भाषाओं का आदि काल लगभग पंद्रहवीं शताब्दी तक चलता है। तमिल और उर्दू को छोड़कर भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्मकाल लगभग एक ही है। तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि नन्नय का समय ईसा की ग्यारहवीं सदी है। कन्नड का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' है , जिसके लेखक राष्ट्रकूट-वंश के नरेश नृपतुंग (814-877 ई.) हैं ; और मलयालम की सर्वप्रथम कृति 'रामचरितम्' है। यह लगभग तेरहवीं शती की रचना है। गुजराती तथा मराठी का आविर्भाव-काल लगभग एक ही है। गुजराती का आदि-ग्रन्थ सन् 1185 ई. में रचित शालिभद्र सूरी का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' है। मराठी के आदि साहित्य का आविर्भाव बारहवीं शती में हुआ था। यही बात पूर्व की भाषाओं के बारे में भी सच है। बँगला के चर्यागीतों की रचना शायद दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच किसी समय हुई होगी। असमिया साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण प्रायः तेरहवीं शताब्दी के अंत के हैं। हेम सरस्वती की रचनाएँ 'प्रह्लादचरित्र' तथा 'हरिगौरीसंवाद' तभी की हैं। पृथ्वीराज रासो जैसे चारण काव्य हिंदी में दिखाई देते हैं तो उड़िया भाषा में भी तेरहवीं शताब्दी में निश्चित रूप से व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीतों के दर्शन होने लगते हैं। चौदहवीं सदी में उड़िया के व्यास सरलादास का जन्म हुआ था। इसी प्रकार पंजाबी और हिन्दी में ग्यारहवीं शती से साहित्य उपलब्ध होने लगता है। केवल तमिल और उर्दू का जन्म समय थोड़ा अलग है। तमिल संस्कृत के समान प्राचीन है।कई विद्वान तमिल को संस्कृत से भी पुरानी भाषा मानते हैं। उर्दू का आगाज़ पंद्रहवीं शती से बाद का माना जा सकता है। हालाँकि कुछ विद्वान उर्दू का जन्म 13-14 वीं शती के बाबा फ़रीद, अब्दुल्ला हमीद नागोरी तथा अमीर खुसरो की रचनाओं से मानते हैं।

आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास के चरण एक समान ही हैं। प्रायः सभी का आदिकाल पन्द्रहवीं सदी तक चलता है। पूर्वमध्यकाल की समाप्ति मुगल-वैभव के अन्त अर्थात सदी के मध्य में तथा सत्रहवीं सदी के मध्य में तथा उत्तर मध्यकाल की अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ होती है। तभी से आधुनिक युग का आरम्भ हो जाता है।इस समानांतर विकास-क्रम का आधार भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विकास-क्रम भी है। उन्नीसवीं शताब्दी तक भारतीय साहित्य का तात्पर्य हिन्दू-बौद्ध परंपरा में रचा जाने वाला प्राचीन संस्कृत (पालि, प्राकृत) साहित्य था। बीसवीं सदी से जब अनेक भाषाओं के साहित्य के इतिहास की रचना की जाने लगी तब विद्वानों का ध्यान गया। यह धारणा बनी कि भारत के विभिन्न प्रयत्नों या भाषा-भाषी विद्वानों द्वारा रचित विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहासों का यह कुल जोड़ है। हमने यह माना कि किसी देश का साहित्य बहुत-सी भाषाओं में रचा जा सकता है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारत की सभी भाषाओं में देशानुराग और राष्ट्रीय एकता से भरी रचनाएं लिखी गईं। सबका एक ही इरादा था कि देश आजाद हो। जब देश आजाद हुआ तो संविधान में हिंदी और अंग्रेजी सहित भारत की बहुत सी भाषाओं को जगह मिली। कई अकादमियों का गठन किया गया। अनेक भाषाओं में लिखित होने के बावजूद भारतीय साहित्य एक ही है क्योंकि इसकी आत्मा एक है। आपस में अनुवाद के जरिए एकजुटता और संबंध कायम होता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा को मजबूत करने के लिए कई विद्वान लगातार लिखते रहे हैं। 'इंडियन लिटरेचर' के इतिहास पर किताबें और पत्र-पत्रिकाएं लगातार आती हैं। 'तुलनात्मक साहित्य' अपने आप में खूब नाम कमा रहा है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा और उसके विकास पर विद्वान जितना विचार करते हैं उतना ही अचरज करते हैं। एकता के इतने मजबूत धागे हैं कि बहुभाषी पाठक दंग रह जाता है। हिंदी के विद्यार्थी को बहुभाषी होना चाहिए। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के जानकार बता सकते हैं कि इनमें एकता कितनी ज्यादा है और अलगाव कितना कम। लिपि के स्तर पर इनमें अलगाव है तो व्याकरण के स्तर पर एका भी है। एक से अधिक भाषा जानने वालों को साफ साफ नजर आता है कि भारतीय साहित्य की अवधारणा अमूर्त नहीं, बल्कि मूर्त है। कई लक्षण तो साफ साफ दिखाई देते हैं। इसका दीदार करना जरूरी भी है और मुमकिन भी।

**बोध प्रश्न**

- विकास के चरण समान होने का आप क्या मतलब निकालते हैं?
- हिंदी-उर्दू में एक अलगाव और एक मेल का उदाहरण दीजिए।

## 3.4 : पाठ सर

यह इकाई बहुत कुछ बताती और विस्तार से समझाती चलती है। इसके पाठ से आप भारतीय साहित्य की अवधारणा का अर्थ और उसके विकास के प्रमुख बिंदुओं प्राप्त कर सकें हैं। यह काफी उलझन पर समझदारी की बात है क्योंकि भारतीय साहित्य लिखित और अलिखित तो है ही, यह अनगिनत भाषाओं में भी बहुतायत से मिलता है। यह साहित्य बड़े पुराने जमाने से चला आ रहा है। वेद, पुराण, उपनिषद से शुरू करके रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य भारतीय साहित्य के खजाने के हीरे- जवाहरात हैं। भारतीय साहित्यकार अपनी अपनी भाषाओं में लिखते रहे हैं। इसलिए इसके विकास की कहानी जबरदस्त है। अंग्रेजी और उर्दू में भी साहित्यकार खूब लिखते हैं। पर उनकी सोच और उनके विचार लगभग एक से होते हैं। संवेदना और एहसास सबके एक से हैं। आजादी के तराने सबने गाए हैं और आज भी घर-परिवार, खेत-खलियान, आबो-हवा और दुनिया भर की सुख-शांति भारतीय साहित्य की जान है। भारत की सभी भाषाओं में आपसी अनुवाद और तर्जुमे की रवायत और परंपरा जारी है। हिंदी-उर्दू के उदाहरण से देखें तो पता चलता है कि दो भाषाओं में एकता ज्यादा है और अलगाव कम और नामालूम सा। यही बात कमोबेश सभी भाषाओं में दिखाई देती है। भारतीय साहित्य का कारवां तब से अब तक सब को लेकर विकास के रास्ते आगे बढ़ता चला जा रहा है।

## 3.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त हुई -

1. तय है कि इस इकाई से आपको भी दूसरे सह-पाठियों की तरह भारतीय साहित्य की अवधारणा की समझ विकसित हुई।
2. भारतीय साहित्य का मतलब पता चला और यह भी पता चल गया कि इतनी सारी भाषाओं में लिखित भाषाओं के साहित्य में एकता के आधार कैसे बनते चले गए।
3. भारतीय साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास के खास-खास बिंदुओं को सिलसिलेवार देखना आसान हुआ।
4. भारतीय साहित्य के विकास क्रम में तफ़सील से समझ बूझ सके और आगे की पढ़ाई का रास्ता भी आसान हो गया समझ में आया कि भाषा माध्यम है, विचार और भावनाएं , एहसास और सोच की एकता सबसे खास है।

## 3.6 : शब्द संपदा

1. अतीत – बीता हुआ वक्त, गुजरा हुआ जमाना
2. अवधारणा - अवधारणा शब्द संस्कृत शब्द "अवधारयति" से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है "अनुभव करना" या "समझना"। संकल्पना, विचारधारा, धारणा
3. तथाकथित - जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो, अप्रामाणिक, संदिग्ध; विवादास्पद कहने भर का; नाम भर का,किसी के द्वारा मान लिया गया; तथोक्त; (सो कॉल्ड)
4. समेकित - जिसका समेकन किया गया हो · मिलाकर एक किया हुआ; परस्पर मिलाया हुआ; संयुक्त।
5. समुच्चय - बहुत सी चीजों का एक में मिलना, समाहार, मिलन · समूह, राशि, ढेर; साहित्य में एक प्रकार का अलंकार
6. सामासिक - सामूहिक; अनेक तत्वों या हिस्सों से बना हुआ मिश्रित; (कंपोज़िट), संक्षिप्त।
7. सह-अस्तित्व- एक दूसरे के विकास में सहयोग करते हुए साथ-साथ रहना ।
8. मूर्त और अमूर्त - मूर्त जिसे कोई व्यक्ति देख सकता है, महसूस कर सकता है या छू सकता है, अमूर्त इसका उलट या विपरीत है।

## 3.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

खंड –(अ)

**दीर्घ प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. 'भारतीय साहित्य' से आप क्या समझते हैं? किसी एक भाषा के साहित्य से उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
2. "भारतीय साहित्य की अवधारणा अमूर्त नहीं, बल्कि मूर्त है।" इस कथन से आप क्या समझतेहैं?
3. भारतीय साहित्य की अवधारणा और विकास पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।
4. "भारतीय साहित्य के विकास का सीधा संबंध भारतीय भाषाओं के जन्म और उनके विकास से भी जुड़ा है" इस कथन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
5. भारतीय साहित्य की साझा प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
6. भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकास में देशी-विदेशी विद्वानों के योगदान की चर्चा कीजिए।
7. "आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास के चरण एक समान ही हैं।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

खंड –(ब)

**लघु प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।**

1. भारतीय साहित्य की अवधारणा के बारे में सर्वपल्ली राधाकृष्णन के विचारों को प्रस्तुत कीजिए।
2. विदेशी विद्वानों ने भारतीय साहित्य का विश्लेषण किन आधारों पर किया?
3. क्या अंग्रेजी में भारतीयों के द्वारा लिखित साहित्य 'भारतीय' हो सकता है? तर्क पूर्ण उत्तर दीजिए।
4. भारतीय भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य को 'भारतीय साहित्य' कहने के पीछे की चार ठोस वजह बताइए।
5. बहुभाषिकता का उदाहरण देते हुए अर्थ स्पष्ट कीजिए।
6. राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान कैसी रचनाएं ज्यादा हुईं और क्यों?

खंड- (स)

I. सही विकल्प चुनिए

1) भारत की प्रमुख विशिष्टताओं में से यह एक नहीं हैं-

क) बहु-भाषिकता ख) संस्कृतिबहुलता ग) अधार्मिकता घ) भौगोलिक जटिलता

2) डॉ नगेन्द्र के अनुसार यह भारतीय साहित्य की शुरुआती प्रवृत्ति नहीं है-

क) नाथ साहित्य ख) चारण काव्य ग) रामायण-महाभारत घ) संत काव्य धारा

3) उत्तर में गोरखनाथ, कर्नाटक में वीर शैव, तमिल में नायनार किस परंपरा में आते हैं-

क) चारण ख) सामासिक एकता ग) नाथ घ) विजातीय

4) भारतीय साहित्य के लिए बहुवचन का प्रयोग करने वाले विद्वान हैं-

क) सुनीति कुमार चटर्जी ख) सुजित मुखर्जी ग) डॉ राधाकृष्णन घ) सरला दास

5) सही क्रम बताइए

क) वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश

ख) संस्कृत, वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश

ग) अपभ्रंश, वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि और प्राकृत

घ) वैदिक संस्कृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पालि और प्राकृत

**II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए**

1) प्रारंभिक भारतीय साहित्य में __________ का नाम सबसे पहले आता है।

ख )भारतीय भाषाओं में सभी भाषाओं का ______________ लगभग पंद्रहवीं शताब्दी तक चलता है।

2) __________________ को छोड़कर भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्मकाल लगभग एक ही है।

3) राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारत की सभी भाषाओं में ______________ और __________ से भरी रचनाएं लिखी गईं।

**III. सुमेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| 1) भाषा परिवार | क) पृथ्वीराज रासो |
| 2) रस गंगाधर, साहित्य-दर्पण | ख) आकर ग्रंथ |
| 3) शुरुआती प्रवृत्ति | ग) काव्य शास्त्र |
| 4) चारण काव्य | घ) इंडो-यूरोपियन |

5) रामायण महाभारत　　　　　　　　　　　　　च) नाथ साहित्य

## 3.8 : पठनीय पुस्तकें


1. भारतीय साहित्य की पहचान (2009 ) डॉ सिया राम तिवारी , वाणी प्रकाशन , दिल्ली
2. भारतीय साहित्य (2004) : डॉ नगेन्द्र, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
3. के. सच्चिदानंदन, भारतीय साहित्य: स्थापनाएं और प्रस्तावनाएं (अनुवाद-अनामिका), राजकमल प्रकाशन,दिल्ली

http://saagarika.blogspot.com/2013/02/blog-post.html

## इकाई 4 : भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

4 .1 प्रस्तावना
4 .2 उद्देश्य
4 .3 मूल पाठ : भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं
4 .3.1 विषय प्रवेश
4. 3.2 बोली-भाषा समाज की समस्या
4 .3.3 भाषा परिवारों की विविधता की समस्या
4 .3.4 भारतीय साहित्य के अध्ययन की दूसरी समस्याएं
4 .3.5 समस्याओं का समाधान
4 . 4 पाठ सार
4 .5 पाठ की उपलब्धियां
4 .6 शब्द संपदा
4 .7 परीक्षार्थ प्रश्न
4 .8 पठनीय पुस्तकें

### 4.1: प्रस्तावना

भारतीय साहित्य की अवधारणा को समझते वक्त आपके मन में कई सवाल खड़े हुए होंगे। यह भी लगा होगा कि जब हिंदी साहित्य को पढ़ने में ही बहुत वक्त और मेहनत लगती है तो बहुत सी भाषाओं में मिलने वाले साहित्य को एक साथ पढ़ना और अध्ययन करना बहुत मशक्कत वाला काम होगा। बात तो सही है कि भारतीय साहित्य बड़ा व्यापक है। भारतीय साहित्य एक दृश्य नहीं दृश्य पटल है। इसके अध्ययन में बहुत सी समस्याएं होंगी ही। इन समस्याओं को यदि हम समझ लें तो बात आसान हो जाएगी। फिर इन समस्याओं को चुनौती के रूप में लेना किसी भी अध्येता के लिए बेहतर रहेगा। इस इकाई में इसी वजह से भारतीय साहित्य के अध्ययन की प्रमुख समस्याओं को पेश किया गया है। इनको प्रस्तुत करने के बाद कुछ सुझाव भी दिए गए हैं जिससे भारतीय साहित्य के अध्ययन की इन समस्याओं को हल किया जा सके। याद रखिए कि 'किसी भी भाषा के साहित्य का निर्माण अन्य भाषाओं के साहित्य से अलगाव की अवस्था में नहीं होता।' यह राम विलास शर्मा जैसे बड़े विद्वान का कहना है।उनका यह भी कहना है कि भारतीय साहित्य भारत का राष्ट्रीय साहित्य है। ये दो सूत्र हम साथ लेकर चलेंगे। अलगाव नहीं, हम मेल की बात करेंगे। भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं की ही नहीं, उनके समाधान को भी देखेंगे।

### 4.2 : उद्देश्य

इस इकाई के पाठ से आप

- भारतीय साहित्य की विपुलता और फैलाव का अंदाजा लगा सकेंगे।

- भारतीय साहित्य के फैलाव को जानकर उसके अध्ययन में आने वाली समस्याओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- इन समस्याओं को चुनौती की तरह लेकर उनके समाधान के रास्ते पता करेंगे।
- भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं और उनके समाधान पर विचार व्यक्त कर सकेंगे।

## 4.3 : मूल पाठ : भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं

### 4.3.1 विषय प्रवेश

व्यापक रूप से, भारतीय साहित्य से तात्पर्य भारतीय उपमहाद्वीप में रचित साहित्य से है। इस देश में किसी भी काल, किसी भी भाषा में जो साहित्य रचा गया है , उसका विवेचन भारतीय साहित्य के अंतर्गत होना चाहिए। यह विद्वानों का विचार है। ठीक भी है क्योंकि किसी भी भाषा के साहित्य का विवेचन अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य से आगे जाकर करना चाहिए। हम ऐसा करके किसी पर एहसान नहीं करते, इसके बिना कोई चारा ही नहीं है।

राम विलास शर्मा ने बड़ी अच्छी बात कही है कि एक बार जब हम यह मान लेते हैं कि भारत एक राष्ट्र है तो यह भी मानना होगा कि इस राष्ट्र में जो कुछ लिखा जाता है , वह भारतीय है। वह अच्छा है या बुरा, यह सवाल बेमानी है।भारत में 121 से अधिक बोलियों या उप-भाषाओं और 22 आधिकारिक भाषाओं के साहित्य से किसी भी पाठक का सामना होता है। सारे यूरोप में जितनी भाषाएँ हैं, उनसे कई गुना अधिक भाषाएँ भारत में है। अपने-अपने अंचलों में, भले ही, इन भाषाओं के साहित्य का प्रचार-प्रसार हो जाता हो, मगर उनका प्रभाव विश्व साहित्य के दरबार में अनुभव नहीं किया जा सकता है। यह भाषाई विविधता भारतीय साहित्य के अध्ययन के लिए कई चुनौतियाँ पैदा करती है। कुछ भाषाएं तो ऐसी हैं जिनमें समस्या कम है जैसे गुजराती और हिंदी। कुछ भाषाओं में यह समस्या ज्यादा है जैसे हिंदी और तमिल। इनके साहित्य का स्वर एक है पर नजरिया बदल भी जाता दिखाई देता है। हिंदी और उर्दू जब तक बोलचाल की भाषा होती हैं तब तक कोई खास चुनौती नहीं पेश आती। पर दोनों की लिपि अलग अलग होने पर चुनौती और समस्या आती ही है। कई बार उर्दू-हिंदी के साहित्यकार एक ही होते हैं। प्रेमचंद हिंदी के भी हैं और उर्दू के भी। पर उनकी एक ही रचना के दो दो पाठ और नजरिए हो सकते हैं। इसके कारण इनके अध्ययन में कई बार समस्याएं पैदा होती हैं। भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं है, तो समाधान भी खोजने होंगे। यह चुनौती तब तेज होकर सामने आती है जब कोई अपनी भाषा से आगे बढ़कर दूसरी भारतीय भाषा के साहित्य की तरफ जाता है।

सबसे पहले तो यही समस्या है कि भारतीय साहित्य है क्या? इसमें किसे शामिल करें और किसे छोड़ दें। जैसा इस उपखंड के पहले वाक्य में भारतीय साहित्य को इस उपमहाद्वीप

का साहित्य कहने वाले भी हैं। भारतीय से क्या मतलब है? सवाल और भी बहुत से हैं, जैसे इसके अध्ययन में अंग्रेजी में भारतीयों के द्वारा लिखित साहित्य का शुमार होगा या नहीं? क्या भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से आने वाला साहित्य भी भारतीय साहित्य में आएगा? संस्कृत, पालि, प्राकृत, आदि भाषाओं के साहित्य को भारतीय साहित्य में शुमार करते हैं तो अरबी- फारसी में भारतीयों के द्वारा लिखा साहित्य किस दर्जे में रखा जाएगा? उपभाषाओं और बोलियों का लेखन किस तरह देखा जाए? अवधी, ब्रज, राजस्थानी में लिखा साहित्य यदि हिंदी साहित्य है तो मैथिली का क्यों नहीं? यदि आपके मन में भी कुछ इस तरह के सवाल पैदा हो रहें हैं तो आप आसानी से समझ सकते हैं कि भारतीय साहित्य के अध्ययन की बहुत सी समस्याएं है। इनमें से कुछ तो सच में चुनौती से कम नहीं और कुछ ऐसी भी हैं जो आसानी से दूर की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए भारत की बहुत सी भाषाओं में से कोई अध्येता भला कितनी भाषाएं सीख सकता है? समाधान भी है कि वह बहुत सी रचनाओं को अनुवाद के जरिए से पढ़ सकता है। आइए, अब एक एक कर इन सब समस्याओं पर गौर करें।

**बोध प्रश्न -**

- भारतीय साहित्य है क्या? एक वाक्य में स्पष्ट करें?
- हिंदी और मैथिली के संबंध को ध्यान में रखते हुए बोली-भाषा की समस्या की तरफ इशारा कीजिए।
- हिंदी की चार बोलियों के नाम लिखिए।

### 4.3.2 बोली-भाषा समाज की समस्या

हिंदी भाषा तो आप मानते ही हैं कि यह देश की राज भाषा है। इसका साहित्य आप पढ़ रहे हैं। पर यह जो हिंदी है, वह भी कई बोलियों का मेल है। तुलसी दास और सूरदास क्रमशः अवधी और ब्रज भाषाओं(बोलियों-उपभाषाओं) के कवि हैं और हिंदी के भी। जिस भाषा में आप यह इकाई पढ़ रहे हैं, वह खड़ी बोली है। यह दिल्ली और उसके आस पास बोली जाती है। पर खड़ी बोली के अपने लेखक और साहित्यकार बहुत कम हैं। यदि आप खूब सोचकर किसी का नाम लेंगे तो हो सकता है, भूल कर बैठें। निराला, पंत, प्रसाद, प्रेमचंद, अज्ञेय, यशपाल, मुक्तिबोध, महादेवी, सूर, कबीर, तुलसी आदि में से कोई भी हिंदी का साहित्यकार नहीं, पर सब हिंदी के अपने साहित्यकार हैं। ठेठ हिंदी अर्थात खड़ी बोली के पक्के साहित्यकार तो विष्णु प्रभाकर और जैनेन्द्र कुमार हैं जो खड़ी बोली क्षेत्र में पैदा हुए थे।

भारतीय साहित्य की इस प्रमुख समस्या की गंभीरता को अब आप समझ गए होंगे। नहीं समझे तो समझ लें। क्योंकि यह कमोबेश हर प्रमुख भाषा के साथ है। विद्यापति को आप हिंदी का प्रमुख कवि कहते हैं और इनकी कविताओं को हिंदी की मानकर पढ़ते हैं। मैथिली भाषी उन्हें अपना खास कवि मानते हैं। प्रेमचंद उर्दू के पहले हैं , या हिंदी के?

यह चर्चा और बातचीत खूब लंबी चल सकती है। पर बात इतनी सी है कि इन सब अलग अलग बोलियों और भाषाओं में मिलने वाला साहित्य एक है। क्योंकि इनकी रचना करने वाले हिंदी भाषाई समाज की जातीय चेतना एक है। हिंदी भाषी समाज का सदस्य होने के कारण किसी साहित्यकार की मातृ बोली चाहे कुछ भी हो, वह एक है । इसी तर्ज पर कहा जा सकता है कि तमिलनाडु का तमिल भाषी, आंध्रप्रदेश और तेलंगाना का तेलुगुभाषी, महाराष्ट्र का मराठीभाषी, और बंगाल का बंगलाभाषी अपनी तमाम लोकल (स्थानीय) सीमाओं के बावजूद जो कुछ इन भाषाओं का है वह कुल मिलाकर भारतीय साहित्य है।

यह सब भारतीय साहित्य है क्योंकि भारतीय साहित्य की ऐतिहासिक परंपरा, सांस्कृतिक जीवन-मूल्य और साहित्य संवेदना एक है। इनकी परंपरा वेद-पुराण और संस्कृत के रामायण-महाभारत जैसे आकर ग्रंथ हैं। भारतीय भाषाओं के मूल काव्यशास्त्र और काव्यशास्त्री सीधे संस्कृत से आते हैं और प्रायः सब भाषाओं में आदर पाते हैं। पर जो कुछ संस्कृत में लिखा गया है वही भारतीय साहित्य है, यह सोचना, मानना और समझना समस्या पैदा कर सकता है। यदि आप देश की सभी भाषाओं के साहित्य को भारतीय साहित्य समझते हैं तो कोई मुश्किल पैदा नहीं होगी। पर एक ही भाषा को सब कुछ मानकर चलना मुश्किलें पैदा करता है।

हिंदी के इस उदाहरण से आप अब जरूर समझने लगे होंगे कि भारतीय साहित्य के अध्ययन की प्रमुख समस्या भाषा-बोली का वैविध्य है। संस्कृत के उदाहरण से आप यह समझ गए होंगे कि किसी एक भाषा पर जोर देना तंग नजरी होगी। आप यह भी समझ पा रहे होंगे कि इस समस्या का समाधान भी भारतीय बड़े सद्भाव और प्रेम से करते चले आए हैं। आप इस बात को मानते हुए कि भारत एक बहुभाषिक देश है, आगे बढ़ें।

**बोध प्रश्न**

- "जो कुछ संस्कृत में लिखा गया है वही भारतीय साहित्य है" इस कथन से अध्ययन की क्या समस्या पैदा होती है?
- हिंदी की बहुत सी बोलियाँ अध्ययन की क्या समस्या खड़ी करती हैं?
- क्या हिंदी कई बोलियों के मेल से बनी भाषा है?

### 4.3.3 भाषा परिवारों की विविधता की समस्या

वैसे भाषा परिवारों की समस्या को पहले स्थान पर रखा जाना ठीक रहता, पर आप इसे यहीं इस उप विभाग में देखें। भाषा परिवारों की समस्या थोड़ी अकादमिक है।भारत भाषाई रूप से विविधता से भरा राष्ट्र है, जिसमें कई अलग-अलग भाषा परिवारों से संबंधित भाषाओं की भरमार है। इन भाषा परिवारों के साहित्य का अध्ययन भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत के दरवाजे खोल देता है। ये भाषा परिवार शब्द-भंडार और व्याकरण की दृष्टि से भी अलग-अलग हैं । इसलिए भारत के प्रमुख भाषा परिवारों और उनकी साहित्यिक

परंपराओं की कोई सूची बनाना आसान नहीं। फिर भी मोटा-मोटी  चार भाषा परिवार तो हैं ही।

क. भारोपीय भाषा परिवार: संस्कृत एक प्राचीन इंडो-आर्यन भाषा है, जो कई शास्त्रीय भारतीय भाषाओं का मूल है। इसकी एक विशाल साहित्यिक परंपरा है।  इसमें  वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण और शास्त्रीय संस्कृत कविता जैसे ग्रंथ शामिल हैं। हिंदी ने संस्कृत से बहुत कुछ लिया है। हिंदी भारत में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है।  और इसकी एक भरी पूरी  साहित्यिक परंपरा है। तुलसीदास, कबीर और प्रेमचंद आदि ने  हिंदी साहित्य के खजाने को भरा है। बांगला   साहित्य में रबींद्रनाथ टैगोर जैसे कवि  शामिल हैं। इनकी कविताओं ने दो दो देशों को राष्ट्र गान दिए हैं। इन्होंने  1913 में साहित्य का  नोबेल पुरस्कार जीता। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, शरत चंद्र चट्टोपाध्याय और काजी नजरूल इस्लाम की रचनाएँ भी बांगला   साहित्य का एक खास हिस्सा हैं।  मराठी साहित्य की एक समृद्ध परंपरा 13वीं शताब्दी से चली आ रही है, जिसमें संत ज्ञानेश्वर जैसे लेखक और पु.  ला. देशपांडे जैसे आधुनिक लेखक शामिल हैं। उर्दू, जिसकी जड़ें फ़ारसी और अरबी में हैं, मिर्ज़ा ग़ालिब और अल्लामा इकबाल जैसे कवियों के साथ एक विशिष्ट साहित्यिक परंपरा बनाती  है।

ख. द्रविड़ भाषा परिवार: तमिल साहित्य की एक प्राचीन और व्यापक परंपरा है, जिसमें संगम कविता दो सहस्राब्दियों से भी अधिक पुरानी है। तिरुवल्लुवर और सुब्रमण्यम भारती जैसे कवियों की कृतियाँ तमिल साहित्य में मनाई जाती हैं। तेलुगु साहित्य अपनी शास्त्रीय कविता और नाटक के लिए जाना जाता है। अन्नमाचार्य जैसे लेखकों और श्री श्री जैसे आधुनिक लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कन्नड़ साहित्य में प्राचीन कविता, वचन साहित्य और कुवेम्पु, जैसे आधुनिक लेखकों की समृद्ध विरासत है।

ग. तिब्बती-बर्मी  भाषा परिवार: तिब्बती साहित्य में मुख्य रूप से बौद्ध धर्मग्रंथ, ऐतिहासिक ग्रंथ और कविता शामिल हैं। यह तिब्बती संस्कृति और आध्यात्मिकता का अभिन्न अंग है।

घ. ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा परिवार: खासी साहित्य मुख्य रूप से मौखिक है लेकिन धीरे-धीरे इसे लिखित रूप में पेश  किया जा रहा है। लोक कथाएँ, किंवदंतियाँ और कविता खासी साहित्यिक परंपराओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भारत में इन विविध भाषा परिवारों के साहित्य का अध्ययन करने से देश की बहुमुखी संस्कृति, इतिहास और सामाजिक गतिशीलता के बारे में जानकारी मिलती है। प्रत्येक भाषाई परिवार की अपनी अनूठी साहित्यिक शैलियाँ और विषय हैं।  ये  भारतीय समाज की विविधता और

समृद्धि को दर्शाते हैं। इन परंपराओं की खोज से विद्वानों और उत्साही अध्येताओं को भारत की साहित्यिक विरासत और देश की पहचान पर इसके गहरे प्रभाव की गहरी समझ प्राप्त होती है।

इतने सारे भाषा परिवार भारतीय साहित्य को मजबूत करते हैं। ये समस्या भी पैदा करते है। इससे बहुत कुछ ख्याल रखना पड़ता है और अध्ययन को काबू में रखना होता है। फैलाव से बेहतर गहराई को अपनाना होता है। भारत में आर्य, द्रविड़, नाग, और कोल परिवारों की भाषाएं हजारों साल से बोली जाती हैं। कुछ भाषा परिवार की कई भाषाएं ऐसी हैं जिनमें साहित्य का विकास अभी कम हुआ है। नाग और कोल परिवार की भाषाएं और आदि वासी समाज की कई भाषाएं धीरे धीरे विकसित हो रही हैं। इनमें लेखन भी हो रहा है। समाजवादी भारत में पिछड़ी हुई भाषाओं को भी आगे बढ़ने के अवसर मिलते हैं। लुप्त प्रायः भाषाओं के साहित्य को भी सहेजना जरूरी होता है। इनके अध्ययन और विकास की चुनौती को गंभीरता से लेना होगा।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय भाषा परिवारों की विविधता से अध्ययन की क्या समस्याएं हो सकती हैं?
- किसी भाषा परिवार की भाषा को उसी परिवार की दूसरी भाषाओं से जोड़कर देखने से क्या फायदा होगा?

### 4.4.4 भारतीय साहित्य के अध्ययन की दूसरी समस्याएं

भारतीय भारत में हजारों वर्षों से साहित्यिक रचनाएँ लिखी जा रही हैं। इन सबका विशेषज्ञ होना किसी अध्येता के लिए सर्वथा असंभव है। भले ही आप किसी एक भाषा पर ध्यान केंद्रित करें, फिर भी अध्ययन के लिए विशाल मात्रा में साहित्य मौजूद है। कई कठिनाइयाँ सामने आ खड़ी होती हैं जैसे-

**सामग्री तक पहुँचने में कठिनाई :** भारतीय साहित्य की कई प्रारंभिक रचनाएँ संस्कृत में लिखी गईं, जो हरेक के सीखने में नहीं आ सकती। इसकी शास्त्रीयता और व्याकरणिकता से आम अध्येता डर जाता है। यहां तक कि अधिक सुलभ भाषाओं में लिखी गई रचनाओं के लिए भी अच्छे अनुवाद ढूंढना मुश्किल हो सकता है।

**सांस्कृतिक विविधता की कठिनाई :** भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अपनी अनूठी संस्कृतियाँ और परंपराएँ हैं, और यह उनके साहित्य में दिखाई देता है। इससे उस संस्कृति की गहरी समझ के बिना साहित्य के किसी कार्य के अर्थ को समझना मुश्किल हो सकता है जिसमें वह रचा गया था।

कई कृतियों के आलोचनात्मक संस्करणों का अभाव: बहुत सी किताबों पर किसी का ध्यान नहीं जाता। पुरानी किताबों पर विद्वानों ने यदि बहुत थोड़ा लिखा हो तो भी कोई

आसानी नहीं होती बल्कि परेशानी ही होती है। इससे किसी कार्य के मूल पाठ को निर्धारित करना और विभिन्न संस्करणों की तुलना करना मुश्किल हो सकता है।

**अधिकारी विद्वानों और संसाधनों की कमी :** एक तो बहु-भाषी अधिकारी विद्वानों की कमी है। उदाहरण के लिए, हिंदी साहित्य को पढ़ने पढ़ाने वाले हैं, पर भारतीय साहित्य को पढ़ने-पढ़ाने वाले कम हैं। सीमित संख्या में पुस्तकालय और अभिलेखागार हैं जिनमें भारतीय साहित्य से संबंधित सामग्री उपलब्ध है। इससे किसी विशेष कार्य का अध्ययन करने के लिए आवश्यक संसाधनों को ढूंढना मुश्किल हो सकता है।

**कुछ कार्यों से जुड़ी राजनीतिक और धार्मिक संवेदनाएँ:** भारतीय साहित्य के कुछ कार्यों को पवित्र और कुछ को विवादास्पद माना जाता है, और इससे लोगों को नाराज किए बिना उनका अध्ययन करना मुश्किल हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कहे कि दलित साहित्य का लेखन और अध्ययन कोई दलित ही कर सकता है तो यह ज्यादती होगी।

हमारा तंग नजरिया: हम हैं तो इंसान ही। कभी कभी संकुचित दृष्टि से देखते हैं। संस्कृत हिंदुओं की है, पालि-प्राकृत जैन और बौद्धों की, अरबी का साहित्य मुसलमानों का लिखा हुआ है, अंग्रेज़ी साहित्य ईसाइयों का लिखा हुआ है आदि बातें यहाँ लोग चलाने की कोशिश करते ही रहते हैं। पर इससे इनका साहित्यत्व तो कम या नष्ट नहीं हो जाता।

भारत के बहुत से इलाकों में इस्लाम का प्रचार हुआ। बहुत से मुसलमान कवियों ने भारतीय भाषाओं में लिखा है और अब भी लिख रहे हैं। शाह अब्दुल लतीफ़ सिंधी के, वारिस शाह और बुल्ले शाह पंजाबी के, मलिक मुहम्मद जायसी और रसखान हिंदी के कवि थे। फिर अंग्रेज आए। उन्होंने आपसी भाई चारे को खत्म करने की कोशिश की।फिर भी ईसाई कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' काव्य लिखा। मुसलमान कवि नजरुल इस्लाम ने क्रांतिकारी गीत लिखे। 'अग्निवीणा' उनकी एक कविता पुस्तक का नाम है। इन्हें 'विद्रोही' कवि कहा जाता रहा है। हिंदू कवि रवींद्र नाथ ठाकुर ने ऐसा काव्य लिखा कि कट्टर हिंदू उनका विरोध करने लगे। इनकी पुस्तक 'गीतांजलि' को कौन नहीं जानता? भारती,निराला, प्रेमचंद आदि ने भी ऐसा ही आंदोलनकारी लेखन किया। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद से लेकर नयी कविता और उसके अनेक आंदोलनों ने भी सबके लिए लिखा। इसलिए यह मानना होगा कि यह साहित्य किसी एक का नहीं, सब का है।

यह मानकर चलना होगा। अब संस्कृत को लें। संस्कृत में लिखे 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे महाकाव्यों को धार्मिक कहकर छोड़ देने से बड़ा नुकसान होगा। इन काव्यों के बिना न तो भारतीय संस्कृति की कल्पना की जा सकती है , न तमिल, तेलुगु, आदि भाषाओं के साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है। अब तो अरब मुल्कों में भी इन पुस्तकों को स्कूलों में पढ़ाया जा रहा है। इसलिए चाहे किसी एक भाषा के लिए इन काव्यों का कोई खास महत्व न हो, पर कुछ दूसरी भाषाओं के लिए इनका महत्व स्वीकार करना ही होगा।

**अनुवाद की चुनौतियाँ :** मूल पाठ की कुछ बारीकियों को खोए बिना भारतीय साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद करना कठिन है। इससे गैर-देशी वक्ताओं के लिए किसी कार्य के पूर्ण अर्थ की सराहना करना कठिन हो सकता है। भारतीय भाषाओं में केवल बंगला और तमिल भाषा में हुए अनुवाद संतोष जनक है। अगर उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों पर उत्तम शोधकार्य के साथ उनका अनुवाद नहीं होता है तो उनका मूल्यांकन कैसे किया जा सकेगा?

**अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के बीच वर्चस्व की समस्या:**

अब हमारे यहाँ बहुत से राज्यों में एक ऐसा समाज बढ़ रहा है जिनकी घरेलू भाषा अंग्रेज़ी है। हमारे देश में तमिल जैसी भाषाएं हैं जिनमें उच्च कोटि के साहित्य का इतिहास तब लिखा जा रहा था जब कुछ कबीले जर्मनी से इंग्लैंड जाकर बस रहे थे और अंग्रेजी का जन्म भी न हुआ था। वक्त बदला,भारत की आजादी के समय, देश में विभिन्न गैर-अंग्रेजी भाषाओं में एक मजबूत साहित्यिक परंपरा थी। अंग्रेजी में लिखने वालों की अक्सर अपने पूर्व औपनिवेशिक आकाओं को बढ़ावा देने के लिए आलोचना की जाती थी। लेकिन जब सलमान रुश्दी को 'द मिड नाइट्स चिल्ड्रन'उपन्यास के लिए 1981 में बुकर पुरस्कार मिला तो इस साहित्यिक भूकंप ने सबको हिलाकर रख दिया। इसने अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय लेखकों को एक नया आत्मविश्वास दिया। इसके बाद के वर्षों में, अन्य भाषाओं के साहित्य को कम पोषण मिला और उनकी अनदेखी की गई, जबकि दुनिया भर की किताबों की दुकानें भारतीय अंग्रेजी के लेखकों से भरने लगी। 'मिररवर्क: 50 इयर्स ऑफ इंडियन राइटिंग, 1947-1997' की भूमिका में घोषणा की गई कि स्वतंत्रता के बाद दूसरी भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी में बेहतर लिखा जा रहा है।

"क्या यह सच हो सकता है कि भारतीय लेखन का प्रतिनिधित्व मुट्ठी भर लेखकों द्वारा किया जाना है जो अंग्रेजी में लिखते हैं, जो इंग्लैंड या अमेरिका में रहते हैं और एक दूसरे को जानते तक नहीं?" अमित चौधरी ने 'पिकाडोर बुक ऑफ मॉडर्न इंडियन लिटरेचर' संग्रह में भारतीय साहित्य का एक वैकल्पिक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए बंगाली, हिंदी, मलयालम और उर्दू के साथ-साथ अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य को अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से पेश किया।

भारतीय अंग्रेजी में लिखने वाले भी भारतीय साहित्य के खजाने को भर रहें हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार तो उन्हें बहुत पहले से दिया ही जाता है, अब तो ज्ञानपीठ पुरस्कार भी भारतीय अंग्रेजी के लेखक को दिया गया है। अमिताव घोष को 2018 में 54 वें ज्ञानपीठ से नवाजा गया।

भारत की दूसरी भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद द्वारा और भारतीय अंग्रेजी से भारत की कई भाषाओं में अनुवाद के द्वारा भारतीय साहित्य के अध्ययन की इस समस्या का समाधान किया जा रहा है। गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' के अंग्रेजी अनुवाद ' 'The Tomb of Sand' को इस दिशा में एक समाधान के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

हमारे देश में अलग-अलग भाषाओं पर वाद-विवाद पैदा होने के कारण एक अस्वस्थ वातावरण का निर्माण हुआ है। प्रादेशिक भाषाओं के बीच आपसी असहिष्णुता पैदा होने की भी समस्या है।

### 4.4.5 समस्याओं का समाधान

आपने भारतीय साहित्य के अध्ययन की कुछ समस्याओं को ध्यान से पढ़ा और बहुत सी बातों से आप सहमत भी होंगे। इस इकाई में यदि भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं की बात करके छोड़ दिया जाए तो बात अधूरी रहेगी। इसलिए अब इन समस्याओं के समाधान के उपाय की चर्चा करेंगे। सूत्र रूप में पहले तो आप यह जान लें कि समस्या और समस्याओं में ही समाधान मौजूद है। समाधान के लिए कुछ उपाय ये हो सकते हैं-

क) किसी विशेष क्षेत्र या अवधि पर ध्यान दें।इससे उनकी भाषाओं और संस्कृतियों के बारे में सीखना आसान हो जाएगा।

ख)अन्य विद्वानों के साथ सहयोग करें। इससे आपको संसाधनों और विशेषज्ञता को एकत्रित करने में मदद मिल सकती है।

ग) धैर्यवान और दृढ़ रहें। भारतीय साहित्य का अध्ययन एक आजीवन यात्रा है। इसमें एक ही बार में महारत हासिल करने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। जितना हो सके सीखने और प्रक्रिया का आनंद लेने पर ध्यान केंद्रित करें।

### समाधान के विशिष्ट उदाहरण

सामग्री की मात्रा और अधिकता चुनौतीपूर्ण हो सकती है, लेकिन इसे किसी विशेष शैली, अवधि या लेखक पर ध्यान केंद्रित करके अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, आप भक्ति आंदोलन की कविता, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उपन्यास या आधुनिक युग की लघु कथाओं पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। यह आपके हाथ में है कि आप हनुमान के समान समूचा पहाड़ ही ले आएँ या केवल संजीवनी बूटी। आज इंटरनेट के युग में लाखों पृष्ठों की सामग्री मौजूद है। इसे समझदारी से खंगालें।

पुस्तकालयों और अभिलेखागार जैसे ऑनलाइन संसाधनों का उपयोग करके सामग्री तक पहुँचने की कठिनाई को दूर किया जा सकता है। ऐसे कई ऑनलाइन संसाधन हैं जो आपको

भारतीय साहित्य के कार्यों को खोजने और उन तक पहुंचने में मदद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारत की डिजिटल लाइब्रेरी में कई भारतीय भाषाओं में डिजिटलीकृत पुस्तकों और पांडुलिपियों का विशाल संग्रह है।

सांस्कृतिक विविधता एक चुनौती हो सकती है, लेकिन यह विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के बारे में सीखने का अवसर भी हो सकती है। विभिन्न क्षेत्रों और कालखंडों के भारतीय साहित्य का अध्ययन करके आप भारतीय संस्कृति की विविधता की गहरी समझ प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय साहित्य का अध्ययन एक चुनौतीपूर्ण लेकिन पुरस्कृत अनुभव है। चुनौतियों पर काबू पाकर हम इस समृद्ध और विविध परंपरा की गहरी समझ हासिल कर सकते हैं।अभी हमारे देश के बहुत से लोग शिक्षा प्राप्त नहीं कर पा रहें हैं। पर जैसे जैसे वह पढ़ने-लिखने में और ज्यादा लग जाएगी तब व्यास और वाल्मीकि के भी नए पाठक पैदा होंगे। वे अनुवाद में ही नहीं , उन्हें संस्कृत में भी पढ़ेंगे। सुब्रह्मण्य भारती की कविताएं मूलभाषा में उत्तर भारत के लोग पढ़ेंगे। रवींद्र नाथ ठाकुर की रचनाएं तमिलनाडु में पढ़ेंगे। यहाँ की विभिन्न भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य प्रांतीय सीमाएं लांघकर सारे देश की संपत्ति बनेगा। और तब अंग्रेजी का बोलबाला कम होगा। हम तब न केवल अंग्रेजी ही नहीं दुनिया की दूसरी भाषाएं भी पढ़ेंगे। एशिया की भाषाओं के साहित्य से भी हमारा परिचय  होगा। तब भारतीय साहित्य के अध्ययन के नए मयार खुलेंगे।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य के अध्ययन के दौरान आने वाली दो चुनौतियां कौनसी हैं?
- इन समस्याओं या चुनौतियों के आसान समाधान बताइए।

## 4.4 : पाठ सार

भारतीय भाषा परिवारों की अधिकता से लेकर एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद की कमी तक कई समस्याएं भारतीय साहित्य के अध्ययन में आती हैं। भारतीय साहित्य की सरहद या सीमा तो कोई निर्धारित कर नहीं सकता। भारतीय साहित्य पुराने जमाने से आज तक लिखा जा रहा है। दूसरी समस्या भाषाओं की विविधता है। बहुभाषिकता एक तरफ  तो भारत की विशेषता है दूसरी तरफ तमाम तरह की मुश्किलें पैदा करती है। अनुवाद के सहारे समस्या का समाधान हो सकता है, पर अनुवाद बहुत कम मिकदार में मिलता है। अध्येता के अपने विश्वास, संस्कार, संकुचित मनोभाव भी अध्ययन की समस्या पैदा करते हैं।एक और चुनौती अध्ययन-सामग्री तक पहुँचने की कठिनाई है। भारतीय साहित्य की सही समझ से इसके अध्ययन की समस्याएं दूर हो सकती हैं।'हिंदी हैं हम' का मंत्र भारतीय साहित्य के अध्ययन की बहुत सी समस्याओं का समाधान है। विचार कीजिए, कैसे?

## 4.5 : पाठ की उपलब्धियां

इस इकाई के पाठ से भारतीय साहित्य के अध्ययन से निम्नलिखित उपलब्धियां प्राप्त होती हैं:

1. भारतीय साहित्य की विविधता और इसकी अनेक भाषा बोलियाँ इसके अध्ययन को चुनौतीपूर्ण बनाते हैं।
2. अध्ययन की समस्याएं हैं तो उनके समाधान भी हैं।
3. जैसे अनुवाद के द्वारा अध्ययन को आसन बनाया जाता है।
4. सजातीय भाषाओं के अध्ययन को बढ़ावा दिया जाता है।
5. सांस्कृतिक विविधता आदि को समरसता और एकता के द्वारा आसान किया जाता है।
6. भारतीय साहित्य का अध्ययन अपने आप में एक ऐसी यात्रा है जिसका कोई सानी नहीं।

## 4.6 : शब्द संपदा

| | | |
|---|---|---|
| 1. परिप्रेक्ष्य | - | देखने या सोचने की खास नजर या नजरिया |
| 2. दृश्य पटल | - | विहंगम दृश्य, बहुत बड़ा |
| 3. आकर ग्रंथ | - | आधार पुस्तकें, जिनके आधार पर बार बार और लगातार दूसरी पुस्तकें लिखी जाएं। 'रामायण' और 'महाभारत' इस लिहाज से आकर ग्रंथ हैं क्योंकि इनकी कथा का आसरा लेकर आज भी लिखा जा रहा है। |
| 4. अध्येता | - | अध्ययन करनेवाला, पाठक,पढ़नेवाला |
| 5. संसाधन | - | उपयोग की वस्तु |
| 6. महारत | - | निपुणता, काबलियत, उस्तादी, कारीगरी |
| 7. सहिष्णुता | - | सहिष्णुता का अर्थ है सहन करना और असहिष्णुता का अर्थ है सहन न करना। |
| 8. मिकदार | - | मात्रा; परिमाण, तौल। |
| 9. वर्चस्व | - | जब किसी समूह का अन्य समूहों के ऊपर राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक या सामाजिक दबदबा मौजूद हो तो इसे प्राधान्य या वर्चस्व (Hegemony) कहते हैं। |

## 4.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड –(अ)**

**दीर्घ प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए**

1. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं को रेखांकित कीजिए।
2. भारतीय साहित्य के अध्ययन की चार समस्याओं की चर्चा करके उनके समाधान भी बताइए।
3. "भारत के अनेक भाषा परिवारों की बहुत सी भाषाएं भारतीय साहित्य के अध्ययन की सबसे बड़ी समस्या है" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?
4. क्या परस्पर अनुवाद और उसकी सुलभता से भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्या का बहुत कुछ निदान हो जाएगा?
5. अंग्रेजी के वर्चस्व की समस्या भारतीय साहित्य के अध्ययन में क्या कोई बाधा है? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए
6. 'भारतीय साहित्य किसी एक का नहीं, हम सबका है" सिद्ध कीजिए।

**खंड –(ब)**

**लघु प्रश्न**

**निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए**

1. भारतीय साहित्य के भाषा-वैविध्य पर टिप्पणी कीजिए।

2. क्या भारतीय भाषाओं में अनुवाद के रास्ते आने वाला देशी साहित्य भी भारतीय साहित्य में शुमार होगा?

3. भारतीय साहित्य के अध्ययन में आने वाला अध्येता का तंग-नजरिया क्या मुश्किलें पैदा करता है?

4. हिंदी-उर्दू के मद्दे नजर इनके अध्ययन की दो समस्याएं और उनका समाधान बताइए।

5. "हिंदी हैं हम" का विचार कैसे भारतीय साहित्य के अध्ययन की बहुत सी मुश्किलों को दूर कर सकता है?

**खंड- (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए**

1) भारतीय साहित्य के अध्ययन की प्रमुख समस्या नहीं है-

क) भारतीय भाषाओं के ज्ञान का अभाव  ख) अनूदित साहित्य की अनुपलब्धता
ग) अंग्रेजी ज्ञान का अभाव  घ) उपलब्ध साहित्य के प्रति जागरूकता का अभाव

2) इस सूची में अनमेल साहित्यकार को खोजें

क) मिर्जा गालिब  ख) रवींद्र नाथ ठाकुर  ग) काजी नजरुल इस्लाम  घ) गीतांजलि श्री

3) निम्नलिखित में से कौन-सा भाषा समूह द्रविड भाषा परिवार के अंतर्गत आता है –

क) मलयालम, मराठी, कन्नड, तमिल ख) कन्नड, तमिल, मलयालम, उडिया

ग) तेलुगु, तमिल, कन्नड, मलयालम घ) तेलुगु, मलयालम, तमिल, बंगला

4) इनमें से कौनसा ग्रंथ आकर ग्रंथ की श्रेणी में आता है?

क)ऋग्वेद ख) रामायण ग) महाभारत घ) ये सभी

5) आधुनिक युग से पहले किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था?

क) भक्ति साहित्य ख) शृंगारपरक साहित्य ग) वीर काव्य घ) ये तीनों ही

**II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए**

1. भारतीय साहित्य एक दृश्य नहीं ______________________ है।
2. ____________ को आप हिंदी का प्रमुख कवि कहते हैं और मैथिली भाषी इन्हे अपना खास कवि मानते हैं।
3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की एक प्रमुख समस्या भाषा-बोली का ________ है।
4. __________________ ने क्रांतिकारी गीत लिखे,इसलिए इन्हे विद्रोही कवि भी कहा गया।
5. जिनके आधार पर बार बार और लगातार दूसरी पुस्तकें लिखी जाएं, उन्हें _______________ कहते हैं।

**III. सुमेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| 1. संत ज्ञानेश्वर | (i) सिंधी |
| 2. शाह अब्दुल लतीफ़ | (ii) पंजाबी |
| 3. रसखान | (iii) मराठी |
| 4. वारिस शाह | (iv)हिंदी |
| 5. माइकेल मधुसूदन दत्त | (v) गीतांजलि |
| 6. नजरुल इस्लाम | (vi) मेघनाद वध |
| 7. रवींद्र नाथ ठाकुर | (vii)अग्निवीणा |

## 4.8 : पठनीय पुस्तकें

1. रामविलास शर्मा लेख- भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं, पुस्तक- भारतीय साहित्य, संपादक- मूलचंद गौतम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2009, पृष्ठ- 48

2. भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास(संपादित) केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली
3. भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं (2019) डॉ राम विलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

## इकाई 5 : भारतीय साहित्य की मुख्य धाराएं

इकाई की रूपरेखा

5 .1 प्रस्तावना
5 .2 उद्देश्य
5 .3 मूल पाठ : भारतीय साहित्य की मुख्य धाराएं
5 .3.1 भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं के कारक चिन्ह
5.3.2 भारतीय साहित्य की दो धाराएं
5.3.3 दो धाराओं का विवेचन-विश्लेषण
5.3.4 भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं की विशेषताएं
5 .3.5 उर्दू की मिसाल
5. 4 पाठ सार
5.5 पाठ की उपलब्धियां
5 .6 शब्द संपदा
5.7 परीक्षार्थ प्रश्न
5.8 पठनीय पुस्तकें

### 5.1 : प्रस्तावना

भारतीय साहित्य भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य है। भारत में भाषाएं अनेक हैं मगर साहित्यिक संसार एक है। आप पिछली इकाइयों में भारतीय भाषाओं के बीच कई तरह की समानताओं के बारे में जान चुके हैं। आप यह समझ गए हैं कि भारतीय साहित्य की अवधारणा का क्या अर्थ है और भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में विचार और संवेदना के स्तर पर समानता के बहुत से कारण हैं। यह भी आपको मालूम है कि भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएं क्या हैं और इन मुश्किलों से कैसे पार पाया जा सकता है। यह आप अब मानने लगे हैं कि अनेक भारतीय भाषाओं में लिखा गया भारतीय साहित्य अपनी मूलभूत संवेदना में एक है। यहाँ की भाषाओं में विविधता है पर साहित्य में एकता है। भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं को आपने समझ लिया है। विकास के चरणों की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकासक्रम लगभग समान है और वे चार चरणों (1) आदिकाल, (2) पूर्व मध्यकाल, (3) उत्तर मध्यकाल; और (4) आधुनिक काल में विभाजित है। यह तो रही एक बात, अब इस इकाई में हम भारतीय साहित्य की उन मुख्य धाराओं की चर्चा करेंगे जो एक सी और सब भाषाओं में समान हैं। ये वो धाराएं हैं जो भारतीय साहित्य को एक सूत्र में जोड़कर मजबूत बनाती हैं।

## 5.2 : उद्देश्य

इस इकाई के पाठ से आप

- भारतीय साहित्य के विकास-क्रम को विस्तार से समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं और उनके प्रवाह को पहचान सकेंगे।
- विविध धाराओं के बीच मौजूद आपसी तालमेल और एकता के सूत्र और उसकी मजबूती को रेखांकित कर सकेंगे।

## 5.3 : मूल पाठ :भारतीय साहित्य की मुख्य धाराएं

### 5.3.1 भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं के कारक चिन्ह

आप जानते हैं कि कारक वह भाग या तत्व होता है जो किसी काम के नतीजे को प्रभावित करता है। यदि आप केवल बस में सफर करते हैं और सराय या धर्मशालाओं के अलावा कहीं भी रहने से मना करते चले जाते हैं, तो पैसा शायद आपकी यात्रा योजनाओं में एक बड़ा कारक है। सीधी सी बात है कि आपके पास पैसे की कमी है। इसी तरह यदि आप केवल फाइव स्टार होटल में ही ठहरते हैं और केवल हवाई यात्रा ही करते हैं, बस या ट्रेन की को बात करते ही नाराज हो जाते हैं तो आपके लिए रूपया-पैसा कोई मसला नहीं है। कई बार कुछ ऐसी वजह होती हैं जिनसे हम अपने आपको बदलते चले जाते हैं। अब इस मिसाल को भारतीय साहित्य से मिलाकर देखें। भारतीय साहित्य का निर्माण करने वाले तत्व या कारक बहुत से हैं। पर हम इस पर कम ध्यान देते हैं कि यह साहित्य एक अलग शक्ल कैसे अख्तियार करता चला जाता रहा है। क्या क्या इसकी पहचान है। आसान जुबान में कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य के निर्माण में कई कारक हैं जो सब भाषाओं में एक से हैं। नतीजतन भारतीय साहित्य एक ऐसा सैलाब या प्रवाह बन कर हमारे सामने आता है जिसमें बहुत सी अलग अलग धाराएं आ मिलती हैं। पर जरा गौर करने से पता चलता है कि इनमें तो गजब की एकता और समानता है। आप भी थोड़ा ध्यान देंगे तो शीशे की तरह साफ दिखाई देगा कि भारतीय साहित्य की इस जल-धारा में जो आब है उसके कारक और कारण क्या है। बात थोड़ी रूमानी और महीन सी हो गई लगती है, इसलिए अब सीधी बात करें।

भारत की सभी भाषाएं और बोलियाँ चार भाषा परिवारों (भारत-यूरोपीय, द्रविड, तिब्बत-चीनी, और आस्ट्रिक) की सदस्याएं हैं जिनमें प्रायः सबकी अलग-अलग लिपियाँ हैं। लिपि अलग है । स्थान भी अलग हैं । हर भाषा अलग अलग राज्यों और स्थानों पर बोली जाती हैं। अलग अलग इनके अपने रूप हैं। लेखन है। पर सब मिलाकर एक साहित्य भी हो जाते हैं। एक साझी पहचान बनाते हैं। इस साझी पहचान को विकास की दृष्टि से जब विद्वान देखते हैं तो पाते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास-क्रम लगभग समान है (आदि काल, पूर्व

मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल, और आधुनिक काल)। भारतीय साहित्य की ऐसी अनेक विविधताओं पर ध्यान देते ही अपने आप यह भी दिखाई देने लगता है कि भारतीय साहित्य की विविधता में ही एकता का मजबूत धागा मौजूद है। आपने अब तक यह भी अच्छी तरह से समझ ही लिया होगा कि भारतीय साहित्य एक समेकित संज्ञा है और इसके कुछ कारक हैं। इन एक से कारकों की पहचान आप यदि फिर से कर लेंगे तो अच्छा रहेगा।

- भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्य का विकास क्रम लगभग एक-सा है। समस्त साहित्य चार चरणों या कालों में विभाजित किया जाता रहा है।
- भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में भक्ति की धारा समान रूप से प्रवाहित हुई है; रामकथा और कृष्णकथा को समान महत्व मिला है।
- भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में रामायण और महाभारत के अनुवाद उपलब्ध हैं।
- सभी भाषों के साहित्य में सिद्ध, नाथ, जैन, चरितकाव्य प्रायः समान रूप से लिखे गए हैं।
- सभी भाषाओं के साहित्य में आधुनिक साहित्य का विकासक्रम समान है।
- सभी भाषों के साहित्य पर भरत, आनंदवर्धन,मम्मट, आचार्य विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ, आदि आचार्यों की काव्य-शास्त्रीय मान्यताओं का प्रभाव पड़ा है।
- सभी भाषाओं के साहित्य में भक्ति आंदोलन को महत्व मिला है ।
- सभी भाषाओं के साहित्य में काव्य शैलियों और काव्य रूपों में समानता है।
- सभी भाषाओं के साहित्य में अखंड भारत की चर्चा और चाह मिलती है।
- सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रवाह एक साथ हुआ है ।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य के एक से कारकों से आप क्या समझते हैं?
- सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में चार समान काल या युग कौन से हैं?

### 5.3.2. भारतीय साहित्य की दो धाराएं

अब हम भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं पर विचार कर सकते हैं । क्या आपको भी भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं की बात करते ही कोई कविता याद आ जाती है? – कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ....एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए। इस कविता में एक संकेत है कि साहित्य में कुछ धाराएं या हिलोरे आती जाती हैं। कुछ हिलोरे या धाराएं हैं जो अनवरत और लगातार भारतीय साहित्य में बह रही हैं। कुछ ऐसी धाराएं हैं जो भारत भर के साहित्य में मौजूद हैं। बरसों से ये मौजूद हैं और गौर करने से साफ दिखाई देने लग जाती हैं। कुछ धाराएं लुप्त, गुप्त और भीतर-भीतर बहती हैं,तो कुछ की मौजूदगी एकदम सामने से देखी जा सकती हैं। ये धाराएं हैं क्या? भारतीय साहित्य में कई सामान्य धाराओं या विषयगत

समानताओं का चलन शुरुआत से लेकर अब तक लगातार दिखाई देता है। ये धाराएं क्षेत्रीय और भाषाई सीमाओं को पार करते हुए विभिन्न रचनाओं के माध्यम से निरंतर प्रवाहित होती रही हैं। ये धाराएँ उन विषयों और विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्होंने सदियों से भारतीय साहित्यिक परंपरा को समुचित आकार दिया है।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य की धाराओं से आप क्या समझते हैं?
- क्या आप इन धाराओं को दो भागों में बाँट सकते हैं? यदि हाँ तो ये दो भाग कौनसे होंगे?

### 5.3.3 दो धाराओं का विवेचन-विश्लेषण

भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं को आप अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में बाँट लेंगे तो आसानी रहेगी। एक धारा तो वह हो सकती है जो दिखाई नहीं देती, पर होती है, अदृश्य होती है। इसे अनुभव से पहचानना होगा। भारतीय साहित्य को गहराई से पढ़ने वाले देशी विदेशी विद्वान यह कहते नहीं थकते कि भारतीय साहित्य ही नहीं, भारत से प्रभावित विदेशी साहित्यकारों का लेखन भी कई धाराओं का प्रवाह ही है। ध्यान से देखने से साफ दिखाई देगा कि भारतीय साहित्य में धार्मिक, राष्ट्रीय,जातीय-सांस्कृतिक, सामाजिक और वैश्विक धाराएं बह रही हैं। इनके द्वारा भारतीयता का राग भारतीय साहित्य में गाया जाता है।भारतीय सभ्यता की तरह भारतीय साहित्य का भी विकास सामाजिक रूप में सर्वत्र हुआ है। इसमें अनेक युगों, प्रजातियों और धर्मों का प्रभाव दिखाई देता है। सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते हैं।

जो धाराएं बाहर से साफ दिखाई देती हैं, उन्हें बहिर्धाराएं कह सकते हैं, जो दिखाई नहीं देती पर महसूस की जा सकती हैं उन्हें अंतर्धाराएँ कहना होगा। आप समूचे भारतीय साहित्य में बहुतायत से बहने वाली अन्तर्धाराओं को देखें। बाहर से देखने से जो धारा दिखाई देती है, या जो धाराएं दिखाई देती हैं वह इस वजह से साफ दिखाई देती हैं क्योंकि भारत एक विशाल बहुभाषी देश है। इस देश में बहुत सी भाषाएं हैं। इनकी बहुत सी बोलियाँ हैं। इनमें बहुत सा लेखन हुआ है। बहुत अर्से से हो रहा है। हर प्रांत, क्षेत्र, और समुदाय अपनी अपनी तरह से भारतीय साहित्य के खजाने को भरता चला जा रहा है। कोई भी कह सकता है कि हमारे यहाँ – हमारे एक ही देश में – इतनी सारी भाषाओं का होना कोई समस्या नहीं बल्कि इसकी बहुलता का सबूत है।

ये धाराएँ भारतीय साहित्य की गहराई और जटिलता को दर्शाती हैं, जिसकी हजारों वर्षों से चली आ रही समृद्ध परंपरा है। जबकि व्यक्तिगत लेखन दूसरों की तुलना में विशिष्ट विषयों पर अधिक जोर दे सकते हैं, ये धाराएँ सामूहिक रूप से भारतीय साहित्यिक विरासत बनाने में योगदान करती हैं। बहुत से उदाहरण बताते हैं कि कैसे ये सामान्य धाराएँ प्राचीन महाकाव्यों से लेकर समकालीन उपन्यासों और नाटकों तक, भारतीय साहित्य के विभिन्न रूपों में व्याप्त हैं। वे उन विषयों की गहराई और विविधता को प्रदर्शित करते हैं जो भारतीय साहित्यिक परंपराओं का अभिन्न अंग हैं।

अब हम उन धाराओं की चर्चा करेंगे जो बाहर से किसी को भी दिखाई देती हैं। भारत से बाहर बैठकर भारतीय साहित्य की दो चार पुस्तकें पढ़ने वाला भी इनसे दो चार हुए बिना न रहेगा। मोटे तौर पर इन्हें चार भागों में बाँट सकते हैं ।

**1. धार्मिक व्याप्ति धारा -** भारतीय साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सर्वव्याप्त धारा 'धर्म' से जुड़ी है। इसे आप 'धार्मिक व्याप्ति धारा' कह सकते हैं। हाँ, यह ख्याल रखें कि धर्म यहाँ संप्रदाय विशेष के अर्थ में नहीं आता।उदाहरण के लिए, 'हिंदू' शब्द स्थान-वाची ज्यादा है, संप्रदायवाची कम। दुनिया भर से आए और यहाँ के अपने मत-संप्रदाय और धर्म भारतीय साहित्य में जगह पाते रहे हैं। आप भारत के इन सभी धर्मों को मिलाकर 'भारत धर्म' कह सकते हैं। इस भारत धर्म को भारतीय साहित्य की अनेक धाराएं अपने अपने तरीकों से व्यक्त करती हैं। नीति इसे चार पुरुषार्थ ( धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के साथ जोड़कर देखती रही है। धार्मिक व्याप्ति धारा की शुरुआत सनातन काल से ही हुई है। तब से जब लेखन कला की खोज भी न हुई थी। संस्कृत आदि भाषाएं और उनके नामकरण तो बाद में हुए होंगे।

संस्कृत के आदि काल और तमिल के संगम काल में रचित साहित्य की धारा एक ही है, चाहे उसकी रचना काशी आदि उत्तर भारतीय नगरों में हुई हो या कांजी आदि दक्षिण भारतीय स्थलों में में या हिमालय में बसे कश्मीर आदि गुरुकुलों में। कावेरी नदी से लेकर गंगा तट तक बहुत सी जलधाराओं को छूते-मिलाते हुए उनके तटों पर जो साहित्य रचना हुई, उसमें एकता की चेतना आसानी से देखी जा सकती है।

प्राचीन और शुरुआती भारतीय साहित्य ज्यादातर साकार और निराकार सर्वेश्वर और अनेक देवी देवताओं की पूजा, प्रार्थना, इबादत और अरदास के लिए रचा गया। वैदिक साहित्य के विकास का समय 6000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व तक का है। भारतीय साहित्य के इस काल में धार्मिक विषयों के अलावा हमारी इच्छाओं, आदतों और रीति रिवाजों पर लिखना शुरू हुआ।धार्मिक और सांसारिक चिंतन और लेखन की मुख्य धारा का स्रोत संस्कृत और तमिल में

विद्यमान है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि लिखे गए। चारों वेदों की रचना हुई। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष,और छंद जैसे वेदांग रचे गए। वहाँ से यह जो वेद-वेदांग की धारा बही,उसकी चर्चा कई सदियों तक होती रही। तैत्तरीयोपनिषद के 'सह नो भुनक्तु ' से लेकर रवींद्र नाथ ठाकुर के 'हेथाय आर्य,हेथा अनार्य,हेथाय द्राविड' आदि तक इसी धारा का प्रवाह और ध्वनि है।

भारतीय साहित्य की इस बहती धारा में खूब तेजी भक्ति काल में आई। हिंदी साहित्य का एक युग भक्ति काल कहा जाता है। पर यह धारा उत्तर से दक्षिण की ओर नहीं बल्कि दक्षिण से उत्तर की ओर बही। श्री मद भागवत पुराण , नारद भक्ति सूत्र आदि संस्कृत रचनाओं से लेकर तमिल के आलवारों से प्रेरित भारतीय साहित्य का भक्ति साहित्य आंदोलन की तरह 6-7 वीं शताब्दी में तमिल क्षेत्र से होते हुए महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के रास्ते उत्तर भारत में फैला । और फिर कश्मीर तक पहुँच गया। तमिल का वैष्णव काव्य संग्रह 'नालियर प्रबंध' है जिसके रचनाकार बारह आलवार भक्त कवि हैं। दक्षिण की कवयित्री आन्डाल से लेकर कश्मीर की लालदेद तक एक धारा है जिसमें भक्ति निरंतर बह रही है। तेलुगु में एक ओर पोतन्ना का ' भागवतं' है तो दूसरी ओर कुम्मरि मोल्ल का 'रामायणं' है। कन्नड में पुरंदर दास के कीर्तन हैं तो मलयालम में 'कृष्ण गाथा' से एक परंपरा चलती है। भक्ति साहित्य की अविकल धाराओं ने गुजराती, मराठी, बाँग्ला आदि सभी भाषाओं में अपनी अपनी परंपरा और संप्रदाय कायम किये। वल्लभ, निम्बार्क, गौड़ीय, माधव, राधा वल्लभ आदि कुछ संप्रदाय हैं जिनका साहित्य किसी एक भाषा में नहीं। कृष्ण भक्ति ही नहीं राम भक्ति भी इस धारा में उतनी की मजबूत है। शंकर देव और माधव देव ने रामायण की रचना असमिया भाषा में की और बलरामदास ने उडिया में। तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखकर इस धारा को अमर किया। 15 वीं शताब्दी तक यह धारा सारे भारत में फैल गई थी। इस धारा ने संस्कृत साहित्य से विश्वास, आदर्श, मिथक और दृष्टांत प्राप्त किये और उनमें स्थानीयता का रंग घोलकर सर्वभारतीय इंद्रधनुष बनाया।

धार्मिक व्याप्ति की इस धारा में उर्दू और पंजाबी आदि भाषाओं ने भी योगदान दिया। संस्कृत साहित्य के चली इस धारा में मुसलमानों ने शुरुआत में योगदान नहीं दिया क्योंकि तब तक उनका अस्तित्व न था। इस्लाम के आने के बाद इस धर्म को अपनाने वालों ने मुहम्मद बिन तुगलक के आने के वक्त के साथ साथ संस्कृत से फारसी में अनुवाद करके 'तूतीनामा' पेश किया और भारतीय साहित्य की धारा के साथ बह चले। दूसरी तरफ कश्मीर में संस्कृत से कश्मीरी में महाभारत का अनुवाद हुआ और संस्कृत में राजतरंगिनी की रचना हुई। मुश्तरका संस्कृति

अर्थात साझी संस्कृति की विरासत ने सूफी और भक्ति धारा के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। एक उदाहरण ही यहाँ दिया जाए तो कहना होगा कि अली मर्दान खान ने सत्रहवी शताब्दी में फारसी में शिव स्तुति लिखी – हुमा असले महेश्वर बूद , शब शाहे कि मन दीदम। पंजाबी में दसवीं शताब्दी से महमूद गजनवी के पुत्र मसूद और बाबा फरीद ने सूफी काव्य से शुरुआत करके गुरुनानक तक आते हैं। 'गुरु ग्रंथ साहब' में धार्मिक आस्था और विश्वास की धारा के साथ जन हितकारी विषयों का समावेश बहुत खूबसूरती से किया गया है। सादा जीवन, सेवा भाव और गुरु की वाणी के आदर्श से जिस धर्म को सामने लाया गया, वही तो भारत में सदा से धर्म के अर्थ की जड़ रहा है।

इसका मतलब यह नहीं कि यह धारा रुकते रुकते चली। वह धारा ही क्या जो रुके। भारतीय साहित्यकार धर्म और भक्ति से आज तक अपने आप को बंधा पाते हैं। रामायण और महाभारत के पात्रों और घटनाओं पर आज भी खूब कलम चलाई जाती है। 'शंबूक वध' और ' अंधायुग' जैसी रचनाएं धर्म, आस्था, विचार और चिंतन को अनेक धाराओं में मोड़ने की हिम्मत दिलाते हैं। भारत के संविधान और उसके निर्माताओं ने भारतीय साहित्य की इस धारा को फिर से मजबूत किया। भारत में धर्म-निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विमुखता नहीं। उदाहरण के लिए बाणभट्ट के नाटक हर्षचरित और प्रसिद्ध लेखक कालिदास की कविताएँ, पंचतंत्र जैसी लोक कथाएँ पहले से थीं । अब साहित्यकारों ने मनुष्य, मानव-अधिकार, स्त्री-स्वातंत्र्य और अनेक विमर्शों को केंद्र में रखकर इस धारा को बड़ी खूबसूरती से मोड़ा। उदाहरण के लिए, हिंदी के कवि ने लिखा, " वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे"। नारायण से नर तक आता साहित्य वास्तव में भारतीय साहित्य की पहचान बनाता चला गया। "संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया- मैथिली शरण गुप्त ।

**2. राष्ट्रीय धारा-** 'राष्ट्र' और राष्टीयता के विचार को आधुनिक युग में अधिक विचारा गया है। यह भावना से जुड़ा एक शब्द है। राष्ट्र के लिए प्रेम भावना से राष्ट्रीयता का जन्म होता दिखाई देता है। श्री अरविन्द ने तो राष्ट्रीयता को परमात्मा के द्वारा दिया गया एक धर्म ही कहा है। यह वह भावना है जो एक राष्ट्र के लोगों को एक जुट रखती है। प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना किसी न किसी रूप में मिलती है। शुरुआत में वेदों में भारत को एक राष्ट्र के रूप में पेश किया गया। 'पृथ्वी सूक्त' में यदि समस्त धरती की बात है तो 'स्वराज्य सूक्त' में राष्ट्र का सुंदर चित्र है। अथर्ववेद में मातृभूमि की वंदना है। भारत माता की कल्पना और वंदना पृथ्वी सूक्त में भी है। उपनिषदों में बार बार 'हम' का प्रयोग होता है। रामायण में जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान खुद श्री राम के द्वारा कहा गया। कालिदास ने राष्ट्र के आदर्श

नायकों के लिए स्वदेश प्रेम को जरूरी बताया। अखंड भारत-वर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखते हुए भारतीय साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीयता और राष्ट्रीयता को एक ही सिक्के के दो पहलुओं के रूप में देखा और दिखाया।

भारत में आधुनिक युग की शुरुआत 19 वीं सदी से मानी जाती है। अंग्रेजों का राज आने से पहने ही भक्ति आंदोलन से मिली क्रांतिकारी सोच कम हो गई थी। मुगल काल के उत्थान और पतन का असर साहित्य पर पड़ा था । आप जानते ही हैं कि 17 वीं और 18 वीं सदियों तक या तो भक्ति (धार्मिक) साहित्य रचा गया, या फिर धीरे धीरे वीर और शृंगार की धाराएं भी चलीं। पर साहित्य का विकास न हुआ। ऐसा साहित्य ज्यादा लिखा गया जो विलासी और निकम्मे राजा महाराजाओं को खुश करता था। आम जनता से यह दूर रहा। 1757 के बाद भारत के शिक्षित वर्ग में नए ढंग के साहित्य की ओर रुझान बढा। आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास तेजी से हुआ। यह एक नए युग की शुरुआत थी। समाज में एक नई चेतना की लहर आई। 1857 में पहला स्वतंत्रता संग्राम चाहे सफल न हो सका, पर इसने भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता और देश प्रेम का मंत्र फूँक दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(1885) की स्थापना ने आम जनता को पहले पहल इतना प्रभावित नहीं किया जितना लेखकों और बुद्धिजीवी वर्ग को। इससे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे विचार फैले। आजादी से पहले के दौर में भारतीय साहित्य ने जनता में राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और नव जागरण की चेतना का संचार किया।

स्वाधीनता संग्राम के दिनों में राष्ट्रीय चेतना भारतीय साहित्य में दूर दूर तक दिखाई देती है। सारा देश जाग रहा था और जगाने वालों में नवजागरण के अग्रदूत साहित्यकार भी थे। एक ही उदाहरण देना हो तो रवींद्र नाथ ठाकुर का देना चाहिए। उन्होंने अपनी भाषा में लिखकर नई रहस्य चेतना और सौन्दर्य भावना का प्रचार-प्रसार किया जिसका असर दूसरी भाषाओं पर भी पड़ा। इतना ही नहीं उनका असर देश के बाहर तक जा पहुंचा। उनकी अखिल मानवतावादी दृष्टि ने भारतीय साहित्य को दो धाराओं में नई राह दिखाई । ये धाराएं हैं – राष्ट्रीय- सांस्कृतिक और रहस्यवादी-छायावादी धारा।

**3. सामाजिक-** सांस्कृतिक सौहार्द धारा : एक बार पंडित नेहरू ने कहा था कि एक ही सांस्कृतिक परिवेश और जीवन के प्रति एक जैसी दृष्टि के फलस्वरूप भारतीयता का ऐसा स्वर विकसित हुआ है जो विविधता के बावजूद हमें एक सूत्र में बांधे रखता है। भारत सांस्कृतिक रूप से इंद्रधनुष-सा बहुरंगी है। वास्तव में आपसी भाईचारे और गंगा-जमुनी तहज़ीब के फैलाव से भारतीय साहित्य में हिन्दू-बौद्ध तथा आर्य-द्रविड परंपरा में अरबी फारसी परंपरा का मेल होता है। पंजाब के सूफी कवि फरीद, लाल हुसैन , बुल्ले शाह आदि ने सूफी प्रेम की धारा को एक नया रूप दिया। सूफी प्रेमकाव्य का उदय तभी हुआ जब आपसी सौहार्द के कारण इनका मिलन हुआ।

**4. अनुभूति-एक्य धारा :** भारतीय साहित्य में कई धाराओं का बहाव है। इस बहाव में एक निरंतरता भी है। यह प्रवाह रुकता नहीं, ठहरता नहीं। हाँ, ये धाराएं दूसरी धाराओं को अपने में मिलाकर खुद को और ज्यादा मजबूत बनाती चली जाती हैं। जैसे एक मोटी रस्सी होती है और उसके 'बल' या 'घुमाव' मुश्किल से ही ओझल होते हैं, वैसे ही भारतीय साहित्य की धारा है। आधुनिकता के दबाव में प्राचीनता दबी नहीं है। इसका हर 'बल' भी हमें पसंद आता है और आपसी जुड़ाव भी। इसे विद्वान 'अनुभूति की एकता' कहते हैं। इन्द्र नाथ चौधरी ने इन अनुभूतियों को गिनाते हुए कहा है कि 'कमोबेश ये सारी अनुभूतियाँ भारतीय भाषाओं में रचित विभिन्न साहित्यों में उपलब्ध हैं और भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना में इन्हें धाराओं के रूप में स्वीकारा जा सकता है"(तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य , पृष्ठ 84)। उदाहरण के लिए वीरगाथा काल में वीरकाव्यों की अनुभूति, रीतिकाल में प्रेम और सौन्दर्य की अनुभूति, भक्ति काल में आध्यात्मिक अनुभूति, नवजागरण काल और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रवाद की अनुभूति, और समकालीन भारतीय साहित्य में मोह भंग की अनुभूति प्रायः समस्त भारतीय लेखन में मिलती है।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य में फैली दो धाराओं के नाम बताइए।
- भारत में धर्म-निरपेक्षता का अर्थ क्या है?
- अनुभूति की एकता से आप क्या समझते हैं?

### 5.3.4 भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं की विशेषताएं

अभी तक हमने चार धाराओं का जिक्र किया। सच बात तो यह है कि जिन चार धाराओं की चर्चा की गई वे अपने आप में एक खाका पेश करती हैं। इस खाके से भारतीय साहित्य की एक सूरत बनती सी नजर आती है। इस सूरत या मूरत के गुण क्या हैं ? इनकी विशेषताएं या खासियतें क्या हैं? यदि कोई पूछे कि इन धाराओं की खासियत क्या है तो परेशानी में पड़ने के बजाय गौर से देखना होगा कि इन धाराओं में कुछ गुणों की झलक दिखाई दे रही है।

- आध्यात्मिकता और रहस्यवाद: भारतीय साहित्य में सबसे प्रमुख धाराओं में से एक इसकी आध्यात्मिकता, रहस्यवाद और सत्य की खोज के लिए आग्रह है। कई भारतीय साहित्यिक रचनाएँ पात्रों की अंदरूनी यात्रा में उतरती हैं क्योंकि वे आध्यात्मिक जागृति, ज्ञान, या परमात्मा के साथ संबंध की तलाश करते हैं।उदाहरण के लिए, "भगवदगीता" (महाभारत) में युद्ध के मैदान में अर्जुन और भगवान कृष्ण के बीच आध्यात्मिक और दार्शनिक संवाद सत्य की पड़ताल करता है।

- मानव स्वभाव का द्वंद्व: भारतीय साहित्य अक्सर मानव स्वभाव के द्वंद्व को दर्शाता है, जो अच्छे और बुरे, प्रकाश और अंधेरे, और गुण और पाप के बीच शाश्वत संघर्ष की खोज करता है। इस विषय को विभिन्न महाकाव्यों, किंवदंतियों और दार्शनिक ग्रंथों में देखा जा सकता है। "रामायण" भगवान राम की अटूट भक्ति और धार्मिकता और रावण के चरित्र, जो अहंकार, लालच और बुराई का प्रतिनिधित्व करता है, के बीच द्वंद्व प्रस्तुत करता है।
- सामाजिक अन्याय और असमानता: भारतीय लेखक अक्सर अपने कार्यों में सामाजिक अन्याय, जातिगत भेदभाव, गरीबी और असमानता के मुद्दों को संबोधित करते हैं।वे उन सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को उजागर करते हैं जो ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज में मौजूद रहते चले आए हैं। मुल्क राज आनंद के उपन्यास "अनटचेबल" में दलित समुदाय द्वारा भोगे जा रहे अपमान और भेदभाव को स्पष्ट रूप से चित्रित ही नहीं किया जाता बल्कि उसके प्रति गुस्सा भी दिखाया गया है। हिंदी के ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' में दलित पीड़ा को स्वर दिया है।
- प्रेम और मानवीय संबंध : रोमांटिक और पारिवारिक दोनों तरह के प्रेम भारतीय साहित्य में बार बार प्रकट किये जाने वाले विषय हैं। भारतीय साहित्य मानवीय भावनाओं, रिश्तों और प्रेम की स्थायी शक्ति की जटिलताओं का पता लगाते चलता है। कालिदास द्वारा लिखित "शकुंतला" में प्रेम की स्थायी शक्ति को उजागर करते हुए राजा दुष्यन्त और शकुंतला की प्रेम कहानी में रोमांटिक और पारिवारिक दोनों तरह का प्रेम है। यह सिलसिला भारतीय साहित्य में लगातार चला आता है।
- प्रकृति और पर्यावरण: भारतीय साहित्य अक्सर प्रकृति और पर्यावरण के साथ गहरे संबंध पर जोर देता है। कई साहित्यिक कृतियों में प्रकृति का मानवीकरण, उत्सव और सम्मान किया गया है, जो पर्यावरणीय चेतना के महत्व को दर्शाता है। "द गाइड" उपन्यास में आर.के. नारायण एक पर्यटक गाइड की कहानी बताने के लिए ग्रामीण भारत की प्राकृतिक सुंदरता की पृष्ठभूमि का उपयोग करते हैं।
- मानव पीड़ा और करुणा द्वारा उससे मुक्ति: मानव पीड़ा की अवधारणा और मुक्ति या मोक्ष की खोज भारतीय साहित्य में एक सामान्य सूत्र है। पात्र अक्सर आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर व्यक्तिगत परीक्षाओं और कष्टों से जूझते हैं। वाल्मीकि 'रामायण' से लेकर अरुंधति रॉय की "द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स" तक सामाजिक अपेक्षाओं और सांस्कृतिक मानदंडों के द्वारा भारतीय साहित्य लोगों की की पीड़ा और मुक्ति पर प्रकाश डालती है। भारतीय साहित्यकार 'करुणा' और 'दया' का दामन कभी नहीं छोड़ते।कई काव्यशास्त्री तो 'करुण' को रस-सम्राट मानते थे। मैथिली शरण गुप्त की 'यशोधरा' और ' साकेत' जैसी रचनाओं में करुणा है, निराला की कविता में करुणा है और आम आदमी के दुख दर्द हैं।

- सांस्कृतिक परंपराएँ और रीति रिवाज : भारतीय साहित्य सांस्कृतिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, और त्योहारों को बहुत महत्व देता है। ये भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग हैं। भारतीय परंपराएँ अक्सर कथा में बुनी जाती हैं और कहानियों की सांस्कृतिक समृद्धि में योगदान करती हैं। बाण भट्ट की 'कादंबरी' से लेकर आर के नारायण की "मालगुडी डेज़" तक में सांस्कृतिक परंपराओं और रीति-रिवाजों को दिखाया गया है।
- लचीलापन और उम्मीद : भारतीय साहित्यिक कृतियाँ विपरीत परिस्थितियों में भी लचीलेपन और आशा की भावना का प्रतीक बनकर पाठकों को दिलासा देती हैं। पात्र मुश्किलों से गुजरते हैं। चुनौतियों पर काबू पाने की कोशिश करते हैं। निराशा के बीच आशा खोजने की कोशिश करते हैं। रोहिंटन मिस्त्री ने "ए फाइन बैलेंस" उपन्यास में राजनीतिक उथल-पुथल के दौरान विपरीत परिस्थितियों का सामना करने वाले अपने पात्रों के लचीलेपन को चित्रित किया है।
- अस्मिता और पहचान की कथाएँ: पहचान, चाहे वह व्यक्तिगत हो, क्षेत्रीय हो, या सांस्कृतिक हो, एक आवर्ती विषय है। भारतीय साहित्य बदलती दुनिया में आत्म-पहचान, सांस्कृतिक पहचान और पहचान की विकसित प्रकृति के सवालों की पड़ताल करता है। झुम्पा लाहिड़ी का उपन्यास "द नेमसेक" पहली पीढ़ी के भारतीय-अमेरिकी के सामने आने वाले पहचान संकट और अपनी सांस्कृतिक विरासत को अपने नए परिवेश के साथ समेटने के संघर्ष की पड़ताल करता है।
- ज्ञान और बुद्धि की खोज: ज्ञान, बुद्धिमत्ता और बौद्धिक विकास की खोज भारतीय साहित्य में एक सामान्य उद्देश्य है। पात्र अक्सर सीखने और आत्म-खोज की यात्रा पर निकलते हैं। हरमन हेस्स द्वारा लिखित "सिद्धार्थ" (हालांकि भारतीय नहीं है, यह भारतीय दर्शन से गहराई से प्रभावित है) अपने शीर्षक चरित्र की आध्यात्मिक यात्रा का अनुसरण करता है क्योंकि वह ज्ञान की तलाश करता है। उपनिषद और पुराण आदि में यही जिज्ञासा है।
- नैतिक दुविधाएँ: भारतीय साहित्य अक्सर पात्रों को नैतिक दुविधाओं के साथ प्रस्तुत करता है, जो उन्हें कठिन विकल्प चुनने के लिए मजबूर करता है जिसके दूरगामी परिणाम होते हैं। रामायण में यदि राम वन न जाते तो कहानी कुछ दूसरी होती। महाभारत में अर्जुन इसी दुविधा के शिकार होते हैं कि वे युद्ध करें या न करें।
- कालातीतता और शाश्वत सत्य: कई भारतीय साहित्यिक रचनाएँ कालातीतता की भावना और यह विचार व्यक्त करती हैं कि कुछ सत्य और मूल्य शाश्वत हैं और समय और संस्कृति की सीमाओं से परे हैं। "उपनिषद" प्राचीन भारतीय ग्रंथ हैं जो गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक अवधारणाओं का पता लगाते हैं, उनकी शिक्षाओं की कालातीत प्रकृति पर जोर देते हैं।

**बोध प्रश्न**

- भारतीय साहित्य की धाराओं की विशेषताओं से आप क्या समझते हैं?
- 'आदमी का दुख दर्द' से किस खासियत की ओर इशारा है, जरा बताइए?

## 5.3.5 उर्दू की मिसाल

भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं की चर्चा करते समय बार बार यह सवाल आपके सामने आता होगा कि बेशक भारतीय साहित्य की अधिकतर भाषाएं कई भाषा परिवारों की हैं पर उर्दू को क्यों लोग अलग थलग समझते हैं। उर्दू साहित्य में प्राचीन भारतीय साहित्य से कुछ खास नहीं आया दिखाई देता। इसका कोई एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। पाश्चात्य साहित्य का भी प्रभाव उर्दू पर कुछ खास नहीं। उर्दू साहित्य ने अरबी फारसी से तो बहुत कुछ लिया है, पर संस्कृत से नहीं।

फिर कैसे उर्दू को भारतीय साहित्य का अंग मानकर इसे मुख्य धारा से जोड़कर देखा जाए। कई लोग भारत विभाजन के बाद उर्दू को संप्रदाय विशेष से जोड़कर देखने लगे थे। फिर विद्वानों ने समझाया कि उर्दू-हिंदी का व्याकरण एक है। वैसे ही यह बात भी गौरतलब है कि भारत की सभी भाषाओं में वाक्य संरचना एक -सी है –पहले कर्ता, फिर कर्म और अंत में क्रिया। भारतीय भाषाओं में व्याकरण की दृष्टि से एकता है। उर्दू-साहित्य भारतीय साहित्य के घेरे से बाहर हो, यह कैसे हो सकता है? उर्दू में भी भारतीय साहित्य के मूल विषय और अलंकार आदि के प्रयोग किये जाते रहे हैं। राम और राम कथा का अनगिनत शायरों ने बार-बार उपमान के रूप में प्रयोग किया है। उर्दू साहित्य में राष्ट्रीय सामाजिक चेतना कूट कूट कर भरी है। उर्दू-कविता में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता और राजनीतिक राष्ट्रीयता दोनों की साफ-साफ झलक मिलती है। यहाँ जमील मज़हरी के इस सवाल और सुझाव पर ध्यान देने की जरूरत महसूस होती है।

कीजै न जमील उर्दू का सिंगार, अब ईरानी तलमीहों से,

पहनेगी विदेशी गहने क्यों यह बेटी भारत माता की?

ये जो 'विदेशी गहने' पहनने और पहनाने का तंज है, इसे नजरंदाज न करें। भारत माता की बेटी उर्दू को अरबी, फारसी के लफ्जों से भरते चले जाने से कोई फायदा होता दिखाई नहीं देता। इस पर गौर करें। गौर करेंगे तो कई मिसालें सामने आ जाएंगी। उदाहरण के लिए, भारतीय साहित्य के अनमोल रतन मुंशी प्रेमचंद को हम उर्दू का मानें या हिंदी का? हरीश त्रिवेदी कहते हैं कि जो लोग उर्दू प्रेमचंद को जानते हैं, वे शायद ही स्वीकार करते हैं कि प्रेमचंद ने हिंदी में भी लिखना शुरू किया था, जबकि जो लोग हिंदी प्रेमचंद को जानते

हैं, वे यह दिखावा करना पसंद करते हैं कि हिंदी में कदम रखने से पहले प्रेमचंद का अस्तित्व ही नहीं था। सैयद एहतेशाम हुसैन ने 1963 में कहा था कि हिंदी का उपन्यास 'गोदान' (1936) वास्तव में उर्दू 'गौदान' है जो प्रेमचंद की मृत्यु के तीन साल बाद 1939 में अनुवाद के बाद प्रकाशित हुआ था। इसके ठीक विपरीत, मसूद हुसैन खान इसी कारण से गौदान को उर्दू साहित्य से पूरी तरह बाहर कर देना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'उर्दू कथा साहित्य के इतिहास में गौदान का कोई स्थान नहीं है। इस वाद-विवाद को चलने दें। पर इसके साथ यह भी जोड़ दें कि जो भी है वह ठीक है। प्रेमचंद भारतीय साहित्य के ऐसे अनमोल रतन हैं जिनके नाम से भारतीय साहित्य की दरो-दीवार रोशन है, कोना-कोना खुशनुमा है।

ट्रांसलेशन या अनुवाद से भारतीय साहित्य ने अपने आप को खूब बढ़ाया है। हिंदी-उर्दू के आपसी रिश्ते भी तर्जुमे की बदौलत खूब परवान चढ़े हैं। अंग्रेजी से और अंग्रेजी में अनुवाद ने एक नई धारा ही बहाने की कोशिश की है। इसका पता उनको ज्यादा लगता है जो कई भाषाओं को जानते हैं। तुलनात्मक साहित्य अपने आप में केवल एक धारा प्रवाह नहीं, यह तो अब एक अलग अध्ययन-क्षेत्र ही बन गया है।

**बोध प्रश्न -**

- क्या भारतीय साहित्य की धाराओं में उर्दू की स्थिति अलग है?
- भारतीय साहित्य की धाराओं के प्रवाह में अनुवाद का क्या महत्व है?

## 5.4 : पाठ सार

इस इकाई में भारतीय साहित्य की उन मुख्य धाराओं की चर्चा है जो एक सी हैं और सब भाषाओं में समान हैं। ये धाराएं भारतीय साहित्य को जोड़कर मजबूत बनाती हैं। भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं की पहचान करने के लिए कुछ कारक चिन्हों से इनकी पहचान की जाती है। उदाहरण केलिए भारतीय भाषाओं के साहित्य का विकास क्रम लगभग एक जैसा रहा है। सब में चार काल हैं। रामायण- महाभारत का सब भाषाओं के साहित्य पर असर है। भारतीय साहित्य की आसानी से बाहर से ही दिखाई देने वाली धाराओं और जाँच कर देखने से पता लगने वाली धाराएं लगातार मजबूती से दिखाई देती हैं। भारतीय साहित्य में धार्मिकता, सांस्कृतिक-सामाजिक एकता, राष्ट्रीयता और देशभक्ति आदि से ओत-प्रोत धाराएं सर्वत्र हैं। इन धाराओं की कुछ विशेषताएं भी हैं जैसे धार्मिकता और अध्यात्म से लेकर परिवार और सामाजिकता तक कई विशेषताएं हैं। हिंदी –उर्दू जैसी सजातीय भाषाएं हैं तो अंग्रेजी और अरबी-फारसी जैसी विजातीय भाषाएं भी हैं। अनुवाद से भी भरटीएए साहित्य में लहरें और धाराएं पैदा होती हैं।

## 5.5 : पाठ की उपलब्धियां

इस इकाई के पाठ से निम्नलिखित उपलब्धियां प्राप्त होती हैं-

1. भारतीय साहित्य भारत की बहुत सी भाषाओं और बोलियों का समेकित अर्थात मिला जुला साहित्य है।
2. इसमें एकता की बहुत सी धाराएं हैं जो आश्चर्यजनक रूप से सबमें समान हैं।मिसाल के तौर पर सब में चार काल पाए जाते हैं, धार्मिकता की धारा सर्वत्र व्याप्त है।
3. सांस्कृतिक परम्पराएं और रीति रिवाज एक से हैं, मान्यताएं और विश्वास समान हैं।
4. राष्ट्रीयता और देश प्रेम की धारा हर भाषा में समान रूप से बहती चली आ रही है।
5. उर्दू हो या अंग्रेजी हमारे देश की सभी भाषाओं और बोलियों में कुछ ऐसी धाराएं समान रूप से बहती चली आ रही हैं जिसकी वजह से भारतीय साहित्य में एकता, भाईचारा, गंगा-जामुनी रिवायत आदि एक सी दिखाई देती हैं।
6. इस एहसास को महसूस करना ज्यादा आसान है, पेश करना मुश्किल है।

## 5.6 : शब्द संपदा

| | | |
|---|---|---|
| 1. आवर्ती | - | चक्कर काटनेवाला । घुमने या फेर लगानेवाला |
| 2. अवधारणा | - | सुविचारित धारणा या विचार, संकल्पना। |
| 3. समेकित | - | जिसका समेकन किया गया हो · मिलाकर एक किया हुआ |
| 4. कालातीत | - | काल या समय से परे, शाश्वत और हमेशा रहनेवाला |
| 5. विकल्प | - | चुनने के लिए एक से अधिक रास्ता, कार्य या उत्तर आदि। |
| 6. मानवीकरण | - | किसी चीज़ को मनुष्यों के लिए अनुकूल बनाना |

## 5.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड –(अ)**

**दीर्घ प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. भारतीय साहित्य की अंतर्निहित धाराओं से आप क्या समझते हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय साहित्य में उर्दू भाषा और साहित्य के वजूद पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. भारतीय साहित्य की प्रमुख धाराओं की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए बताइए कि कैसे राष्ट्रीयता की धारा सभी भारतीय भाषाओं में समान है?

4. सामाजिक न्याय को किस प्रकार भारतीय साहित्य ने अनेक रूप से पेश किया है? दलित,आदिवासी या अल्पसंख्यक लेखन के उदाहरण देकर अपने मत की पुष्टि कीजिए।
5. सामाजिक-सांस्कृतिक सौहार्द धारा से आप क्या समझते हैं? इस धारा का भारतीय साहित्य में क्या स्थान है?
6. धार्मिक व्याप्ति की धारा किस तरह से भारतीय साहित्य की सबसे पुरानी धारा है?

**खंड –(ब)**

लघु प्रश्न

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।**

1. रवींद्र नाथ ठाकुर ने कैसे भारतीय साहित्य को प्रभावित किया?
2. हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखकर प्रेमचंद ने किस प्रकार भारतीय साहित्य को नई राह दिखाई?
3. आप किस साहित्यकार को भारतीय साहित्य में सामाजिक न्याय का अच्छा चितेरा मानते हैं और क्यों?
4. राम और कृष्ण की भक्ति को आधार बनाकर भारतीय साहित्य में भक्ति की धारा को किस तरह साहित्यकारों ने फैलाया?
5 . अनुवाद कैसे भारतीय साहित्य की मुख्य धाराओं को समीप लाने में मदद करता है?
6. भारत की किसी भी भाषा के एक साहित्यकार का परिचय देते हुए बताइए कि वे कैसे भारतीय साहित्य की धाराओं को फैलाने में मददगार हुए हैं?

**खंड- (स)**

I. सही विकल्प चुनिए

1) इनमें से कौन सा भाषा-परिवार नहीं है-

क) भारत-यूरोपीय, ख) तिब्बत-चीनी, ग) आस्ट्रिक घ) काशी-बनारस

2) यह शब्द 'दलित' का दूसरा अर्थ नहीं हो सकता-

क) अल्पसंख्यक ख) हरिजन ग ) अनुसूचित जाति घ) दबाया हुआ

3) भारतीय साहित्य में इस भाषा के साहित्य को नहीं गिन सकते

क) अंग्रेजी ख) उर्दू ग) पश्तो घ) संस्कृत

4) महाभारत के अर्जुन किस धारा की ओर इशारा करते लगते हैं ?

क) ज्ञान और बुद्धि की खोज ख) सामाजिक अन्याय और असमानता
ग) नैतिक दुविधा घ) अस्मिता की पहचान

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. भारतीय साहित्य की विविधता में ही __________________ का मजबूत धागा मौजूद है।

2. जो धाराएं बाहर से साफ दिखाई देती हैं, उन्हें _____________ कह सकते हैं, जो दिखाई नहीं देती पर महसूस की जा सकती हैं उन्हें ________________ कहना होगा।

3. ___________________ का अनगिनत शायरों ने बार-बार उपमान के रूप में प्रयोग किया है।

4. भारतीय भाषाओं में व्याकरण की दृष्टि से ___________ है।

5. __________________ प्राचीन भारतीय ग्रंथ हैं जो गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक अवधारणाओं का पता लगाते हैं।

**III. सुमेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| 1. धार्मिक व्याप्ति धारा | क) महाभारत और रामायण |
| 2. पुरुषार्थ | ख) श्री अरविन्द |
| 3. राष्ट्रीय धारा | ग) तुलसीदास |
| 4. नैतिक दुविधा | घ) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष |

## 5.8 : पठनीय पुस्तकें


1. भारतीय साहित्य की भूमिका (2017) : डॉ राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. भारतीय साहित्य की पहचान – सियाराम तिवारी
3. भारतीय साहित्य की अवधारणा- प्रो ऋषभ देव शर्मा

## इकाई 6: तेलुगु साहित्य का इतिहास : मध्यकाल तक

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मूल पाठ : तेलुगु साहित्य का इतिहास : मध्यकाल तक

6.3.1 नन्नैया पूर्व युग अथवा आदिकाल

6.3.2 पुराण काल अथवा पूर्व मध्यकाल

6.3.3 काव्य काल अथवा मध्यकाल

6.3.4 ह्रास काल अथवा उत्तर मध्यकाल

6.4 पाठ सार

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

6.6 शब्द संपदा

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

6.8 पठनीय पुस्तकें

### 6.1 प्रस्तावना

आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना की राजभाषा तेलुगु द्रविड परिवार की भाषा है। वस्तुतः इसका मूल ढाँचा द्रविड है लेकिन इस पर संस्कृत और प्राकृत का ज्यादा प्रभाव है। इस भाषा के उद्भव और विकास के संबंध में काफी मतभेद है। ध्यान देने की बात है कि तेलुगु भाषा का इतिहास काफी पुराना है। कहा जाता है कि तेलुगु भाषा में प्राप्त प्रथम शिलालेख छठी शताब्दी के हैं। 'द हिस्टोरिकल ग्रामर ऑफ तेलुगु' नामक पुस्तक में कोराडा महादेव शास्त्री ने तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि तेलुगु भाषा का अस्तित्व छठी शती से भी पहले का है। डॉ. वी. एच. कृष्णमूर्ति ने तेलुगु भाषा के अस्तित्व को ई. पू. 1000 वर्ष तक स्वीकार किया है। तेलुगु भाषा का साहित्य-भंडार समृद्ध है। भाषा के साथ-साथ साहित्य का उद्भव होता है।

हिंदी साहित्य की भाँति तेलुगु साहित्य के इतिहास को भी काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है - नन्नैया पूर्व युग अथवा आदिकाल, पुराणकाल अथवा पूर्व मध्यकाल, काव्य काल अथवा मध्यकाल, ह्रास काल और आधुनिक काल। प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप तेलुगु साहित्य के इतिहास का अध्ययन मध्यकाल तक करेंगे। आगे के अध्यायों में आधुनिक काल का अध्ययन करेंगे।

## 6.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- तेलुगु साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के आदिकाल की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के पूर्व मध्यकाल की प्रवृत्तियों को जान सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के मध्यकाल की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के प्रमुख रचनाकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

## 6.3 मूल पाठ : तेलुगु साहित्य का इतिहास : मध्यकाल तक

प्रिय छात्रो! तेलुगु साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने से पूर्व थोड़ी सी चर्चा तेलुगु भाषा के बारे में करेंगे। हम तेलुगु भाषा के संक्षिप्त परिचय प्राप्त करके उस भाषा से संबद्ध साहित्य के बारे में जानने की कोशिश करेंगे।

छात्रो! आप जानते ही हैं कि तेलुगु भाषा आंध्र प्रदेश और तेलंगाना की राजभाषा है। 'तेलुगु' शब्द की उत्पत्ति के संबंध में काफी रोचक तथ्य सामने आते हैं। आंध्र प्रदेश की जनता की भाषा के लिए 'आंध्र भाषा', 'तेलुगु', 'तेनुगु' और 'त्रिलिंग' शब्दों का प्रयोग मिलता है। इतिहास से यह पता चलता है कि 'आंध्र' शब्द का प्रयोग सबसे पहले ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है। सम्राट अशोक के शिलालेखों में 'आंध्र' शब्द का प्रयोग दिखाई देता है। पल्लव राजा के शिलालेखों में आंध्र प्रदेश के 'अंध्रपथ' का प्रयोग प्राप्त होता है। "ये सारे प्रयोग जाति और देशवाचक हैं न कि भाषापरक। तेलुगु के आदि कवि नन्नैया (11 वीं शति) द्वारा रचित 'आंध्र महाभारतम्' में 'आंध्र भाषा' का प्रयोग प्राप्त होता है। 'अंध्र' शब्द 'आंध्र' में कैसे और कब परिवर्तित हुआ इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। 'तेलुगु' शब्द के तीन रूप प्रचलित हैं - 'तेनुगु', 'तेनगु' और 'तेनुगु'। कालांतर में इन्हीं शब्दों के रूप परिवर्तन के कारण 'तेलुंगु', 'तेलगु', 'तेलुगु' का विकास हुआ।" (गुर्रमकोंडा नीरजा, तेलुगु साहित्य : एक अंतर्यात्रा, पृ.22)। एक और मत के अनुसार दक्षिण भारत में बोली जाने वाला भाषा होने के कारण इसका नाम 'तेनुगु' पड़ा, क्योंकि तमिल भाषा में दक्षिण को 'तेन' कहा जाता है। द्रविड भाषा में 'तेन' का एक और अर्थ है शहद। मधुर भाषा होने के कारण तेलुगु को तेनुगु भी कहा जाता था। ये दोनों ही शब्द वास्तव में रूपांतरित शब्द हैं। तेलुगु स्वरांत भाषा है। इस भाषा में निहित माधुर्य के कारण इसे इटालियन ऑफ द ईस्ट कहा जाता है।

तेलुगु भाषा से संबंधित एक और रोचक तथ्य है। आंध्र प्रदेश के लिए 'त्रिलिंगदेश' का प्रयोग किया जाता है। इसका उल्लेख 13 ई. के विन्नकोटा पेद्दन्ना के 'काव्यालंकार चूड़ामणि' में प्राप्त होता है। 14वीं शताब्दी में काकतीय राजा प्रतापरुद्र के राज कवि विद्यानाथ के ग्रंथ 'प्रतापरुद्रीयम' में इस शब्द का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि 'तेलुगु' शब्द का मूल रूप

संस्कृत का 'त्रिलिंग' है। श्रीशैलम, कालेश्वरम और द्राक्षारामम की सीमाओं से घिरा देश 'त्रिलिंग देश' है और इस देश की भाषा 'त्रिलिंग' (तेलुगु) है। 'ब्रह्मांड' और 'स्कंदपुराण' में यह स्पष्ट किया गया है कि 'त्रिलिंग' शब्द देशवाचक शब्द है। (आंध्र प्रदेश दर्शनी, 'कललु-साहित्यम-संस्कृति' भागमु (कला-साहित्य-संस्कृति खंड), सं वाई. वी. कृष्णाराव, पृ. 40)। 'त्रिलिंग' शब्द का प्रयोग नन्नैया भट्ट (11वीं शती) के 'महाभारत' में प्राप्त होता है। आधुनिक काल तक में 'त्रिलिंग देश' तथा 'त्रिलिंग भाषा' का प्रयोग साहित्य में होता रहा। ध्यान देने की बात है कि तेलंगाना के कुछ ब्राह्मण अपने आप को 'तैलंग' भी कहते हैं।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु भाषा को 'त्रिलिंग' क्यों कहा जाता है?
- इतिहास में तेलुगु भाषा के लिए किन शब्दों का प्रयोग पाया जाता है?
- तेलुगु भाषा का शाब्दिक अर्थ क्या है?
- तेलुगु भाषा के आदि कवि कौन हैं?

प्रिय छात्रो! हर भाषा का अपना इतिहास और साहित्य होता है। अध्ययन की सुविधा हेतु उसे कालखंडों में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन कभी इतिहास के आधार पर होता है तो कभी प्रवृत्तियों के आधार पर। कभी-कभी रचनाओं के आधार पर तो कभी-कभी रचनाकारों, रचना विधानों, प्रवर्तकों आदि के आधार पर होता है। हिंदी साहित्य की भाँति तेलुगु साहित्य के इतिहास के काल विभाजन को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। "प्रायः साहित्य किसी भी भाषा में पहले मौखिक साहित्य के रूप में प्रचलन में आता है और लिपि के आविष्कार के बाद लिखित साहित्य स्थायी रूप में परिवर्तित हो जाता है। तेलुगु लिपि का प्रादुर्भाव ईसा से 800 वर्ष पूर्व माना जाता है। अतः इससे पूर्व का साहित्य लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है। गुनग विजयादित्य के दो शिलालेखों तथा विजयवाडा के युद्धमल्ल के शिलालेख में इसका उल्लेख है।" (गुर्रमकोंडा नीरजा, तेलुगु साहित्य : एक अंतर्यात्रा, पृ. 28)।

आचार्य पिंगलि लक्ष्मीकांतम ने तेलुगु साहित्य के इतिहास का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया है -

प्राग नन्नया युग - ई.पू. 200 - 1000 ई.
नन्नया युग - 11वीं शती
शिवकवि युग - 12वीं शती
तिक्कन्ना युग - 13वीं शती
एर्रन्ना युग - 1300 - 1350 ई.
श्रीनाथ युग - 1350 - 1500 ई.
प्रबंध युग या कृष्णदेव राय युग - 1500 - 1600 ई.
दक्षिणांध्र युग - 1600 - 1775 ई.

क्षीण युग - 1775 - 1875 ई.
आधुनिक युग - 1875 ई. से आज तक

आचार्य पिंगलि लक्ष्मीकांतम (1894 - 1972) के बाद तेलुगु साहित्य के इतिहास का कालविभाजन करने वाले विद्वानों में प्रगतिवादी साहित्यकार आरुद्र (1925 - 1998) का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'समग्र आंध्र साहित्यम' (समग्र आंध्र साहित्य, 1965-68, 12 खंड) में तेलुगु साहित्य के इतिहास को ऐतिहासिक राजवंशों के आधार पर विभाजित किया है -

आदिम चालुक्य युग (1100 ई. - 1200 ई.)
काकतीय युग (1200 ई. - 1300 ई.)
पद्मनायक युग (1300 ई. - 1375 ई.)
रेड्डी राजाओं का युग (1375 ई. - 1435 ई.)
गजपति राजाओं का युग (1435 ई. - 1450 ई.)
आरंभिक विजयनगर रायल युग (1450 ई. - 1500 ई.)
परवर्ती विजयनगर रायल युग या कृष्णदेवराय युग (1500 ई. - 1550 ई.)
नवाबों का युग (1550 ई. - 1600 ई.)
अरवीटि राजाओं का युग (16 वीं शती का चतुर्थ भाग)
नायक राजाओं का युग - I (1600 ई. - 1670 ई.)
नायक राजाओं का युग - II (1670 ई. - 1750 ई.)
अंतिम राजाओं का युग (1750 ई. - 1850 ई.)
यूरोपीय कंपनियों का युग (1850 ई. - 1900 ई.)
जमींदार युग (1850 ई. - 1900 ई.)
आधुनिक युग (1900 ई. से ........)

प्राचीन तेलुगु साहित्य का उपर्युक्त काल विभाजन वस्तुतः रचनाकारों, रचना विधान और ऐतिहासिक राजवंशों के आधार पर किया गया है। लेकिन वर्तमान में तेलुगु साहित्य के इतिहास का प्रायः स्वीकृत विभाजन पुराणकाल (1000-1400), काव्यकाल (1400-1650), ह्रासकाल (1650-1850) और आधुनिककाल (1850 से) के रूप में प्रचलित है। तेलुगु भाषा के आदि कवि नन्नैया को केंद्र में रखकर तेलुगु भाषा एवं साहित्य का काल विभाजन किया जाता है। आगे हम तेलुगु साहित्य के इतिहास का अध्ययन कालखंडों के आधार पर करेंगे। अर्थात नन्नैया पूर्व युग, पुराणकाल, काव्य काल, ह्रास काल और आधुनिक काल। इस इकाई में हम नन्नैया पूर्व युग अथवा आदिकाल से लेकर ह्रास काल अथवा मध्यकाल तक का अध्ययन करेंगे। अगली इकाई में आधुनिक काल का अध्ययन करेंगे।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु भाषा और साहित्य का विभाजन प्रायः किस कवि को आधार बनाकर किया जाता है?
- तेलुगु साहित्य का विभाजन पहले-पहल किसने किया है?
- 'समग्र आंध्र साहित्यम' के रचनाकार कौन हैं?
- तेलुगु साहित्य के इतिहास को ऐतिहासिक राजवंशों के आधार पर किसने विभाजित किया?

### 6.3.1 नन्नैया पूर्व युग अथवा आदिकाल

कुछ विद्वानों का मत है कि नन्नैया के पूर्व भी तेलुगु भाषा विद्यमान थी। नन्नैया से पूर्व तेलुगु साहित्य का भले ही स्पष्ट रूप से लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं होते, चोलवंश के कुछ शिलालेखों और लोकगीतों के माध्यम से कुछ प्रमाण अवश्य प्राप्त होते हैं। नन्नैया ने 11वीं शती में रचित अपनी कृति 'आंध्र महाभारतम्' में भी इसका उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि तेलुगु भाषा में सबसे पहले साहित्य काव्य के रूप में उपलब्ध था।

छात्रो! ध्यान देने की बात है कि छठी शताब्दी में तेलुगु शिलालेख उपलब्ध है। उसके पूर्व भी प्राकृत एवं संस्कृत के शिलालेखों तथा गाथाओं में प्रयुक्त तेलुगु शब्दों द्वारा हम तेलुगु भाषा के विकास का परिचय प्राप्त होता है। इनसे यह प्रमाणित हुआ कि प्रारंभ से ही तेलुगु भाषा जनता के बीच व्यवहार में थी। इस कालखंड में धार्मिक दृष्टि से आंध्र की जनता काफी उदार और सहनशील थी तथा लोक भाषा के स्थान पर संस्कृत की प्रधानता थी। उस समय अपने धर्म प्रचार के लिए जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने काव्य रचना की। छठी शताब्दी के चोल तथा पूर्वी चालुक्य राजाओं के शिलालेखों में तेलुगु साहित्य पद्य, गद्य तथा चंपू रूपों में मिलता है। चंपू काव्य अर्थात पद्य-काव्य और गद्य-काव्य का मिश्रित रूप होता है।

कहा जाता है कि वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए इन रचनाओं को चालुक्यों ने नष्ट कर दिया। यही कारण है कि तमिल और कन्नड में प्राचीन जैन काव्य उपलब्ध हैं जबकि तेलुगु में नहीं। कुछ विद्वान ने यह स्पष्ट किया कि वेंगी देश (आंध्र प्रदेश का एक प्रांत) में जन्म लेकर क्रमशः सन् 141 ई. में पंप कवि ने तथा 148 ई. में नागवर्मा ने कन्नड में महाभारत तथा रामायण की रचना की है। इसके पूर्व ही इन कवियों ने तेलुगु काव्य-रचना की होगी। ये जैन धर्मावलंबी थे, अतः जैन धर्म के समर्थन में लिखित इनके ग्रंथ वैदिक मतावलंबियों द्वारा जलाए गए थे। कुछ शिलालेखों के माध्यम से यह संकेत प्राप्त होता है कि इस समय के साहित्यकारों में श्रीपति पंडित का नाम उल्लेखनीय है, लेकिन इनके द्वारा रचित साहित्य का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं।

एक और मत के अनुसार अप्पकवि ने 'अप्पकवीयमु' नामक ग्रंथ में लिखा है कि तेलुगु के आदि कवि नन्नैया के समकालीन वेमुलवाड़ा भीमकवि ने 'राघव पांडवीयमु' नामक द्व्यर्थक काव्य तथा अर्धव ने महाभारत की रचना की, लेकिन उन ग्रंथों को नन्नैया ने नष्ट किया। यह आक्षेप अविश्वसनीय है। उस समय लौकिक साहित्य प्रबल था। इसे तेलुगु में 'जानपदमु' (जन साहित्य/ लोक साहित्य) कहा जाता है। पालकूरिकी सोमनाथ ने अपने काव्य 'पंडिताराध्य

चरित्र’ (पंडिताराध्य का इतिहास) में इस युग के गीतों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए देखें -

पदमुलु दुम्मेद पदमुलु प्रभात
पदर्मुलु बर्वत पदमुलानंद
पदमुलु, शंकर पदमुलु, निवालि
पदमुलु, बालेशु पदमुलु, गोब्बि
पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, संज
वर्णन, मरि गणवर्णन पदमुलु

उपर्युक्त पंक्तियों में पदमुलु का अर्थ है गीत। दुम्मेद का अर्थ है भ्रमर। इन पंक्तियों में अनेक प्रकार के गीतों का संकेत है। जैसे - भ्रमर गीत, प्रभात गीत, पर्वत गीत, आनंद गीत, शंकर गीत, श्रद्धांजलि गीत, गोब्बी गीत (संक्रांति गीत), ज्योत्सना गीत, संध्या गीत, गण-वर्णन गीत आदि। इतना यही नहीं आदिकालीन तेलुगु साहित्य में कठपुतली खेलों के गीत, नौका गीत, चक्की और कुटाई गीत (श्रम गीत), स्त्रियों के गीत, वीर गीत आदि जनता के मनोरंजन के लिए गए जाने वाले गीतों का उल्लेख प्राप्त होता है। लव-कुश कथा, उर्मिला की निद्रा, लक्ष्मण की मूर्च्छा आदि वर्णनों में रचे लोकगीत उल्लेखनीय हैं। साथ ही सोलह संस्कारों के गीत भी पाए जाते हैं। इनका उल्लेख उस समय ‘छंद शास्त्र’ में था, लेकिन यह अनुपलब्ध है। ग्यारहवीं शती में तमिल भाषा में रचित ‘याप्पिरंगलम्’ नामक छंदशास्त्र के लेखक ने भूमिका में यह लिखा है कि ‘वांचियार नामक जैन लेखक द्वारा तेलुगु में रचित छंदशास्त्र के आधार पर मैंने यह ग्रंथ लिखा है।’ (तेलुगु साहित्य का इतिहास, बालशौरि रेड्डी, पृ. 14 से उद्धृत)। इससे स्पष्ट है कि नन्नैया से पूर्व ही लोकसाहित्य में कविता प्रचलित थी तथा वांचियार जैसे कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की थी।

प्रिय छात्रो! ध्यान देने की बात है कि नन्नैया के पूर्व कवियों की रचनाएँ या तो नष्ट हो गई हैं या अज्ञात रह गई हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इस युग का नामकरण ‘अज्ञात युग’ किया।

**बोध प्रश्न**

- नन्नैया पूर्व युग के साहित्य को क्यों नष्ट किया?
- नन्नैया पूर्व युग के शिलालेखों में प्राप्त एक साहित्यकार नाम बताइए।
- ‘जानपदमु’ का क्या अर्थ है?

### 6.3.2 पुराण काल अथवा पूर्व मध्यकाल

पुराण काल को ‘भाषांतरीकरण’ (भाषांतर) युग भी कहा जाता है क्योंकि इस काल में संस्कृत के ग्रंथों का तेलुगु भाषा के अनुरूप रूपांतरण किया गया। इस युग से तेलुगु में लिपिबद्ध साहित्य प्राप्त होता है। नन्नैया भट्ट, नन्नेचोड कवि, अथर्वणाचार्य, भद्र भूपति, तिकन्ना

सोमयाजी, नाचन सोमन्ना, केतन्ना, मारन्ना और एर्राप्रेगडा आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं। इस कालखंड में वस्तुतः पौराणिक एवं धार्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता थी। तेलुगु साहित्य के विकास में इस कालखंड में चालुक्य, काकतीय और विजयनगर राजाओं से लेकर रेड्डी राजाओं और अन्य छोटे-मोटे संस्थानों तक के राजनैतिक इतिहास का योगदान उल्लेखनीय है। हिंदी के आदिकाल के कवि जिस तरह राज्याश्रित थे, उसी तरह तेलुगु के कवि भी राज्याश्रित थे। अतः वे राजाओं को अपनी कृतियाँ समर्पित करते थे। उस समय की धार्मिक पृष्ठभूमि को देखने से स्पष्ट होता है कि वैदिक, शैव, वीरशैव और वैष्णव सभी धर्मों को लोगों ने स्वेच्छा से अपनाया।

तेलुगु में काव्य रचना प्रारंभ होने के बाद भी संस्कृत का प्रभाव कम नहीं हुआ और आंध्र प्रदेश में संस्कृत नाटक लिखे जाते रहे। नन्नैया, तिकन्ना, सोमनाथ, एर्राप्रेगडा अथवा एर्रन्ना आदि कवियों ने तेलुगु के साथ-साथ संस्कृत में भी रचनाएँ कीं। इस कालखंड में इन तीनों कवियों का प्रभाव ज्यादा था। नन्नैया भट्ट राजनरेंद्र (1020 ई.) के समकालीन थे और राजवंश के कुलगुरु थे। नन्नैया कृत 'आंध्र महाभारतम्' चंपू शैली में रचित है। इसे तेलुगु साहित्य का पहला ग्रंथ माना जाता है और नन्नैया को आदिकवि। यद्यपि नन्नैया ने संस्कृत महाभारत को आधार बनाया पर उन्होंने इसका अनुवाद नहीं किया, यह भी प्रश्न उठता है कि तेलुगु साहित्य का प्रारंभ 'महाभारत' से ही क्यों हुआ जबकि संस्कृत का आदिकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि "रामायण भारतीय धर्म और संस्कृति को पारिवारिक संदर्भ में प्रस्तुत करती है तथा उसमें भारतीय जीवन के विकसित और प्रौढ़ रूप का निरूपण किया गया। इसकी तुलना में महाभारत भारतीय धर्म और संस्कृति का विज्ञान है। भारतीय जीवन के सभी पहलू, उसके लक्ष्य और आदर्श तथा उसकी आशा-आकंक्षाएँ उसमें समग्र रूप से प्रतिपादित हुए हैं। उसे पंचम वेद कहते हैं और गीता सहित चारों वेदों का सारतत्व उसमें अंतर्निहित है।" (एस. टी. नरसिम्हाचारी, तेलुगु साहित्य : संदर्भ और समीक्षा, पृ.41)। यह एक कारण हो सकता है, परंतु इसका ऐतिहासिक कारण अधिक विश्वसनीय है। दरअसल नन्नैया की 'आंध्र महाभारत' के पूर्व आंध्र प्रदेश पर सातवाहन, इक्ष्वाकु, पल्लव, चालुक्य, चोल और काकतीय वंशों का शासन था। राजमंड्री में चालुक्य और चोल वंश का शासन था। उन्हीं की प्रेरणा से साहित्य का विकास होने लगा। उस समय तेलंगाना में काकतीय वंश का शासन था। उनके समय में आंध्र प्रदेश में शासकीय भाषा पहले संस्कृत और प्राकृत थी। चालुक्य और चोल राजाओं की भाषा तमिल थी लेकिन राजमंड्री में तेलुगु भाषा परिवेश प्रबल था। चालुक्य राजाओं की धार्मिक दृष्टि के कारण रामायण की अपेक्षा तेलुगु भाषा में महाभारत की रचना को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। राजनरेंद्र की आज्ञा पर नन्नैया भट्ट ने 'आंध्र महाभारतम' की रचना प्रारंभ की। उनके इस महत्कार्य को आगे के दो कवियों तिकन्ना और एर्राप्रेगडा अथवा एर्रन्ना ने परिपूर्णता तक पहुँचाया। अतः इस युग को 'कवित्रय युग' भी कहा जाता है।

'आंध्र महाभारत' के अतिरिक्त नन्नैया ने आंध्र शब्द चिंतामणि, इंद्रसेन विजयमु, चामुंडिका विलासमु जैसी रचनाओं का सृजन किया। 'आंध्र शब्द चिंतामणि' तेलुगु का पहला व्याकरण ग्रंथ है, भले ही इसकी रचना संस्कृत में हुई हो। उनके के साहित्य में संस्कृत के साथ-साथ लोक भाषा का भी प्रयोग पाया जाता है।

नन्नेचोड पर कन्नड का प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने 'कुमारसंभवम' (कुमारसंभव) का सृजन किया। इसमें उन्होंने 'देशी कविता' का उल्लेख किया है। वे वस्तुतः शैव कवि थे। उन्होंने अपनी कविता को 'वस्तु कविता' कहकर कविता के कुछ प्रमुख लक्षणों का उल्लेख किया जिनमें मृदुल सूक्तियाँ, उज्ज्वल भाव, मनोहरता, रमणीय वर्णन, रसात्मकता आदि सम्मिलित हैं। 'कुमारसंभवम' शृंगार रस प्रधान काव्य है। इसमें दक्ष यज्ञ के विध्वंस के चित्रण में कवि ने वीर, रौद्र और वीभत्स रसों का समावेश किया। नन्नेचोड ने अपनी कृति में 'जानु तेनुगु' (तेलुगु का प्राकृत रूप/ जन तेलुगु) का प्रयोग किया।

पाल्कुरिकि सोमनाथ की कृतियों में 'पंडिताराध्य चरित्र' (पंडिताराध्य का इतिहास) और 'बसव पुराण' उल्लेखनीय हैं। 'पंडिताराध्य चरित्र' में उन्होंने वीरशैव धर्म के धर्मप्रचारक पंडिताराध्य के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है। इसे वीरशैव मत का विश्वकोश भी कहा जाता है। 'बसव पुराण' में बसवेश्वर के जीवन की घटनाएँ, तत्कालीन शैव भक्तों की गाथाएँ तथा वीर शैव मत की विशेषताएँ सम्मिलित हैं। कवि की दृष्टि प्रमुख रूप से भक्ति प्रधान है।

भद्र भूपति अथवा भदन्ना ने 'सुमति शतकम' और 'नीतिसार मुक्तावली' नामक दो रचनाओं का सृजन किया। 'सुमति शतक' में सूक्तियाँ हैं जो लोक जीवन के अनुभव के आधार पर लिखी गई हैं। उदाहरण के लिए - 'कनकपु सिंहासमुन/ शनकमु गूर्चुंडबेट्टि/ शुभलग्नमुनम्/ दोनरग बट्टमु गट्टिन/ वेनुकटि गुनामेल मानु विनरा सुमति!' (शुभलग्न देखकर कुत्ते को स्वर्ण सिंहासन पर बिठाकर उसका राज्याभिषेक करके राजा बनाने के बावजूद वह अपने सहज गुणों का परित्याग नहीं करता। अधम व्यक्ति अपने स्वभाव को बदल नहीं सकता)।

'आंध्र महाभारतम' की भांति 'भास्कर रामायण' भी उल्लेखनीय ग्रंथ है। कहा जाता है कि चार कवियों अर्थात भास्कर, मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव और अय्यलार्य के सहयोग से यह कृति संपन्न हुई। आज भी गाँव के मंदिरों में हरिकथाकार और बुर्रकथाकार 'भास्कर रामायण' को गाकर सुनाते हैं। इस कृति के निम्नलिखित प्रसंग उल्लेखनीय हैं -

1. गौतम महर्षि का अहिल्या को पाषाण बन जाने का श्राप देना
2. राम के राज्याभिषेक में विघ्न पैदा करने के लिए मंथरा का कैकेयी के कान भरना
3. लक्ष्मण का जंबुमाली का वध करना
4. वाली की पत्नी तारा का राम को श्राप देना

5. संपाति का अपने पुत्र को सेतान्वेषण के लिए भेजना
6. नागपाश से बद्ध राम के पास पहुँचकर नारद का उनकी स्तुति करके यह उपदेश देना कि गरुड का स्मरण करने से नागपाश से मुक्त हो सकते हैं
7. संजीवनी लाने जाते समय हनुमान का मार्ग के मध्य में कालनेमी के आश्रम में जाना और वहाँ धान्यमाली का वाढ करके उसका श्राप विमोचन करना
8. विभीषण द्वारा राम को रावण की मृत्यु का रहस्य बताना
9. शुक्राचार्य के उपदेशानुसार रावण का पाताल में होम करना

'निर्वचनोत्तर रामायण' के रचनाकार हैं तिक्कन्ना सोमयाजी। इसमें कवि ने चंपू शैली का प्रयोग किया है। 'उभयकविमित्र' तथा 'कविब्रह्मा' के नाम से प्रसिद्ध तिक्कन्ना ने 'आंध्र महाभारतम्' को विराट पर्व से लेकर अंत तक पूरा किया है। एर्राप्रगडा अथवा एर्रन्ना शिव भक्त थे, इसलिए 'शंभुदास' नाम से भी जाने जाते थे। प्रबंध काव्य में सुनिश्चित नींव डालने के कारण 'प्रबंध परमेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हैं।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु के आदिकवि कौन हैं?
- 'आंध्र महाभारतम्' किस शैली में रचित कृति है?
- तेलुगु साहित्य का प्रारंभ 'महाभारत' से ही क्यों हुआ?
- 'कविब्रह्मा' कहकर किसको संबोधित किया जाता है?
- इस युग को 'कवित्रय युग' क्यों कहा जाता है?

### 6.3.3 काव्य काल अथवा मध्यकाल

इस युग के प्रथम उत्थान को रेड्डी युग कहा जाता है और द्वितीय उत्थान को रायल युग। रेड्डी युग के कवियों में प्रमुख हैं श्रीनाथ (शृंगार नैषध), अन्नमाचार्य (संकीर्तन), वेमना (पद), बम्मेर पोतना (आंध्र महाभागवत)। रायल युग के प्रमुख कवि हैं कृष्णदेव राय (आमुक्तमाल्यदा), अल्लसानि पेद्दन्न (मनु चरित्र - मनु का इतिहास), नंदि तिम्मन्ना (पारिजातापहरण), धूर्जटि (कालहस्ती माहात्म्य, कालहस्ती का महत्व), ताल्लपाका चिन्नन्ना (उषा परिणय), अय्यलराजु रामभद्र कवि (रामाभ्युदयम), पिंगलि सूरन्न (कलापूर्णोदय), तेनालि रामकृष्ण (पांडुरंग माहात्म्य), रामराज भूषण (वसु चरित्र), मोल्ल (रामायण) आदि प्रमुख हैं।

**काव्य काल का प्रथम उत्थान : रेड्डी युग**

काव्य काल के प्रथम उत्थान अर्थात रेड्डी युग में तेलुगु साहित्य में प्रमुख रूप से शृंगार रस प्रधान प्रबंध काव्यों की रचना हुई। यह वह समय था जब कवि संस्कृत नाटकों का काव्यानुवाद करते थे। यह समय वस्तुतः संधि का समय था। अतः इस युग को संधि युग अथवा श्रीनाथ युग भी कहा जाता है। काकतीय साम्राज्य के अस्त होते ही आंध्र प्रदेश चार राज्यों में विभक्त हो

गया। तुंगभद्रा के तट पर हरिहर और बुक्कराय ने माधव विद्यायरण्य की कृपया से कर्नाटक राज्य की नींव डाली। उत्कल प्रांत में कटक को राजधानी बनाकर गजपति राजाओं ने राज्य करना प्रारंभ किया। कृष्णा नदी के तटीय प्रदेश पर अद्दंकी को राजधानी बनाकर रेड्डी राजाओं ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। इसी प्रकार पश्चिमोत्तर में ओरुगल्लु से लेकर श्रीशैलम तक के भूभाग पर रेचर्ल सिंगमनायडु राज्य करने लगे।

काव्य काल के प्रथम उत्थान में माधव राव ने 'राघवीयम्' नाम से रामायण की रचना की थी। काव्य वस्तु की दृष्टि से इस समय को प्रमुख रूप छह भागों में विभाजित किया जाता है - विपुल काव्य, काव्य प्रबंध, मिश्र काव्य, नीति काव्य, शतक काव्य और द्विपद काव्य। इनके अतिरिक्त पुराण काव्य और शुद्ध काव्य रूप भी पाए जाते हैं। केतना और त्रिपुरांतक को मिश्र काव्यों की रचना करने का श्रेय प्राप्त है। त्रिपुरांतक को ही तेलुगु साहित्य के इतिहास में तिप्पन्ना के नाम से जाना जाता है। उन्होंने त्रिपुरांतकोदाहरणम्, मदन विजयमु, चंद्र तारावलि, अंबिकाशतकम्, रीति शास्त्रम् आदि काव्यों की रचना की। साथ ही संस्कृत में प्रेमाभिरामम् नाम से नाटक भी लिखा था।

तेलुगु साहित्य के इतिहास में तिक्कन्ना के बाद श्रीनाथ को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उन्हें कवि सार्वभौम की उपाधि से अभिहित किया गया। वे प्रमुख रूप से दरबारी कवि थे। अतः उनके काव्यों में शृंगार रस प्रमुख रूप से पाया जाता है। उन्होंने आंध्र प्रदेश स्थित पलनाडु के इतिहास का अंकन 'पलनाटि वीर चरित्र' (पलनाडु का इतिहास) नाम से द्विपद काव्य रूप में किया है। यह वीर गीत है। आंध्र प्रदेश में बुर्रकथाकार (लोकगायन शैली) इस वीर गाथा का प्रसार ग्रामीण जनता के बीच करते हैं। ध्यान देने की बात है कि 24 जनवरी, 1757 को घटित बोब्बिली-विजयनगरम की लड़ाई एक उल्लेखनीय घटना थी। दोनों पक्षों को भारी कीमत चुकानी पड़ी। श्रीनाथ रचनाओं में शृंगार नैषध सबसे प्रौढ़ काव्य है। उनके समकालीनों में बम्मेर पोतना का नाम उल्लेखनीय है। तेलुगु साहित्य के इतिहास में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'तेलुगु कवियों में तिक्कन्ना सूर्य है तो पोतना चंद्रमा है।'

तेलुगु साहित्य में इसी समय ताल्लपाक अन्नमाचार्य का उदय हुआ। वे भगवान श्री बालाजी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने संस्कृत के साथ-साथ तेलुगु में अनेक पदों की रचना की। तेलुगु पदकविता पितामह, संकीर्तनाचार्य और हरिकीर्तनाचार्य आदी नामों से अभिहित अन्नमाचार्य के पदोंवाले ताम्रपत्र श्रीरंगम तथा अहोबिलम् जैसे क्षेत्रों में पाए जाते हैं। अन्नमाचार्य की रचना का प्रधान स्रोत तमिल भाषा में आलवार भक्तोंर द्वारा रचित 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' (चार हजार पदों का संग्रह) है। हरिकीर्तनाचार्य (अन्नमाचार्य) के संकीर्तनों को दो रूपों में विभाजित किया गया है - अध्यात्म संकीर्तन और शृंगार संकीर्तन। इन संकीर्तनों में उन्होंने बालाजी (तिरुपति) की स्तुति की हैं। अन्नमाचार्य संकीर्तनों में अध्यात्म, वात्सल्य, संयोग एवं वियोग शृंगार के साथ-साथ लोरियाँ भी हैं और तीज-त्यौहार, ऋतु, शादी, वेश-भूषा, खान-पान आदि से संबंधित लोकगीत भी हैं। अन्नमैया के पदों में लोक प्रचलित शब्दावली तथा

व्यावहारिक शैली का प्रयोग अधिक पाया जाता है। बोलचाल की भाषा को अपनाने से अन्नमाचार्य की रचनाएँ मुहावरों व लोकोक्तियों के भंडार लगती हैं।

अन्नमाचार्य की कविता एवं गायन कला से प्रभावित होकर राजा नरसिंहराय ने अन्नमाचार्य को अपने यश का वर्णन करने का आदेश दिया। बचपन से लेकर अन्नमैया ने सिर्फ भगवान की स्तुति की थी अतः उन्होंने यह कहकर साफ इनकार कर दिया कि 'मुकुंद स्मर्ण को अर्पित मेरी जिह्वा तुम्हारा यश नहीं गा सकती।' क्रोधित राजा ने उनको कैद करने की आज्ञा दी लेकिन श्री वेंकटेश्वर की कृपा से वे इस विपत्ति से विमुक्त हुए। वे समाज-सुधारक की भाँति वे जाति-पाँति के विरोधी थे। उनके मतानुसार तो यह सब व्यर्थ है -

विजातु लन्नियु वृथा-वृथा
अजामिलादुल कदयि जाति (अ.सं.गा.15)

क्योंकि हम सब एक ही धरती पर जीते हैं और सबका मालिक एक है। मनुष्य़ अपने स्वार्थ साधने के लिए जाति की दीवार खड़ा कर दिया है।

अन्नमैया तो कहते हैं कि -

मेंडैन ब्राह्मणुडु मेट्टुं भूमि ओकटे
चंडालुडु उन्डेटि सरि भूमि ओकटे

(ब्राह्मण भी इसी धरती पर अपना कदम रखता है और चांडाल भी उसीके समान ही इसी धरती पर अपना कदम रखता है। अर्थात ब्राह्मण और चांडाल दोनों का निवास (आधार) एक ही है) तो फिर इस जाति भेद का क्या मतलब है?

जनकवि वेमना का जन्म रेड्डी वंश में हुआ था। उन्हें प्रायः योगी या संत के रूप में याद किया जाता है लेकिन वास्तव में वे महाकवि हैं, जनकवि हैं। वेमना के पदों में तत्कालीन समाज को भली-भाँति देखा जा सकता है। उनके पद लोकभाषा की धरोहर हैं। वेमना के उद्गारों में लोकजीवन, भक्ति, ज्ञान, नीति, सदाचार आदि मुखरित हैं। वेमना आशु कवि हैं। उनके पदों में चार पंक्तियाँ होती हैं। प्रथम तीन पंक्तियों में कोई-न-कोई सूक्ति अवश्य होती है और अंतिम पंक्ति में आत्मसंबोधन निहित है। यह आत्मसंबोधन एक तरह से वेमना के पदों की विशेषता है। उदाहरण के लिए देखें -

पसुल वन्ने वेरु पालोक वर्णमौ
बुष्प जाति वेरु पूज योकटे
दर्शनंबु वेरु दैवंबु योक्कटे
विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा।

(पशुओं के वर्ण है अलग अलग, दूध का वर्ण एक है/ पुष्प-जाति है अलग अलग, पूजा तो एक है/ रूप है अलग अलग, देव तो एक ही है/ विश्वदाभिराम सुनरे वेमा)।

वेमना के हर पद में लोक है। लोकभाषा ही उनकी शक्ति है। वे अपनी मिट्टी से गहरे जुड़े हुए रचनाकार हैं। वे मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, जात-पांत, ऊँच-नीच, अस्पृश्यता आदि का खंडन करते हैं तथा उनकी दृष्टि में मानवता ही सबसे श्रेष्ठ जीवनमूल्य है।

काव्य काल के प्रथम युग की कुछ विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है-

1. इस युग में तेलुगु ग्रंथों के साथ-साथ संस्कृत में भी उत्तम ग्रंथों की रचना हुई।
2. इस युग में कविता मिश्र काव्य, विपुल काव्य और प्रबंध काव्य के रूप में तीन धाराओं में विभक्त हुई।
3. नाटकों का तेलुगु अनुवाद इसी युग में प्रारंभ हुआ।
4. वीर काव्यों की रचना हुई। तेलुगु साहित्य में श्रीनाथ कृत पलनाटि चरित्र (पलनाडु का इतिहास) जैसे काव्यों को प्रमुख स्थान मिला।
5. काव्य में आध्यात्मिक पक्ष के साथ-साथ लौकिक पक्ष भी उभरने लगा। परिणामस्वरूप वेमना जैसे संत कवियों का आविर्भाव हुआ।
6. शतक कविता का विकास इसी युग में हुआ।
7. इस युग में मौलिक काव्यों की भी रचना हुई। अन्नमाचार्य ने पद-साहित्य को जन्म दिया। अतः उन्हें पदकविता पितामह कहा जाता है।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु साहित्य में पदकविता पितामह कहकर किसको संबोधित किया जाता है?
- वेमना किसका विरोध करते हैं?
- इस युग की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

**काव्य काल का द्वितीय उत्थान : प्रबंध युग अथवा रायल युग**

काव्य काल का द्वितीय उत्थान तेलुगु साहित्य का स्वर्ण युग है। कृष्णदेव राय के शासन काल के आधार पर इस काल को रायल युग कहा जाता है। इस काल में काव्य-कला का चरम विकास हुआ। आंध्रभोज नाम से प्रसिद्ध कृष्णदेव राय स्वयं कवि थे। उन्होंने 'विष्णु-चित्तीयमु' अथवा 'आमुक्तमाल्यदा' नामक प्रबंध काव्य की रचना की। उन्होंने दरबार में तेलुगु, संस्कृत, तमिल और कन्नड भाषाओं के कवियों को आश्रय देने के साथ-साथ संगीत, नृत्य तथा अन्य ललित कलाओं में पारंगत विद्वानों को भी आश्रय दिया। इस काल में कवियों ने अनुवाद करना छोड़कर मौलिक रचनाओं का सूत्रपात किया। प्रबंध साहित्य में उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का समावेश होने लगा जिससे कवियों की प्रतिभा का पता चला।

कृष्णदेव राय के दरबार की शोभा थे 'अष्ट दिग्गज' - अल्लसानि पेद्दन्ना, नंदि तिम्मना, मादय्यगारि मल्लना, धूर्जटी, अय्यलराजु रामभद्रुडु, पिंगलि सूरन्ना, भट्टुमूर्ति (राम राजा भूषणा) और तेनाली रामककृष्णा। इनमें अल्लसानि पेद्दन्ना को 'आंध्र कविता पितामह' कहा

जाता है। उन्होंने 'मनु चरित्र', 'गुरु स्तुति' तथा 'हरिकथा सारमु' (हरिकथा सार) नामक तीन कृतियों की रचना की पर आज केवल 'मनु चरित्र' ही उपलब्ध है। नंदि तिम्मना ने 'पारिजातापहरणमु' (पारिजात का अपहरण) नाम से शृंगार रस प्रधान प्रबंध काव्य की रचना की। मादय्यगारि मल्लना ने 'राजशेखर चरित्रमु' (राजशेखर चरित्र), धूर्जटी ने 'कालहस्ती महत्यमु' (कालहस्ती का महत्व), अय्यलराजु रामभद्रुडु ने 'रामाभ्युदयमु'(रामाभ्युदय) नामक प्रबंध काव्यों की रचना की। पिंगलि सूरन्ना ने 'राघव पांडवीयमु' (राघव पांडवीय) नामक श्लेष परक प्रबंध काव्य में रामायण और महाभारत की कथाओं को संजोया है। भट्टुमूर्ति ने 'काव्यालंकारा संग्रहमु'(काव्यालंका संग्रह), 'वसु चरित्रमु' (वसु चरित्र) तथा 'हरिश्चंद्र नलोपाख्यानमु' (हरिश्चंद्र नलोपाख्यान) की रचना की। . इनमें से अंतिम प्रबंध काव्य में राजा हरिश्चंद्र तथा नल-दमयंती की कथाएँ हैं। 'विकट कवि' के नाम से प्रख्यात तेनाली रामकृष्णा ने 'उद्भटाराध्य चरित्रमु' (उद्भटाराध्य चरित्र) की रचना की जो शैव धर्म पर आधारित है। बाद में उन्होंने वैष्णव धर्म पर आधारित प्रबंध काव्य 'पांडुरंग महात्म्यमु' (पांडुरंग महात्म्य) और 'घटिकाचल महात्म्यमु'(घटिकाचल महात्म्य) की रचना की। कृष्णदेव राय के युग में प्रबंध काव्यों की बहुलता होने कारण उसे 'प्रबंध युग' भी कहा जाता है।

प्रसिद्ध कवयित्री मोल्ला का जन्म कुम्हार परिवार में हुआ। उन्होंने सरल और लोकरंजक भाषा में रामायण की रचना की जो 'मोल्ला रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। ये भी कृष्णदेव राय के समकालीन थीं।

काव्य-काल के द्वितीय उत्थान की साहित्यिक विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है-

1. तेलुगु साहित्य में इस युग को स्वर्ण युग कहा जाता है।
2. इस युग में प्रबंध काव्य का चरम विकास हुआ। अंतिम समय में प्रबंध काव्य के ह्रास के लक्षण भी दिखाई देने लगे।
3. इस युग में एक से बढ़कर एक प्रौढ़ महाकाव्य रचे गए।
4. द्वि-अर्थी काव्य और त्रि-अर्थी काव्य इस युग का देन है।
5. इस युग में शतक साहित्य चरम पर था। धूर्जटी कृत 'कालहस्तीश्वर शतकम्' इसका उत्तम उदाहरण है।
6. ठेठ तेलुगु भाषा में काव्य रचना का सूत्रपात हुआ।
7. इसी काल में मलिक इब्राहिम जैसे मुस्लिम नवाब तेलुगु में काव्य रचना की दिशा में प्रवृत्त हुए।
8. इस युग में कल्पना प्रधान 'कलापूर्णोदय' (कृष्णदेव राय) जैसे काव्य रचे गए।
9. राज दरबारों में साहित्य, संगीत, नृत्य, शिल्प, अभिनय, चित्र आदि ललित कलाओं को आश्रय मिला।

**बोध प्रश्न**

- काव्य काल के द्वितीय उत्थान को प्रबंध युग क्यों कहा जाता है?
- 'मोल्ला रामायण' के रचनाकार कौन हैं?
- इस युग की कुछ विशेषताओं को बताइए।

### 6.3.4 ह्रास काल अथवा उत्तर मध्यकाल

कृष्णदेव राय के बाद धीरे-धीरे स्थितियाँ बदलने लगीं। यह एक प्रकार से संक्रांति काल था। इस काल को संक्रांति काल अथवा ह्रास/ क्षीण काल भी कहा जाता है क्योंकि इस कालावधि में अपनी केंद्रीय सत्ता नष्ट होने से आंध्र प्रदेश छोटे-छोटे खंडों में बिखर गया। विलासिता प्रमुख तत्व बन गई। साहित्य में भी आदर्श और उदात्त के स्थान पर सामाजिक तथा राजनैतिक पतन का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देने लगा। लेकिन इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि इसी युग में गद्य साहित्य का सूत्रपात हुआ तथा पद्य साहित्य की भी अनुपम सर्जना सामने आई। गद्य साहित्य का आरंभिक काल होने के कारण इस काल में पौराणिक साहित्य को ही आधार बनाया गया। पद्य साहित्य में क्षेत्रय्या, त्यागराजु और तरिगोंडा वेंकमाम्बा आदि ने अपने पदों के माध्यम से साहित्य की वृद्धि की। इस काल में 'नौका चरित्र' और 'प्रहलाद विजय' नामक यक्षगानों की रचना भी हुई।

इस काल की विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है -

1. इस युग में विशाल साम्राज्य नहीं थे। आंध्र प्रदेश छोटे-छोटे खंडों में बिखर गया था।
2. उच्च आदर्शों का अभाव था। साहित्य में भी आदर्श और उदात्त के स्थान पर सामाजिक तथा राजनैतिक पतन दिखाई देने लगा।
3. भाषांतरीकरण का कार्य पुनः इस युग में प्रारंभ हुआ।
4. रीति ग्रंथों की रचना हुई। कोष, व्याकरण तथा अन्य शास्त्र ग्रंथों का भी प्रणयन हुआ।
5. गद्य साहित्य का आरंभ हुआ।
6. 'तिट्टु कवित्वम्' (निंदामक काव्य) की रचना इस युग में अधिक हुई। वेमुलवाडा भीमकवि ने इस कविता का प्रारंभ 12 वीं क्षति में किया था।
7. पद या गीत साहित्य शिखर पर था। इसका श्रेय क्षेत्रय्या, त्यागराजु और तरिगोंडा वेंकमाम्बा को जाता है।
8. इस युग में कवयित्रियों का सम्मान होने लगा। रंगराजम्मा जैसी कवयित्री का स्वर्णाभिषेक हुआ था। यह तेलुगु साहित्य के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना थी।
9. दक्षिण में स्थित तमिलनाडु के तंजाऊर, मदुरै, पुडुकोट्टै जैसे क्षेत्रों में तेलुगु साहित्य का विकास हुआ।

**बोध प्रश्न**

- उत्तर मध्यकाल को क्षीण काल क्यों कहा जाता है?
- इस युग की कुछ प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

## 6.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! आप अब तक के अध्ययन से यह जान ही चुके होंगे कि तेलुगु साहित्य की यात्रा सुदीर्घ थी। इस अध्ययन से आप जान ही चुके होंगे कि साहित्य किसी भी भाषा में पहले मौखिक साहित्य के रूप में प्रचलन में आता है और लिपि के आविष्कार के बाद लिखित साहित्य स्थायी रूप में परिवर्तित हो जाता है। तेलुगु लिपि का प्रादुर्भाव ईसा से 800 वर्ष पूर्व माना जाता है। अतः इससे पूर्व का साहित्य लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है। गुनग विजयादित्य के दो शिलालेखों तथा विजयवाडा के युद्धमल्ल के शिलालेख में इसका उल्लेख है। तेलुगु भाषा के आदि कवि नन्नैया को केंद्र में रखकर तेलुगु भाषा एवं साहित्य का काल विभाजन किया जाता है। अर्थात नन्नैया पूर्व युग अथवा आदिकाल, पुराणकाल अथवा पूर्व मध्यकाल, काव्य काल अथवा मध्यकाल, ह्रास काल अथवा उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल के रूप में विभाजित किया जाता है। इस इकाई में आपने तेलुगु साहित्य के इतिहास का अध्ययन मध्यकाल तक किया है। आगे आप आधुनिक काल का अध्ययन करेंगे।

## 6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. नन्नैया के पूर्व कवियों की रचनाएँ या तो नष्ट हो गई हैं या अज्ञात रह गई हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इस युग का नामकरण 'अज्ञात युग' किया।
2. नन्नैया से पूर्व ही लोकसाहित्य में कविता प्रचलित थी तथा वांचियार जैसे कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की थी।
3. पुराण काल को 'भाषांतरीकरण' (भाषांतर) युग भी कहा जाता है क्योंकि इस काल में संस्कृत के ग्रंथों का तेलुगु भाषा के अनुरूप रूपांतरण किया गया। इस युग से तेलुगु में लिपिबद्ध साहित्य प्राप्त होता है।
4. काव्य काल के प्रथम उत्थान अर्थात रेड्डी युग में तेलुगु साहित्य में प्रमुख रूप से शृंगार रस प्रधान प्रबंध काव्यों की रचना हुई। इस युग को श्रीनाथ युग भी कहा जाता है। श्रीनाथ कृत पलनाटि चरित्र (पलनाडु का इतिहास) जैसे वीरगाथा काव्यों को प्रमुख स्थान प्राप्त है।
5. काव्य काल के द्वितीय उत्थान अर्थात रायल युग को प्रबंध युग भी कहा जाता है। तेलुगु साहित्य का यह स्वर्ण युग है।
6. कृष्णदेव राय के बाद के उत्तर मध्यकाल काल को संक्रांति युग अथवा क्षीण युग कहा जाता है। इस कालावधि में अपनी केंद्रीय सत्ता नष्ट होने से आंध्र प्रदेश छोटे-छोटे खंडों में बिखर गया। विलासिता प्रमुख तत्व बन गई। साहित्य में भी आदर्श और उदात्त के स्थान पर सामाजिक तथा राजनैतिक पतन का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देने लगा।

## 6.6 शब्द संपदा

1. जानु तेनुगु = जन तेलुगु
2. पद साहित्य = गीति साहित्य
3. शतक साहित्य = सूक्ति साहित्य
4. हरिकथा = भगवान की स्तुति

## 6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

**(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. तेलुगु साहित्य के आदिकाल की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
2. तेलुगु साहित्य के पूर्व मध्यकाल की प्रवृत्तियों को रेखांकित कीजिए।
3. काव्य काल के प्रथम उत्थान की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. काव्य काल की द्वितीय उत्थान को तेलुगु साहित्य का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है?
5. रायल युग के बाद के समय को तेलुगु साहित्य के इतिहास में क्षीण अथवा ह्रास युग क्यों कहा जाता है?

**खंड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

1. तेलुगु भाषा के इतिहास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. तेलुगु साहित्य के काल विभाजन पर प्रकाश डालिए।
3. ह्रास युग की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. पदकविता पितामह अन्नमाचार्य की काव्यागत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. 'वेमना की दृष्टि में मानवता ही सबसे श्रेष्ठ जीवनमूल्य है।' इस उक्ति की पुष्टि कीजिए।
6. 'भास्कर रामायण' की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

**खंड (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए -**

1. 'शृंगार नैषध' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) तिकन्ना (आ) श्रीनाथ (इ) नन्नेचोड (ई) अन्नमाचार्य

2. 'आंध्र कविता पितामह' कौन हैं? ( )

(अ) अन्नमाचार्य (आ) पोतना (इ) केतना (ई) अल्लसानि पेद्दन्ना

3. इनमें से विकट कवि कौन हैं? ( )

(अ) पेदन्ना (आ) तेनाली रामकृष्ण (इ) धूर्जटी (ई) कृष्णदेव राय

4. 'पलनाटि चरित्र' के रचनाकार कौन हैं? ( )

(अ) श्रीनाथ (आ) नन्नैया (इ) मोल्ला (ई) तिम्मन्ना

**II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -**

1. तेलुगु साहित्य का विभाजन पहले-पहल ......... ने किया है।
2. नन्नेचोड ने अपनी कृति में ....... भाषा रूप का प्रयोग किया।
3. तेलुगु कवियों में ........ सूर्य है तो ....... चंद्रमा है।
4. वीरशैव मत का विश्वकोश भी ........ को कहा जाता है।
5. ........ को तेलुगु साहित्य के इतिहास में कविब्रह्मा कहा जाता है।
6. तेलुगु का पहला व्याकरण ग्रंथ .......... है।

III. सुमेल कीजिए -

| | |
|---|---|
| 1. वेमुलवाड़ा भीमकवि | (अ) अप्पकवीयमु |
| 2. अप्पकवि | (आ) पलनाटि चरित्र |
| 3. नन्नैया | (इ) कुमारसंभवम् |
| 4. नन्नेचोड | (ई) राघव पांडवीयमु |
| 5. श्रीनाथ | (उ) आंध्र महाभारतम् |

## 6.8 पठनीय पुस्तकें

1. आंध्र संस्कृति और साहित्य : रमेश चौधरी 'आरिगपूड़ी'
2. आंध्रप्रदेश दर्शनी : सं. वाइ. वी. कृष्णाराव
3. तेलुगु और उसका साहित्य : हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'
4. तेलुगु साहित्य - एक अंतर्यात्रा : गुर्रमकोंडा नीरजा
5. तेलुगु साहित्य - एक अवलोकन : गुर्रमकोंडा नीरजा
6. तेलुगु साहित्य - संदर्भ और समीक्षा : एस. टी. नरसिम्हाचारी
7. तेलुगु साहित्य का इतिहास : बालशौरि रेड्डी

## इकाई 7: तेलुगु साहित्य का इतिहास : आधुनिक काल

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मूल पाठ : तेलुगु साहित्य का इतिहास : आधुनिक काल

7.3.1 आधुनिकता और समकालीनता

7.3.2 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

7.3.3 भाव कविता

7.3.4 अभ्युदय कविता

7.3.5 दिगंबर कविता

7.3.6 विप्लव कविता

7.3.7 जानपद साहित्य (लोक साहित्य)

7.3.8 गद्य विधाएँ

7.3.9 विविध विमर्श

7.4 पाठ सार

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

7.6 शब्द संपदा

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

7.8 पठनीय पुस्तकें

### 7.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आपने अभी तक तेलुगु साहित्य के इतिहास का अध्ययन आदिकाल से उत्तरमध्यकाल तक किया है। इस इकाई में आप तेलुगु साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल का अध्ययन करेंगे। 1857 की क्रांति के परिणामस्वरूप आंध्र प्रदेश की सामाजिक, राजनैतिक गतिविधियों में अनेक परिवर्तन हुए। कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु, गुरजाड़ा अप्पाराव, गिडुगु राममूर्ति पंतुलु से लेकर वोल्गा, शाहजाना, इनाक जैसे आज के साहित्यकारों तक ने तेलुगु साहित्य की नवीन पद्य-गद्य विधाओं को समृद्ध करने में सशक्त हैं। उत्तर आधुनिक समय में हिंदी साहित्य में जिस तरह से स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक आदि विमर्श सामने आए उसी प्रकार तेलुगु

साहित्य में भी इन विमर्शों ने अपनी पैठ जमाया। आधुनिक कालीन साहित्य अपने आप में विस्तृत है। इस इकाई आप तेलुगु साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

## 7.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- तेलुगु साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- आधुनिकता और समकालीनता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य में निहित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा से परिचित हो सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य के क्षेत्र में उभरे विभिन्न काव्यांदोलन जैसे भाव कविता, अभ्युदय कविता, दिगंबर कविता, विप्लव कविता, जनपद (लोक) साहित्य के बारे में जान सकेंगे।
- तेलुगु साहित्य की गद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक/ मुस्लिम विमर्श के बारे में अवगत हो सकेंगे।

## 7.3 मूल पाठ : तेलुगु साहित्य का इतिहास : आधुनिक काल

प्रिय छात्रो! आधुनिक काल तक आते-आते संसार में पुनर्जागरण का लहर दौड़ पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप समाज के साथ-साथ साहित्य में भी अनेक परिवर्तन आए। आधुनिकता के द्वारा पूरी दुनिया में वैज्ञानिक सोच को स्थान प्राप्त हुआ। औद्योगिक सभ्यता का विकास हुआ। व्यक्ति की प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता, समता एवं बंधुता के नारे भारत भर में भी गूँजने लगे। आधुनिकता की कई विसंगतियाँ सामने आने लगीं। तेलुगु साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्य में अनेक प्रवृत्तियों का समावेश होने लगा। उनका अध्ययन करने पूर्व आधुनिकता और समकालीनता पर संक्षिप्त रूप से चर्चा करेंगे।

### 7.3.1 आधुनिकता और समकालीनता

सामान्य रूप से यदि कहें तो आधुनिकता का अर्थ है नवीनता, जो वर्तमान में अर्थात अपने समय उपस्थित है। तेलुगु में सामान्य रूप से आधुनिक शब्द समय सापेक्ष है। आधुनिकता एवं समकालीनता में सूक्ष्म अर्थ भेद है जिसे जान लेना अत्यंत आवश्यक है। समकालीन वह है हो हमारे समय में घटित हो रहा है। यह वस्तुतः समय और इतिहास से जुड़ी हुई है। जो आधुनिक है, वह समकालीन हो सकता है; लेकिन जो कुछ समकालीन है वह आधुनिक हो यह जरूरी नहीं है। ध्यान देने की बात है कि सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में आधुनिक शब्द का प्रयोग वर्तमान समय के संदर्भ में हुआ था। इसका प्रयोग वस्तुतः रूढ़िग्रस्त, पुराने एवं अप्रचलित विचारों के खिलाफ हुआ था। आधुनिक शब्द को अंग्रेजी के 'mordern' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। यूरोप में पुरानी मान्यताएँ और आधुनिक विचारों के बीच सांस्कृतिक संघर्ष की स्थिति पैदा हुई।

पुरातन पंथी के लोग शास्त्रीयता के पोषक थे, जबकि आधुनिक विचारों वाले बुद्धिवाद और विज्ञान के पोषक थे।

प्रिय छात्रो! आखिर आधुनिक किसे कहेंगे? जी हाँ, निश्चय ही पुराने मूल्यों पड़ताल करना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें नकारना तथा आवश्यकतानुसार नए मूल्यों को खोजना और उन्हें अपनाना आधुनिकता है। परंपरा और आधुनिकता के बीच हमेशा द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा होती है। कहा जाता है कि विवेक युक्त होना आधुनिकता की पहचान है। साहित्य में आधुनिकता हमेशा दो व्यवस्थाओं के टकराव से उभरती है। यह संघर्ष कई क्षेत्रों में और कई रूपों में हो सकता है। यह व्यवस्थागत टकराव ही साहित्यिक अभिव्यक्ति में अनेक परिवर्तन लाता है। कमोबेश यह आधुनिकता किसी भी काल के साहित्य में विद्यमान हो सकता है। कहा जा सकता है कि किसी व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन के स्तर पर एक निश्चित रूप में, उन परिवर्तनों को गति देना आधुनिकता है। आधुनिकतावाद एक सांस्कृतिक, सामाजिक और दार्शनिक आंदोलन है। इसने अनेक रूढ़िग्रसत पारंपरिक रिवाजों पर प्रश्न चिह्न लगाया।

हिंदी के आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार 'आधुनिकता वैज्ञानिकता के सहारे आई है। वह हमें अधिक वस्तुपरक बनाती है। वस्तु को आत्मगत दृष्टि से नहीं बल्कि, तद्गत वस्तुगत दृष्टि से देखना सत्य को देख पाने की शर्त है।' आचार्य हजारी प्रसाद ने अपने निबंध 'परंपरा और आधुनिकता' में आधुनिकता के तीन लक्षण बताए हैं जो इस प्रकार हैं - 'एक है ऐतिहासिक दृष्टि, दूसरा यह कि इस दुनिया में मनुष्य को सब प्रकार के भय और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह, और तीसरा यह कि व्यष्टि मानव के स्थान पर समस्त मानव या संपूर्ण मानव समाज की कल्याण कामना।' कहने का आशय है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक दृष्टि, इहलौकिकता और मुक्ति की सामूहिक चेतना को आधुनिकता का मुख्य लक्षण माना है। इसी प्रकार तेलुगु के साहित्य आलोचक यह मानते हैं कि आधुनिकता समय को व्यक्त करने वाला शब्द न होकर, भावनाओं को व्यक्त करने वाला शब्द है। बुद्धिजीवियों ने उन निराधार परंपराओं का खंडन किया जो समाज के लिए घातक हैं तथा उनके खिलाफ आवाज भी उठाई। परिणाम स्वरूप समाज के अनेक क्षेत्रों में परिवर्तन दिखाई देने लगा।

तेलुगु में आधुनिक साहित्य का आरंभ लगभग 1875 से माना जाता है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह तेलुगु में भी आधुनिक युग नवजागरण से आरंभ होता है। नवजागरण के प्रभाव से अनेक समाज सुधारकों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक बदलाव आए। स्वतंत्रता संग्राम से प्राप्त राष्ट्रीय चेतना, आश्रयदाताओं से मुक्त साहित्यकार, मुद्रण कला का विकास, समाज-सुधार आंदोलन, पाश्चात्य देशों से आए हुए अनेक वाद आदि ने तेलुगु साहित्य को बल दिया। आधुनिक काल तक आते-आते साहित्य के केंद्र में मनुष्य आ गया। एक ऐसा मनुष्य जो सुख-दुख से घिरा हुआ है। परंपरा से आगे के विचार आधुनिक है। आज के समय अर्थात वर्तमान में जो स्थित है वह समकालीन है। समकालीन साहित्य आधुनिक हो सकता है। यदि सरल शब्दों में कहें तो जिस साहित्य में भक्ति प्रधान है वह

प्राचीन साहित्य है, जिसमें मनुष्य प्रधान है वह आधुनिक है और ये दोनों ही समकालीन साहित्य है।

**बोध प्रश्न**

- आधुनिकता से क्या अभिप्राय है?
- समकालीनता और आधुनिकता में क्या अंतर है?
- परंपरा और आधुनिकता के बीच कैसी स्थिति पैदा होती है?
- तेलुगु साहित्य में आधुनिक काल का आरंभ कब हुआ?

### 7.3.2 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

प्रिय छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि 19 वीं शती तक आते-आते कविता के क्षेत्र में भी बदलाव आने लगा। अनेक युवा कवियों ने तेलुगु कविता को शृंगारिकता से निकालकर समाज से जोड़ने का प्रयास किया। उनके प्रयासों से नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप आधुनिक तेलुगु कविता सामने आई। 1915 से 1935 के बीच जो साहित्य रचा गया उसमें कवि के व्यक्तिगत सुख-दुख और अनुभव प्रकट होने लगे। 19 वीं शती के उत्तरार्ध में भारत में अनेक समाज-सुधारकों ने ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज आदि के माध्यम से देश को प्रगति की ओर ले जाने की प्रेरणा दी तो उसी समय तेलुगु में कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु (1848-1919) समाज सुधार के कार्य में संलग्न थे। उन्हें आधुनिक तेलुगु साहित्य के 'गद्य ब्रह्मा' कहा जाता है। उनके युग में संपूर्ण देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ रही थी। "सामंती ढाँचा टूट चुका था। देश में संवेदनशील मध्यवर्ग तैयार हो गया था जो व्यापक राष्ट्रीय और सामाजिक हितों की दृष्टि से सोचने लगा था। इस वर्ग ने यह अनुभव किया कि सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। जिस तरह हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु हरिश्चंद्र इस प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि हैं उसी तरह कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु तेलुगु साहित्य के इतिहास में प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने समाज सुधार के कार्यों, भाषणों और साहित्य के माध्यम से जागरण का संदेश दिया।" (गुर्रमकोंडा नीरजा, तेलुगु साहित्य : एक अंतर्यात्रा, पृ. सं. 65)। विवेकवर्धनी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, वेश्या वृत्ति, जात-पांत, छुआछूत, बाल विवाह, सांप्रदायिकता और सती प्रथा का उन्मूलन कर का प्रयास किया। उनकी कविता में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संगठित भारत की राष्ट्रीय भावना का स्वर ध्वनित होता है। 1895 में उन्होंने 'सरस्वती नारद विलापमु' (सरस्वती नारद संवाद) में वाक् देवी सरस्वती और देव ऋषि नारद के बीच काल्पनिक संवाद का सृजन लघुकाव्य के रूप में किया। इसमें उन्होंने दोनों के बीच संवादों के माध्यम से झूठे आडंबर, कृत्रिम अलंकार आदि पर प्रहार किया। उन्होंने भारतेंदु की भाँति व्यावहारिक भाषा प्रयोग पर बाल दिया था। कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु को आधुनिक तेलुगु साहित्य का युग प्रवर्तक माना जाता है।

कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु के बाद कालजयी नाटक 'कन्याशुल्कम्' (कन्याशुल्क) के रचनाकार गुरजाडा वेंकट अप्पाराव को युग प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त कन्याशुल्क, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति, सती प्रथा, अनमेल विवाह और वृद्ध विवाह जैसी सामाजिक विद्रूपताओं के उन्मूलन हेतु अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने कहा कि स्वदेश से प्रेम करना चाहिए और अच्छाई को बढ़ाना चाहिए। व्यर्थ बातों को छोड़कर लक्ष्य साधन पर ध्यान देना चाहिए। रायप्रोलु सुब्बाराव ने कहा कि जहाँ भी जाए, जिस देश में भी भ्रमण करें, मातृभूमि पर आँच नहीं आने देना चाहिए। इनके अतिरिक्त श्रीपाद कृष्णमूर्ति, वासुदेव शास्त्री, वड्डादि सुब्बाराव जयंती रामय्या, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि कवियों ने तेलुगु में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं का सृजन कर देश में नवजागरण को प्रतिस्थापित किया।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

### 7.3.3 भाव कविता

प्रिय छात्रो! ध्यान देने की बात है कि तेलुगु साहित्य में भाव कविता एक सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरा। पाश्चात्य रोमांटिक कविता से प्रभावित होकर जिस प्रकार हिंदी साहित्य में इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध छायावाद का उदय हुआ, उसी प्रकार तेलुगु साहित्य में भाव कविता का उदय हुआ। "भाव कविता आंदोलन रोमांटिक प्रवृत्ति, रूढ़ प्राचीन काव्य परंपरा की प्रतिक्रिया तथा अतृप्त काम के आदर्शीकरण - इन तीनों का समाविष्ट रूप है।" (डॉ. एस. टी. नरसम्हाचारी, तेलुगु साहित्य : संदर्भ और समीक्षा, पृ. 385)। 1910 के बाद तेलुगु कविता में नए प्रयोग हुए। तेलुगु साहित्य के प्रसिद्ध कवि-आलोचक ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित सिनारे (सी. नारायण रेड्डी) ने माना कि वस्तु और भाव के स्तर पर रचनाओं में हुए परिवर्तनों के कारण आधुनिक कविता का जन्म हुआ। आधुनिक कविता के प्रथम आंदोलन को तेलुगु साहित्यकारों ने भाव कविता की संज्ञा दी। तेलुगु साहित्य में रोमांटिक भाव कविता को परंपरावादी कविता के विरुद्ध विद्रोह नहीं, बल्कि इसे उसकी प्रतिक्रिया माना जाता है। क्योंकि इन कवियों ने भाव निरूपण, अप्रस्तुत विधान और छंदोबद्धता को परंपरा से स्वीकार करके अपनी नई अनुभूति के अनुसार नवीन रूप प्रदान किया।

भाव कविता को एक-दो समालोचक उसकी विशेषताओं को दृष्टि में रखकर इसे 'काल्पनिक कविता' कहा तो कुछ लोगों ने शैली की दृष्टि से 'भाव कविता' की संज्ञा से अभिहित किया। इस काव्य शैली के नामकरण के संबंध में कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण ने जो तर्क प्रस्तुत किया वह उल्लेखनीय है - "भाव कविता में प्रमुख रूप में भाव का विशेष महत्व होता है। काव्य वस्तुतः रस प्रधान है। काव्य के प्रत्येक छंद में भाव पाया जा सकता है। परंतु काव्य समष्टि रूप में रसोन्मुख ही होकर रहता है। खंड काव्य में भी रस व्यंजक हो सकते हैं। परंतु खंड काव्य प्रधानतः एक भाव पर आश्रित रहता है। अतः इसे भाव कविता कह सकते हैं।"

कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु की रचना 'सरस्वती नारद विलापम्' (सरस्वती नारद विलाप), तिरुपति वेंकट कविद्वय की 'पाणिग्रहीता' तथा श्रवणानंदमु', कट्टमंची रामलिंगा रेड्डी की 'मुसलम्म मरणमू' (वृद्ध की मृत्यु) आदि में आधुनिक कविता के लक्षण द्रष्टव्य हैं। लेकिन इन्हें भाव कविता के अंतर्गत नहीं गिन अजय सकता है। रायप्रोलु सुब्बाराव की ललिता (1909) पूर्ण रूप से भाव कविता के लक्षणों से ओत-प्रोत है।

तेलुगु साहित्य के इतिहास में 1909-1940 तक के समय को भाव कविता आंदोलन का समय माना जाता है। यह पहले भी कहा जा चुका है कि तेलुगु की भाव कविता अंग्रेजी रोमांटिक कविता से प्रभावित है। रायप्रोलु सुब्बाराव, देवुलपल्ली कृष्णशास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण, दुव्वूरी रामीरेड्डी, नायनी सुब्बाराव, नंडूरी सुब्बाराव, बसव राजू अप्पाराव, अडवी बापिराजू, द्विवेदुल सत्यनारायण शास्त्री आदि प्रमुख भाव कवि हैं। विलियम् वड्र्सवर्थ की तरह देवुलपल्ली कृष्णशास्त्री ने भी कहा कि जब कोई घटना, वस्तु या दृश्य किसी व्यक्ति के मानस को उद्वेलित करता हो, तो उस उद्वेलन से जो प्रस्फुटित होता है, वह कविता है। भाव कविता अंतर्मुखी कविता है जो कवि के अंदर से भावनाओं को प्रतीकांतर रूप में प्रकट करने में सक्षम होती है। इस प्रकार की कविता में वस्तु गौण है और भाव प्रमुख तत्व बन जाता है।

भाव कविता में प्रमुख रूप से छह विशेषताएँ हैं - प्रणय, प्रकृति चित्रण, देशभक्ति, समाज-सुधार, भाव और स्मृति। इनके अतिरिक्त मानववाद, स्तुति, बालगीत आदि भी पाए जाते हैं। रायप्रोलु सुब्बाराव को तेलुगु भाव कविता आंदोलन के अग्रदूत माना जाता है। 1913 में रचित खंड काव्य 'तृणकंकणमु' (तृणकंकण) शीर्षक कविता से कविता के क्षेत्र में एक नूतन अध्याय शुरू हुआ। इस खंड काव्य में उन्होंने एक कथ्य यह दर्शाते हुए आगे बढ़ाया कि प्रेमी-प्रेमिका जब विवाह बंधन में नहीं बंध सकते, तो वे आजीवन दोस्त बनकर रहने का फैसला करते हैं। तेलुगु कविता के क्षेत्र में यह एक प्रयोग है जो पाश्चात्य से प्रभावित है। उनके अनुसार भाव कविता की आत्मा है प्रकृति। वह प्रणयिनी का रूप धरण कर सामने आती है। रायपरोलु सुब्बाराव ने 'यात्रा' नामक कविता में संध्या-सुंदरी का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है - "कावि कोंगुलु लागि कोनि तना/ कनक भांडमु तोड़ बिर बिर/ सागिपोयडु संदे चिन्नदि/ संदिव्वंडिप्पुडु त्रोवलन" (अर्थात लाल किरण रूपी साड़ी पहनकर स्वर्ण कलश हाथ में लेकर संध्या-सुंदरी जा रही है। उसे रास्ता दे ही दो)।

कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण ने एक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं का सृजन किया है तो दूसरी ओर शृंगारपरक लोकगीतों का भी सृजन किया है। ये गीत आज भी तेलुगु जनमानस के प्रिय गीत हैं। विशेष रूप से 'किन्नेरसानि पाटलु' (किन्नेरसानि के गीत)। "वस्तुतः 'किन्नेरा' आंध्र राष्ट्र में बहने वाली एक नदी है। किन्नेरसानि नदी प्रवाह के पास भद्राचलम से 25 किमी की दूरी पर 'किन्नेरसानि वन्यजीव अभयारण्य' है। यह प्रांत पर्यटकों को आकर्षित करती है। यह नदी गोदावरी में जाकर विलीन हो जाती है। इसकी प्राकृतिक शोभा के साथ एक काल्पनिक कथा जोड़कर विश्वनाथ सत्यनारायण ने इन गीतों का सृजन किया। 'किन्नेरसानि पाटलु' में उन्होंने नदी का सुंदर स्त्री के रूप में मानवीकरण किया और उसके जन्म, उसकी चाल, गीत-

संगीत, उसका दुःख, गोदावरी संगम, उसके वैभव आदि का मनोरम चित्र उकेरा है। उसके साथ एक काल्पनिक कथा जोड़ दी। नई नवेली दुल्हन बन किन्नेरा ससुराल जाती है और पग-पग पर सास की अवहेलना झेलती रहती है। अपने आत्मसम्मान को मारकर वह ससुराल में नहीं रह पाती और अंततः ससुराल छोड़कर चल पड़ती। पति मनाने की कोशिश करता है लेकिन उसका क्रोध शांत नहीं होता। जब उसका हृदय पिघल जाता है तो वह नदी बनकर झरने लगती है - करिगिंदि करिगिंदि/ करिगिंदि करिगिंदि/ करिगिंदि किन्नेरसानि वरदल्ले पारिंदि/ तरुणि किन्नेरसानि तरकल्लु कट्टिंदि/ पड़ति किन्नेरसानि परुगुल्लु पेट्टिंदि [पिघल पिघल कर वह बाढ़ की तरह प्रवाहित होने लगी। तरुणी किन्नेरसानि लहरों के साथ उमड़ने लगी। किन्नेरसानि जोर से दौड़ने लगी।] कवि ने सादृश्य विधान के माध्यम से प्राकृतिक और मानवीय सौंदर्य का चित्रण किया है।" (गुर्रमकोंडा नीरजा, तेलुगु साहित्य : एक अंतर्यात्रा, पृ. सं. 86)।

भाव कविता के संबंध में विश्वनाथ सत्यनारायण की यह उक्ति उल्लेखनीय है - "कवि की एक अस्पष्ट तीव्र अभिलाषा के अंकुर को, एक अंतर्निहित वेदना को, एक छोटी-सी कविता में स्पंदित एवं उच्छवासित करना भाव कविता है।" (एस. टी. नरसिम्हाचारी, तेलुगु साहित्य: संदर्भ और समीक्षा, पृ.सं.434)। भाव कविता प्रमुख रूप से नायिका केंद्रित कविता है।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु भाव कविता आंदोलन के अग्रदूत कौन हैं?
- भाव कविता की विशेषताएँ क्या हैं?
- विद्वान किस दृष्टि इस कविता को काल्पनिक कविता कहा है?

### 7.3.4 अभ्युदय कविता

प्रिय छात्रो! अभ्युदय कविता का आशय प्रगतिशील कविता से है। इस काल 1935-1955 माना जाता है। ध्यान देने की बात है कि 1935 में मार्क्सवाद से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने 'अभ्युदय रचयितल संघम्' (प्रगतिशील लेखक संघ) की स्थापना की थी। इसका प्रमुख लक्ष्य था पूंजीवादी व्यवस्था, साम्राज्यवाद आदि का विरोध करना। बाद में यह संघ जर्मनी के फासिस्ट प्रवृत्ति का भी खंडन करने लगा। कहा जा सकता है कि जिस तरह हिंदी में छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ उसी तरह भाव कविता की प्रतिक्रिया में अभ्युदय कविता का प्रादुर्भाव हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने से पहले से ही देश में दरिद्रता और बेकारी चारों ओर फैली हुईं थी। मध्यवर्ग पूरी तरह से पिस चुका था। मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण सारा जनता में जागृति पैदा हुई। कहना न होगा द्वितीय विश्व युद्ध और बंगाल का अकाल देश को निगलने वाली भीषण घटनाएँ थीं। युद्ध के दबाव में जनता और भी आक्रांत हो रही थी। जागती हुई उग्र जन-चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद और पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिस्ट सिद्धांतों से उभरते हुए विश्वव्यापी प्रभाव के कारण भारत में सन 1935 के आस-पास साम्यवादी आंदोलन उभरने लगा था। 1935 में एम. फ़ॉस्टर की अध्यक्षता में 'प्रोग्रेसिव

राइटर्स एसोसिएशन' नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन संपन्न हुआ। 1936 में प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'भारतीय प्रगतिशील संघ' की स्थापना हुई। तेलुगु में भी 'अरसम' (अभ्युदय रचयितल संघम्, प्रगतिशील लेखक संघ), 'नक्सलवादी आंदोलन (गोरिल्ला आंदोलन), 'पौरहक्कुल संघम्' (नागरिक अधिकार संघ) आदि की स्थापना हुई।

हिंदी में प्रगतिवादी आंदोलन के अग्रदूत के रूप में अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है तो तेलुगु साहित्य में श्रीश्री (श्रीरंगम श्रीनिवास राव) को अभ्युदय कविता के प्रवर्तक माना जाता है। श्रीश्री ने 'महाप्रस्थानम्' के माध्यम से तेलुगु कविता क्षेत्र में एक नई दिशा का प्रवर्तन किया। श्रीश्री भगत सिंह और उनके दो साथियों (राजगुरु और सुखदेव) को मौत की सज़ा सुनाए जाने पर विचलित हुए। उन्होंने क्रांतिकारियों के साथ अपनी एकजुटता व्यक्त की। इसलिए उन्होंने 'एक और, एक और, एक और दुनिया' का आह्वान किया। कवि का 'एक और दुनिया' का आह्वान क्रांति का संकेत देता है जो आंध्र प्रदेश में चल रहे सामाजिक-राजनैतिक और आर्थिक कारकों का परिणाम है। इस कविता आंदोलन के अन्य प्रमुख कवि हैं श्रीराम, नारायण बाबू, दाशर्थी, सोमसुंदर, आरुद्रा, अनिसेट्टी, पट्टाभी, बैरागी, कुंदुरती आँजनेयुलु, गुंटूर शेषेंद्र शर्मा आदि।

अभ्युदय कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं भौतिकवादी दृष्टिकोण, शोषण का खंडन, श्रमिक एकता और श्रम की महत्ता क्रांति का चित्रण, मानवतावादी दृष्टिकोण, भाग्यवाद और ईश्वर का विरोध, अंधविश्वासों का खंडन, वर्गहीन समाज की स्थापना आदि। तेलुगु कविता के क्षेत्र में श्रीश्री नई भावभूमि, नई संवेदना, नई काव्य रीति को लेकर आए। उन्होंने यह साबित किया कि कविता के लिए कोई भी वस्तु वर्जित नहीं है - "कुक्क पिल्ला, अग्गिपुल्ला/ हीनंगा चूड़कू देन्नी!/ कवितामयमेनोय अन्नी" (कुत्ते का पिल्ला, दियासलाई की तीली, साबुन की टिकिया/ हीनता की दृष्टि से न देखना किसी को भी!/ कवितामय हैं ये सब)। उनके मतानुसार मानव सब कुछ है। उनकी कविता का केंद्रबिंदु है मनुष्य। उन्होंने यह घोषित किया था - मनुष्य ही मेरा संदेश है, मानव ही मेरा संगीत)।

तत्कालीन समाज दो वर्गों में बँट गया था - सर्वहारा और बुर्जुआ। दोनों के बीच संघर्ष निरंतर चलता आ रहा था। सोमसुंदर कहते हैं - "रेंडु प्रपंचाल मध्य/ रेंडु स्वभावाल मध्य/ रेंडु वर्गाल मध्य/ सागुतुन्ना संघर्षण" (दो प्रपंचों के बीच/ दो स्वभावाओं के बीच/ दो वर्गों के बीच/ हो रहे संघर्ष)। दाशर्थी कहते हैं "अनादिगा सागुतुंदी/ अनंत संग्रामम्/ अनाथुडिकी आगर्भ सीमंतुडिकी मध्य" (अनादि से गरीब और अमीर के बीच चल है संघर्ष)। इस शोषित वर्ग को जगाने के लिए श्रीश्री कहते हैं - "मरो प्रपंचम/ मरो प्रपंचम/ मरो प्रपंचम पिलिचिंदी/ पदंडी मुन्दुकु/ पदंडी त्रोसुकु/ पोदाम पोदाम पै पै कि" (और जगत् ने और जगत् ने/ और जगत् ने दी आवाज़/ बढ़े चलो रे बढ़े चलो रे/ बढ़े चलो रे बढ़-बढ़ के!)। अभ्युदय कवि शोषण रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे। सामाजिक विषमता को उजागर करते हुए कहते हैं कि बड़ी मछली छोटी मछली को पकड़कर खा रही है सदियों से, लेकिन छोटी मछलियाँ दस मिल जाएँ तो बड़ी मछली का काम समाप्त हो जाता है।

आरुद्रा 'अभ्युदय रचयितल संघम्' (अरसम् - प्रगतिशील लेखक संघ) के व्यवस्थापकों में एक हैं। उन्होंने तेलंगाना निज़ाम के निरंकुश शासन पर कुठाराघात करते हुए लिखा है - 'ब्रेन लो स्टनगन्ला/ चेट्लु चिट्टेलुकलु,/ चेरभड्डु आडवाल्लु,/ चेद पुरुगुलु/ मदमेक्किन सोल्जरलु।' (त्वमेवाहम्)। इस प्रकार कवियों ने अपनी बेबाक विचारों को अभिव्यक्त करने से पीछे नहीं रहे।

**बोध प्रश्न**

- अभ्युदय कविता के अग्रदूत कौन हैं?
- अभ्युदय कविता की विशेषताएँ बताइए।

### 7.3.5 दिगंबर कविता

आंध्र प्रदेश में प्रगतिशील लेखक ठीक वही कर रहे थे जो श्रीश्री चाहते थे कि लेखक करें। इन कवियों ने जनता को चेताने के लिए आगे आए और उन्हें यथास्थिति पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित किया। गुंडागर्दी और जमींदारी जैसे शोषणकारी सिद्धांतों ने लोगों को अमानवीय बना दिया और उन्हें पीढ़ियों तक अपनी ज़मीन से अलग कर दिया। लेकिन लोग अब इसके प्रति अंधे नहीं थे। उन्होंने अपनी असहमति व्यक्त की। इस पहलू के बावजूद, यह कहा जा सकता है कि तेलुगु कविता में तीक्ष्णता और दिशा दोनों की कमी थी। इस बीच, साठ के दशक के अंत में छह कवियों के एक समूह ने खुद को दिगंबर (नग्न) कवि घोषित कर दिया। उन्होंने खुद को चेराबंद राजू, निखिलेश्वर, ज्वालामुखी, नग्नमुनि, महास्वप्न और भैरवय्या जैसे नामों से पुकारा। उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखीं, जो शायद शैली में बहुत परिष्कृत नहीं थीं। उनकी कविताओं में उनकी क्रोधित अश्लीलता की गुणवत्ता दिखाई देती थी। हालाँकि, आरंभ में, आंदोलन विचारधारा और संगठनों के विरुद्ध था, लेकिन उन्होंने खुद को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करने से दूर नहीं रखा।

1965 में तेलुगु साहित्य में दिगंबर काव्य आंदोलन उभरा। समाज में पनप रहे शोषण, वर्ग विषमता, धोखाधड़ी आदि के प्रति दिगंबर कवियों ने तीन साल (1965-68) के अंतराल में तीन घोषणापत्र प्रकाशित किए। विचारधाराओं और संगठनों के खिलाफ उनकी आलोचना के बावजूद, वे धीरे-धीरे मार्क्सवादी-लेनिनवादी लेखकों के रूप में विकसित हुए। अपने तीसरे घोषणापत्र (1968) के समय, उनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से एक तीखे और अधिक आक्रामक शैली में क्रांति का संदेश देना था। उन्होंने सीधे सत्ता प्रतिष्ठान पर हमला करना शुरू कर दिया। दिगंबर कविता निराशावादी या सिनीकल कविता नहीं है। बल्कि वह नवीन मानवता के विकास में विश्वास, आशा-आस्था और आकांक्षा से प्रेरित रचना है। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति की विरूपता से क्रुद्ध होकर दिगंबर कवियों ने सीमाओं का अतिक्रमण किया।

"दिगंबर काव्यांदोलन की उफनाती तरंग ज्वालामुखी का कंठ दहकता हुआ वह अंगार है जिसने लाखों-करोड़ों जनता को गहन निद्रा से जगाया। प्रगतिशील भावों से युक्त ज्वालामुखी ने समाज को दीमक की तरह खाते जा रहे विषकीटकों के प्रति समाज को जगाया।" (गुर्रमकोंडा नीरजा, तेलुगु साहित्य : एक अंतर्यात्रा, पृ.153)। समाज में व्याप्त कुरीतियों को, सत्तालोलुप

राजनीतिज्ञ, धर्मांध मठाधीश और स्वार्थी पूँजीपति को उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा बेनकाब किया। इसके लिए उन्होंने गाली-गलौज तथा अपशब्दों का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकिचाए। उनकी एक कविता का उदाहरण देखें - "भय विह्वल जनता का/ पागल-जीवन उसका/पीछा करता रहा/ तोंदधारी लुटेरे/ फोते वाले मरद/ ढोंगी तिलकधारी पंड़े/ चोटीवाले नेता-सियार/ दाढ़ी वाले घूस/ मूँछवाली औरतें/ मूँछ विहीन हिजड़े/ मृदुल व्यवहारी/...खद्दर टोपीधारी/ हरामजादे नेता/ कुमार्गी कुटिल क्रूर/ मंदिरों के म्लेच्छ/ मस्जिद के काफिर/ गुरुद्वारे के गुंडे/ चर्च के पापी/ शांति के पुजारी/ वार्ता चोर..."

साहित्य में जब दिगंबर काव्यांदोलन और राजनीति में श्रीकाकुलम आदिवासी आंदोलन लगभग एक साथ अपने चरम पर थे, क्रांतिकारी लेखक एक ही बैनर तले लिखने पर विचार कर रहे थे। दरअसल, असंगठित मार्क्सवादी-लेनिनवादी लेखक 'विशाखा स्टूडेंट्स' के नाम से एक पैम्फलेट के ज़रिए एक ही बैनर के नीचे आ गए। इस पैम्फलेट में देश के विभिन्न हिस्सों में लोगों के संघर्षों की ओर इशारा किया गया और लेखकों से पूछा गया - 'आप किसकी तरफ़ हैं?' इसके परिणामस्वरूप 4 जुलाई 1970 को विरसम (विप्लव रचयिता संघम् - क्रांतिकारी लेखक संघ) का गठन हुआ।

**बोध प्रश्न**

- दिगंबर काव्य आंदोलन के प्रमुख कवि कौन हैं?
- दिगंबर काव्य आंदोलन का आरंभ क्यों हुआ?

### 7.3.6 विप्लव कविता

आंध्र प्रदेश में रूस और चीन की सामाजिक स्थितियों के कारण मार्क्सवाद कम्यूनिज़्म के रूप में परिवर्तित हुआ। अंग्रेजी के शब्द 'रेवलूशन' के पर्याय के रूप में विप्लव शब्द का जन्म हुआ। छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि तेलुगु साहित्य में 1970 में क्रांतिकारी लेखक संघ 'विरसम' की स्थापना हुई। आंध्र प्रदेश की सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर तथा भारत और विदेशों में विभिन्न क्रांतिकारी संघर्षों से प्रेरित होकर, श्रीश्री, कुटुंबराव, रमणा रेड्डी, वरवर राव और गद्दर जैसे लेखकों ने युवाओं की एक पूरी पीढ़ी की राजनैतिक चेतना को जागृत करना शुरू कर दिया।

वरवर राव और गद्दर की कविताओं ने विशेष रूप से जनता में क्रांति लाने में सफल हुईं। 1970 में वरवर राव ने ही क्रांतिकारी कवियों का एक संगठन बनाया 'तिरुगूबाटु' (विप्लव) नाम से जो 4 जुलाई 1970 में समशील क्रांतिकारी रचनाकारों के संघ 'विरसम' के रूप में परिवर्तित हो गया। अपने व्यवस्था विरोधी तेवर के कारण वरवर राव और गद्दर को सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। वे अपने सरकारी दुर्व्यवहार झेलते रहे। वरवर राव ने अपने साहित्यिक मंच 'सृजना' के माध्यम से अपने आंदोलन को गति प्रदान की। विरसम के माध्यम से वरवर राव ने तेलुगु क्रांतिकारी कविता को जीवित रखा। "वरवर राव ने तेलुगु काव्यभाषा को नया लड़ाकू

तेवर प्रदान किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त उपमान और प्रतीक तथा निर्मित बिंब पाठक के मस्तिष्क को झकझोरते हैं। उदाहरण के लिए - 'बम मैंने नहीं बाँटे/ भाव भी मैंने नहीं बाँटे/ लोहे के जूते से तुम्हीं ने/ बाँबी को रौंदा/ तो बाँबी टूटी/ और बाहर निकलीं प्रतिक्रिया की भावनाएँ/ मधुमक्खी के छत्ते पर लाठी दे मारी तुमने/ तो मधुमक्खियों के इधर-उधर उड़ने की आवाज/ बम बनकर फट पड़ी तेरे मन में/ काँपते तेरे लाल चेहरे पर/ उभर आए चकते डर के/ लोगों के दिलों में छिपी विजयभेरी को/ व्यक्ति समझकर/ भून डाला तुमने गोलियों से/ तो चारों ओर/ प्रतिध्वनि हुई क्रांति।' (रिफ्लेक्शन)।

तेलंगाना के प्रजाकवि कालोजी नारायण राव ने प्रगतिवादी काव्यांदोलन और विरसम (विप्लव रचयितल संघम) के सशक्त स्तंभ थे। उन्होंने अपनी पहली कविता 1931 में भगतसिंह की मृत्यु पर विचलित होकर लिखी थी। निजाम के रजाकारों और ब्रिटिश सैनिकों द्वारा जनगामा तालुका के माचिरेड्डी पल्ले और आकुनूर गाँवों की स्त्रियों पर किए गए अत्याचार का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा कि - 'दायित्वहीन सरकार के/ सिपहसालारों का अत्याचार, अब और नहीं/ दायित्वपूर्ण व्यवस्था के बिना/ जीवन, अब और नहीं/ सत्ताधारियों के निरंकुश/ खेल, अब और नहीं/ *** ***/ माचिरेड्डी और आकुनूर में/ अस्मत की लूट, अब और नहीं।/ शासन के नाम पर गाँव-गाँव में/ पापाचार, अब और नहीं।/ रक्षण के नाम पर/ भक्षण, अब और नहीं।/ पैसे वालों की दुनिया में/ गरीब का क्रय-विक्रय, अब और नहीं।'

लगभग दो दशकों (1970-90) तक विरसम ने तेलुगु कविता को प्रभावित किया और युवा कवियों को अपने साथ जोड़ा। लेकिन विरसम के कार्यकर्ताओं को यह बात अप्रिय लग सकती है कि पिछले दशक में तेलुगु कविता अब इसके प्रभाव में नहीं रही।

**बोध प्रश्न**

- विरसम का क्या अर्थ है?
- विरसम की स्थापना किसने की?

### 7.3.7 जानपद साहित्य (लोक साहित्य)

जानपद साहित्य अर्थात लोक साहित्य। यह पूरी तरह से मौखिक साहित्य है। तेलुगु में 'जानपदम्' का आशय है जनता के पद अर्थात जनता के मुख से निसृत साहित्य। यह साहित्य लोक का, लोक द्वारा लोक के लिए रचा हुआ साहित्य है। यह वस्तुतः अनुभवजन्य साहित्य है। तेलुगु साहित्य जगत में लोक को प्रमुखता दी जाती है। लोक भाषा एवं लोक साहित्य का अपना एक निजी एवं विशिष्ट स्थान है। यह सर्वविदित तथ्य है कि नागर जीवन और लोक जीवन के बीच अंतर विद्यमान है। लोक साहित्य लोक कंठ से निःसृत साहित्य है। इसमें लोक की आस्थाओं, आकांक्षाओं, कल्पनाओं, आवश्यकताओं को महत्व दिया जाता है। यह साहित्य मौखिक होने के कारण लुप्त होने की अधिकांश संभावना है, और हो भी रहा है। अतः इस साहित्य को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अनेक संस्थाएँ इस साहित्य को संकलित करने का प्रयास कर रहे हैं। यह प्रयास तेलुगु में सी पी ब्राउन ने किया था। उन्होंने 1842 में बोब्बिली कथा,

कुमार रामुडी कथा (बालक राम की कथा), पलनाटी वीर चरित्र (पलनाडु के वीरों का इतिहास) आदि कथाओं को संकलित किया। 1874 में जे ए बोएल ने पापारायुडू की कथा का संकलन किया था। (तांड्र पापारायुडू आंध्र में स्थित बोब्बिलि नामक स्थान के सेनापति थे। वे अपनी वीरता के लिए जाने जाते थे)। 1888 में आंध्र प्रदेश में प्रचलित लोकोक्तियों का संकलन किया गया था। उसके बाद स्त्रियों के गीत, शिशु गीत, श्रम गीत आदि का संकलन किया गया। लगभग 1840 के आस-पास से लोकसाहित्य का संकलन तेलुगु में प्रारंभ हुआ था। पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने तेलुगु लोक साहित्य के संकलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तेलुगु समाज में लोक साहित्य हरिकथा, बुर्रकथा, ओग्गु कथा, वीधि नाटकम् (नुक्कड़ नाटक), यक्षगान, कुरविंजी, कटपुतली नाच आदि के रूप में प्रचलित है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत संपन्न संस्कारों, लोरियों, त्योहारों आदि के अवसर पर लोक गीत और लोक नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है। तेलंगाना क्षेत्र में बतुकम्मा के अवसर पर लोक गीत और लोक नृत्य प्रदर्शन होता है- बतुकम्मा बतुकम्मा उय्यालो/ बंगारु बतुकम्मा उय्यालो/ पूवंटि इंतुलम उय्यालो/ मेमु एंतेंतो एदगालि उय्यालो/ बंतीपूलनिस्ता उय्यालो/ बंगारु मनसिव्वु उय्यालो.....। (बतुकम्मा बतुकम्मा झूला झूलो/ सवर्णमयी बतुकम्मा झूला झूलो/ सुमन सुकुमारी झूलो/ हम ऊँची पेंग बढ़ाएँ, झूलो/ गेंदे का हार चढाऊँगी, झूलो/ सोने का दिल दो झूलो)। इस प्रकार लोकोक्तियों, गीत, संगीत, नृत्य आदि विधाओं के माध्यम से तेलुगु समाज में जानपद (लोक) साहित्य प्रचलित है। अपनी पुस्तक 'जानपद साहित्यम : आधुनिक स्पृहा' (2015, लोक साहित्य : आधुनिक चेतना) में देवराजु महाराजु ने लोक साहित्य तथा उसकी मान्यताओं की व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में की है और प्रतिपादित किया है कि समय के साथ-साथ लोक साहित्य में भी नए-नए आधुनिक परिवेश प्रतिबिंबित हो रहे हैं।

**बोध प्रश्न**

- जानपद साहित्य से क्या अभिप्राय है?

**अन्य पद्य विधाएँ**

तेलुगु साहित्य में अवधान एक विशिष्ट काव्य शैली है। यह एक विलक्षण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के प्रवर्तक दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री और चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री 'तिरुपति वेंकट कविद्वय' के नाम से विख्यात हैं। अष्टावधान, शतावधान, सहस्रावधान और आशु कविता के माध्यम से तिरुपति वेंकट कविद्वय ने 'अवधान' काव्य विधा को सुदृढ़ बनाया।

आधुनिक तेलुगु साहित्य में वचन कविता, नानीलू (मिनी कविता), पंचपदी जैसी अनेक नूतन काव्य शैलियों का विकास हुआ। वचन कविता अर्थात गद्य कविता। सिनारे कहते हैं कि 'जीवितम कटिक चेदु/ आमात्राम नाकु तेलियक पोदु/ चेदुपोरल नडिम निजान्नी/ चेदुगुंडे दाहम

वुन्डकपोदु' (जीवन कड़वा है। यह तो मैं जनता ही हूँ। कडवे परतों के बीच सच के प्यास को बुझा नहीं सकते)।

नानीलु' नामक नन्हीं कविता के प्रवर्तक हैं एन. गोपि। कवि ने स्वयं कहा है कि "बिना अतीव कसावट और बिना अनावश्यक ढिलाई के साथ नानी (नन्हा मुक्तक) मेरे द्वारा रूपायित 20-25 अक्षरोंवाला एक ढाँचा है, एक छंद है। इनमें अक्षरों की संख्या 20 से कम नहीं, और 25 से अधिक नहीं। नानी माने मेरे (ना; नावि = मेरे) और तेरे (नी; नीवी = तेरे) हैं। मतलब है हम सब के। नानी माने नन्हा बच्चा भी है। ये भी नन्ही कविताएँ हैं न! इनमें मैंने चार चरणों के ही नियम का पालन किया। चरणों के विभाजन में 'वचन कविता' के अंतर्गत जो संगीत है वह इन में नहीं है। फिर भी निर्माण की दृष्टि से इन में भी नियमबद्धता देखी जा सकती है। कुछ नन्हे मुक्तक ऐसे हैं जिनके दो-दो चरणों में एक-एक भाव का अंश निहित है। इनमें प्रथम दो चरणों में एक भाव का अंश है तो अंतिम दो चरणों में दूसरा। प्रथम भावांश का समर्थन करते हुए या उस की सार्थकता का प्रतिपादन करते हुए दूसरा भावांश रहता है : घड़ा फूट गया/ कुढ़ते हो क्यों?/ माटी दूसरा रूप लेने की/ कर रही है तैयारी।

सिनारे ने पंचपदी नाम से काव्य शैली का सृजन किया। इसमें कुल पाँच पंक्तियाँ होती हैं। अंतिम पंक्ति सूत्र वाक्य के रूप में प्रथम चार पंक्तियों का समाहार करती है। तेलुगु के कवि हाइकू भी लिखने लगे।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु साहित्य में विकसित नूतन पद्य शैलियों के बारे में बताइए।

### 7.3.8 गद्य विधाएँ

काव्य के साथ-साथ तेलुगु साहित्य में गद्य की विधाएँ भी उभरने लगीं। तेलुगु में नाटक और रंगमंच का क्षेत्र काफी सशक्त है। तेलुगु समाज में हरिकथा, बुर्रकथा, ओग्गु कथा, वीधि नाटकम् (नुक्कड़ नाटक), यक्षगान, कुरविंजी, कटपुतली नाच आदि के रूप में जानपद रूपक प्राचीन काल से लोकप्रिय थे। इन लोक शैलियों के माध्यम से मनोरंजन के साथ-साथ संस्कृति का भी परिचय हो जाता था। ध्यान देने की बात है कि 11 वीं शती से ही तेलुगु समाज में रंगमंच का विकास हुआ। कवि सार्वभौम श्रीनाथ कृत 'क्रीडाभिरामम्' को तेलुगु का प्रथम नाटक होने का श्रेय प्राप्त है। 16 वीं और 17 वीं शताब्दियों में तेलुगु नाटक और रंगमंच का विकास तंजाऊर में हुआ। इस अवधी में करीब 400 यक्षगानों की रचना हुई। अधिकांश नाटकों का मंचन हुआ था। कृष्णा जिले में स्थित बंदर (अब मछलीपट्टनम) नाटक और रंगमंच के लिए जाना जाता है। यहाँ नाग जड़े आभूषण भी तैयार किए जाते हैं जिन्हें नाटक के कलाकार और नृत्य के कलाकार उपयोग करते हैं। अनेक नाटक संस्थाओं की स्थापना हुई। एकाकी, रूपक, रेडियो नाटक आदि विधाओं का भी विकास हुआ।

“तेलुगु का प्रथम नाटक किसे माना जाए, इस विषय में भी काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वान कोराडा रामचंद्र शास्त्री कृत ‘मंजरी मधुकरीयम्’ (1861) को तेलुगु साहित्य के प्रथम नाटक मानते हैं, लेकिन इसमें आधुनिक नाटक के तत्व नहीं हैं अतः वीरेशलिंगम् कृत ‘ब्रह्म विवाहमु’ (ब्रह्म विवाह, 1876) को यह ख्याति प्राप्त है। यह एक व्यंग्यपूर्ण सामाजिक नाटक है।” तत्कालीन समाज में यह प्रथा प्रचलित थी कि किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को संपन्न करने के लिए पत्नी के सहयोग की आवश्यकता है। इस नाटक का पात्र तीसरी पत्नी के देहांत के बाद तीन साल की बच्ची से विवाह करता है। धन के लालच में माता-पिता भी बच्ची का सौदा करते हैं। इस पर नाटककार ने प्रहार किया है। गुरजाड़ा अप्पाराव कृत ‘कन्याशुल्कम्’ (कन्याशुल्क) तेलुगु जनता की सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिंब है। तत्कालीन समाज में कन्याओं को विक्रय करने की कुप्रथा प्रचलित थी। इसी पर गुरजाड़ा ने प्रहार किया।

आधुनिक गद्य का आरंभ चिन्नयासूरी कृत ‘नीति चंद्रिका’ से माना जाता है जो संस्कृत के पंचतंत्र का अनुवाद है। प्रारंभ में पाठकों में गद्य के प्रति रुचि पैदा करने के विचार से पंचतंत्र, हितोपदेश, विक्रमार्क की कहानियाँ, कथा-सरितसार, बेताल पंचशती, तेनाली रामुनि कथलु, तातार्चायुल कथलु आदि रचे गए। स्कूल-कॉलेजों के लिए पाठ्य पुस्तकों की रचना की गई। 1840 में सिंगराजु दत्तात्रेयुलु तथा वेंकट सुब्बय्या ने ‘रंगनाथ रामायण’ काव्य-गद्य में प्रस्तुत किया। इस युग की गद्य-पुस्तकों में काशी यात्रा (एनुगुल वीरास्वामी) विशेष उल्लेखनीय है। आधुनिक गद्य लेखकों में कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु, गुरजाड़ा अप्पाराव, गिडुगु वेंकटराममूर्ति, वेटूरी प्रभाकर शास्त्री, नार्ल् वेंकटेश्वर राव, विश्वनाथ सत्यनारायण, सुरवरम् प्रताप रेड्डी, अडवी बापिराजु, गुडिपाटि वेंकटचलम, त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी, त्रिपुरनेनी गोपीचंद, मल्लादि वसुंधरा, रंगनायकम्मा, वोल्गा, नायनि कृष्णकुमारी, आदि अनेक साहित्यकारों ने उपन्यास, कहानी, समालोचना आदि अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण रचनाओं का सृजन किया। इन साहित्यकारों ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विषयों पर लेखनी चलाई। इनकी रचनाओं से समाज में जागृति पैदा हुई। आज अनेक नाटककार जैसे डी. विजय भास्कर और नंदिराजु सुब्बारव अपनी रचनाओं के माध्यम से तेलुगु समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं सामाजिक गतिविधियों के बारे में जानकारी देने के साथ-साथ जनता को जगाने का प्रयास कर रहे हैं।

आधुनिक साहित्य के विकास में ‘कृष्णा’ पत्रिका की भूमिका निर्विवाद है। कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु को आधुनिक तेलुगु साहित्य के ‘गद्य ब्रह्मा’ के नाम से जाना जाता है। कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु तेलुगु साहित्य के इतिहास में प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने समाज सुधार के कार्यों, भाषणों और साहित्य के माध्यम से जागरण का संदेश दिया। “समाज सुधार के लिए उन्होंने साहित्य को साधन के रूप में अपनाया। उनकी मान्यता है कि "केवलम् पुस्ताकुलु व्रासि प्रचुरिंचडम्लो प्रयोजनम् लेदु। मनम् नम्मिना सत्यान्नि लोकानिकि चाटि कार्यरूपमलो चूपगल धैर्यसाहसान्नी प्रदर्शिंचडम् चाला अवसरम्।" (केवल किताबें लिखकर प्रकाशित करने से कोई लाभ नहीं होगा। जिस सत्य को हम मानते हैं उसे धैर्य और साहस के साथ आचरण में रखना अनिवार्य है।)।” आधुनिक तेलुगु गद्य साहित्य के प्रवर्तक

वीरेशलिंगम् ने प्रथम उपन्यासकार, प्रथम नाटककार और आधुनिक पत्रकारिता के प्रवर्तक के रूप में ख्याति अर्जित की है।

"तेलुगु साहित्य के इतिहास में भी प्रथम उपन्यास और उपन्यासकार के बारे में मतभेद है। कुछ विद्वान नरहरि गोपाल कृष्णम् शेट्टी कृत 'श्री रंगराज चरित्रमु' (श्री रंगराज का इतिहास, 1872) को तेलुगु का प्रथम उपन्यास मानते हैं, लेकिन लेखक ने अपनी रचना के संबंध में स्वयं कहा है कि "ई रचना हिंदुवुला आचारमुलनु तेलुपु नवीन प्रबंधम्। ई रचना कुला मतालकु अतीतंगायुंडि प्रेमकु प्राधान्यतनु इच्चिंदी।" (यह रचना वस्तुतः हिंदुओं के रीति रिवाजों को व्यक्त करनेवाली नवीन प्रबंध काव्य है तथा जाति-पांति के विरुद्ध प्रेम भावना को प्रधानता देने वाली है।)। इसका दूसरा नाम है 'सोनाबाई परिणयमु' (सोनाबाई का परिणय)। इसके विपरीत कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु कृत 'राजशेखर चरित्र' (राजशेखर का इतिहास, 1880) में आधुनिक उपन्यास के तत्व विद्यमान हैं। अतः इस उपन्यास को ही तेलुगु के प्रथम उपन्यास माना गया है। इसके माध्यम से लेखक ने तत्कालीन हिंदुओं की जीवन शैली, उनकी संस्कृति, रीति रिवाज, अंधविश्वास, स्त्रियों की मनोदशा आदि को उकेरा है। यह उपन्यास अंग्रेजी में 'फार्च्यून्स आफ दी व्हील' के नाम से अनूदित है।)।"

उपन्यास के क्षेत्र में विश्वनाथ सत्यनारायण कृत 'वेयिपडगलु' (सहस्रफण) आंध्र की संस्कृति का प्रतिबिंब है। यह 1934 में प्रकाशित 1000 पृष्ठों का उपन्यास है। इसमें इतिहास और दर्शन दोनों का सम्मिश्रण है। समाजशास्त्र भी है और राजनीति शास्त्र भी। प्राचीन संस्कृति के निरूपण के साथ-साथ कला की पराकाष्ठा को भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है। यह मात्र उपन्यास नहीं बल्कि आंध्र जनता का जीवन दर्शन है। उपन्यास के क्षेत्र में अडवी बापिराजु (हिमबिंदु, गोना बुद्धारेड्डी), कोड़वटिगंटि कुटुंबराव (चदुवु - शिक्षा), बुच्चिबाबु कृत चिवरकु मीगिलेदि (आखिर जो बचा), चिलकमर्ती लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री (बैरिस्टर पार्वतीशम), राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री (अल्पजीवी), पीनिशेट्टी श्रीराममूर्ति (ममता), रावूरि भारद्वाज (पाकुडु राल्लु -खाई जमे पत्थर), किशोरीलाल व्यास (रजाकार), आदि उल्लेखनीय हैं।

कहानी को तेलुगु में कथा अथवा कथानिका कहा जाता है। गुरजाड़ा की कहानियाँ दिद्दुबाटु (सुधार), संस्कर्ता हृदयम (समाज सुधारक का हृदय), पेद्दा मसीदु (बड़ा मस्जिद) आदि उल्लेखनीय हैं। चिंता दीक्षितुलु की कहानियाँ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। मुनिमाणिक्यम् की कहानियाँ भी तेलुगु समाज को प्रतिबिंबित करने में सक्षम हैं। गोपीचंद की कहानियाँ तंड्रुलु-कोडुकुलु (बाप-बेटा), शितिलालयम् (खंडहर) जैसी सामाजिक कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। तेलुगु साहित्यकारों ने हर विषय पर कहानियाँ लिखी हैं। एड्स जैसी बीमारियों पर तेलुगु कहानीकार अपनी लेखनी चला रहे हैं। सलीम का उपन्यास 'कालुतुन्ना पूला तोटा' (जलरही फुलवारी) इस दृष्टि से ध्यान आकर्षित करता है। इसका हिंदी में आर. शांता सुंदरी ने 'नई इमारत के खंडहर' नाम से अनुवाद किया है।

2021 में आंध्र प्रदेश के पाँच दशकों के क्रांतिकारी साहित्य को पाणी ने 'वसंतगानम्' (वसंतगान) शीर्षक से संपादित किया है। इस पुस्तक में कोड़वटिगंटि कुटुंबराव, त्रिपुरानेनी

मधुसूदन राव, के वी आर, वरवर राव, बालगोपाल, चलसानि प्रसाद, निखिलेश्वर, रत्नमाला, अल्लम राजैया आदि अनेक क्रांतिकारी साहित्यकारों के विचारों को देखा जा सकता है। यह पुस्तक वास्तव में एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु साहित्य में आधुनिक गद्य का आरंभ किस कृति से माना जाता है?
- तेलुगु के प्रथम उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, निबंधकार होने का श्रेय किसको प्राप्त है?

## 7.3.9 विविध विमर्श

तेलुगु साहित्य में विमर्श का अर्थ है आलोचना। लेकिन यहाँ साहित्य में उत्तर आधुनिकता के कारण उत्पन्न अस्मिता विमर्शों की चर्चा की जा रही है। जैसे - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श/ मुस्लिम विमर्श। तेलुगु साहित्य में पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में ये विमर्श उभरे। स्त्री/ दलित/ अल्पसंख्यक आदि समुदाय केंद्र से धीरे-धीरे परिधि की ओर चले गए। मूलभूत अधिकारों से वंचित हो गए। लेकिन समय के साथ-साथ वे फिर से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना शुरू किया और सफलता भी अर्जित की। आइए! तेलुगु साहित्य में स्त्री, दलित और अल्पसंख्य परिदृश्य को समझने की कोशिश करेंगे।

**स्त्री विमर्श**

स्त्री विमर्श का आशय है स्त्री के अधिकारों के लिए संघर्ष। स्त्री अपने अधिकारों से वंचित होती चली गई। उसे घर की चार दीवारों के अंदर बंद कर दिया गया यह कहकर घर और रसोई ही उसका अधिकार क्षेत्र है। वह माँ, बहन, पत्नी आदि भूमिकाएँ निभाते-निभाते वह स्वयं के अस्तित्व को भूल गई। समाज में उसके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार होने लगा। अनेक समाज सुधारकों के प्रयासों के कारण स्थितियाँ बदलने लगीं और स्त्रियों के लिए मताधिकार का संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ, लेकिन आज भी वह अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। 'हिंदू कोड बिल' ने भारतीय नारी की स्थिति को पूरी तरह से बदल दिया जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। इस समस्त संघर्ष और चेतना का ब्यौरा हमें सहज रूप से साहित्यिक कृतियों में भी देखने को मिलता है।

साहित्यकारों ने स्त्री के दोनों सकारात्मक और नकारात्मक रूपों का चित्रण किया है। कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु और गुरजाडा अप्पाराव जैसे साहित्यकारों ने स्त्री की समस्याओं को लेकर अनेक रचनाएँ की हैं। तेलुगु साहित्य में स्त्री विमर्श की दृष्टि से गुडिपाटी वेंकट चलम् की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनाओं में 'दैवमिच्चिन भार्या (ईश्वर प्रदत्त पत्नी), 'कन्नीटी कालुवा' (अश्रुधारा), 'अदृष्टम्' (किस्मत), 'हंपी कन्यलू' (हंपी की कन्याएँ) और 'वेंकट चलम् कथलू' (वेंकट चलम् की कहानियाँ) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री को अपने बारे में सोचने के लिए बाध्य किया।

कोडवटीगंटी कुटुंबराव के प्रसिद्ध उपन्यास हैं 'आडा जन्मा' (स्त्री जन्म), 'लेचिपोइना मनिषी' (भागा हुआ मनुष्य) आदि। उन्होंने अपनी कृतियों में स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता से जुड़े मुद्दों को उकेरा है। अडवि बापिराजु, चिंता दीक्षितुलु, वेलूरि शिवराम शास्त्री, कनुपर्ति वरलक्ष्म्मा, इल्लिंदल्लि सरस्वती देवी, मालती चंदूर, अब्बूरि छायादेवी तथा कोम्मूरि पद्मावती देवी, ओल्गा, नायनि कृष्ण कुमारी, कोंडेपूडि निर्मला, वसंता कन्नाभिरान्, पद्मलता, एन. अरुणा, वाणी रंगाराव, घंटसाला निर्मला, शाहजहाना, वकुलाभरनम् ललिता और के.गीता आदि साहित्यकारों ने स्त्री की स्वतंत्रता, उसकी अधिकारों को लेकर काफी कुछ कहा है। स्त्री विमर्श के संपूर्ण परिदृश्य को समझने के लिए एन. अरुणा की कविता 'सुई' का उदाहरण देखा जा सकता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि सुई स्त्री जीवन और सृजनात्मक मानसिकता का वह प्रकार है जो बेटी को अपनी माँ से विरासत में प्राप्त होता है। सुई को कवयित्री ने प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है। जिस तरह फटे कपड़ों को सुई जोड़ती है उसी तरह स्त्री भी अपने परिवार को आत्मीयता के धागों से पिरोती है - "इनसानों को जोड़कर सी लेना चाहती हूँ/ फटते भूखंडों पर/ पैबंद लगाना चाहती हूँ/ कटते भाव-विभेदों को/ रफ़ू करना चाहती हूँ/ चीथड़ों में फिरनेवाले लोगों के लिए/ हर चबूतरे पर/ सिलाई मशीन बनना चाहती हूँ।/ ***/ आर-पार न सूझनेवाली/ खलबली से भरी इस दुनिया में / मेरी सुई है/ और लोकों की समष्टि के लिए खुला कांतिनेत्र।" (एन.अरुणा, 'सुई', मौन भी बोलता है; पृ.53-54)।

के. सुभाषिणी के कहानी संग्रह 'अमूल्या' (2015) में संकलित कहानियाँ स्त्री प्रधान कहानियाँ हैं। इन कहानियों में स्त्री की समस्याओं को उजागर करने के साथ-साथ आर्थिक विसंगतियों, मानसिक द्वंद्व, उपभोक्ता संस्कृति, भ्रष्ट शिक्षा तंत्र आदि को भी रेखांकित किया गया है। परिमला सोमशेखर की कहानियाँ भी स्त्री विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

स्त्रीवादी साहित्यकार ओल्गा ने सिर्फ रचनाएँ नहीं लिखी, बल्कि उन्होंने साहित्य को जन आंदोलन का रूप देने हेतु 'अस्मिता' (Feminist Voluntary Organization) की स्थापना भी की। ऐसी और भी अनेक संस्थाएँ सामाजिक परिवर्तन के लिए अहर्निश प्रयासरत हैं।

**बोध प्रश्न**

- स्त्री विमर्श से क्या आशय है?

**दलित विमर्श**

दलित विमर्श का अभिप्राय है दलित की अस्मिता की लड़ाई। समाज में दलित तिरस्कृत वर्ग है। जिसका दलन किया गया है वह दलित है। दाब हुआ, कुचला हुआ लोग हैं दलित। इन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा गया था। गाँव के अंदर आने के लिए भी इन्हें अनुमति नहीं दी जाती थी। तेलुगु साहित्य में गुर्रम जाषुवा को दलित विमर्श का जनक माना जाता है। उन्होंने यह घोषित किया कि 'जाति भेद के इस पिंजरे में मैं नहीं फसूँगा। मैं विश्व की सीढ़ियों को पार कर

चुका हूँ। मैं तो विश्वमानव हूँ।' तत्कालीन समाज में व्याप्त असमानता, अराजकता, जाति भेद, वर्ण भेद, ऊँच-नीच, गरीबी और छुआछूत से अत्यंत विचलित होना उनके लिए स्वाभाविक था।

"गुर्रम जाषुवा की सर्वाधिक चर्चित कृति है 'गब्बिलम्' (चमगादड)। जाषुवा 'गब्बिलम' के लेखक के रूप में तेलुगु साहित्य जगत् में विख्यात हैं। 1941 में प्रकाशित यह खंड काव्य वस्तुतः कालिदास कृत 'मेघदूतम्' की पैरोडी है। 'मेघदूतम्' में यक्ष मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी के पास संदेश भेजता है लेकिन जाषुवा के काव्य 'गब्बिलम्' में संदेश भेजनेवाला यक्ष नहीं है बल्कि हाशिए पर स्थित वह दलित है जो गरीबी और भूख से तड़प रहा है तथा अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। वह चमगादड से यचना करता है कि वह लोकाराध्य भगवान शिव के पास जाकर उसकी व्यथा को सुनाए। वह चमगादड को दूत इसलिए बनाता है क्योंकि वह हमेशा शिव मंदिर में उल्टा लटका हुआ रहता है और भगवान के सान्निध्य में रहता है। इस काव्य में जाषुवा ने व्यंग्य और प्रतीकों के माध्यम से दलितों की वेदना का हृदयस्पर्शी अंकन किया है।"

तेलुगु में दलित कविता का आरंभ 1964 के बाद ही हुआ। तेलुगु में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति गीत व कविता के माध्यम से हुई। 1984 में  पहला संकलन 'चिक्कनवुतुन्ना पाटा' (घटता हुआ गीत) प्रकाशित हुआ जिसमें अनेक दलित कवियों की कविताएँ संकलित हैं। 1996 में एक और कविता संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें दलित संघर्ष को अभिव्यक्त करने वाली नई तेवर वाली कविताएँ प्रकाशित हैं। एंडलूरी सुधाकर, जी. वी. रत्नाकर और चल्लापल्ली स्वरूप रानी जैसे साहित्यकारों ने तेलुगु दलित कविता में अनेक मोड जोड़ दिए। व्यवस्था को भी ललकारने में दलित कवि पीछे नहीं रहे - 'राजत्व-समय के/ राजनैतिक पिशाब-कीचड़ में गीले हुए/ ये झंडे/ आर्य मुखों से भरे हुए हैं।' (दुर्गा प्रसाद) दलित साहित्यकारों ने दलितों की आवाज को बुलंद की। नई धरती और नए आकाश की तलाश में हैं दलित साहित्यकार।

कुसुम धर्मन्ना ने दलितों के उत्थान के लिए संघर्ष किया। उन्होंने हरिजन शतक, नल्ल दोरतनम (काले अंग्रेज), निम्नजाति तरंगिणी, मद्यपान निषेधम (शराब निषेध), अंटरानि वाल्लम (छुआछूत) आदि रचनाओं के माध्यम से जनता को चेताया। शिखामणि नाम से प्रसिद्ध कवि-आलोचक डॉ. कर्रि संजीव राव ने दलित विमर्श से संबंधित अनेक काव्य संग्रह और आलोचना ग्रंथों की रचना की है। उनके कविता संग्रह 'चूपुडुवेलु पाडे पाटा' (तर्जनी के गीत) में संकलित कविताओं का मुख्य स्वर दलित की व्यथा-कथा है।

उन्नव लक्ष्मीनारायण कृत मालपल्ली (1922, भंगियों का गाँव) दलितों की कथा-व्यथा को, उनकी दीन-दशा को उजागर करने वाला तेलुगु का प्रथम क्रांतिकारी उपन्यास है। 2017 में प्रकाशित दग्धम् कथलु (दग्ध कथाएँ) शीर्षक कहानी संग्रह में बूतम मुत्यालु ने दलितों के मानवाधिकारों के हनन का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। कोडवटीगंटी कुटुंबराव का उपन्यास 'कुलम् लेनी पिल्ला' (निम्न जाति की लड़की) भी महत्वपूर्ण उपन्यास है। 2015 में डॉ. एस.वी. सत्यनारायण कृत 'दलित साहित्यम नेपथ्यम' (दलित साहित्य की पृष्ठभूमि) पाठकों के सामने आई। इसमें दलित साहित्य के उदय और विकास के साथ-साथ अखिल भारतीय दलित लेखक

संघ के प्रथम अधिवेशन की जानकारी अंकित है तथा आधुनिक दलित साहित्य में चित्रित दलित चेतना। आधुनिक दलित कविता में अभिव्यक्त दलित आक्रोश और संघर्ष आदि को भी रेखांकित किया गया है. इसी प्रकार डॉ. कत्ति पद्मारव कृत 'दलित साहित्यवादम : जाषुवा' (2015) शीर्षक पुस्तक दलित साहित्य की अवधारणा को तेलुगु के कवि गुर्रम जाषुवा के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करती है।

2021 में डॉ. वंकायलपाटी रामकृष्ण ने एक धीरोदात्त दलित महिला की कहानी को 'मँगी' शीर्षक उपन्यास में रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

**बोध प्रश्न**

- तेलुगु साहित्य में दलित विमर्श का जनक किसे माना जाता है?

**अल्पसंख्यक विमर्श/ मुस्लिम विमर्श**

तेलुगु साहित्य में अल्पसंख्यक विमर्श ने अपना प्रवेश मुस्लिम्वादी कविता के रूप में 'माइनोरिटी पोयट्री' के अभिधान तले बीसवीं सदी के अंतिम दशक में दर्ज कराया। कहना ही होगा कि यदि कविता की दुनिया में लोकतंत्र है तो माइनोरिटीकी अभिव्यक्ति को भी बराबर का वेटेज मिलना चाहिए। "इसी से शुरू होता है लघु का भी विखंडन और सामने आती हैं स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक जैसी धाराएँ जिनकी अस्मिता की छटपटाहट अलग-अलग काव्य प्रवृत्ति के रूप में उभरती है। यह भी रेखांकित किया जा सकता है कि जो लघु मानव के व्यापक सरोकार हैं वे इन तीनों ही धाराओं में विद्यमान हैं परंतु इनकी पहचान सामान सरोकारों से नहीं अपने सीमित सरोकारों से है। यह आशा की जानी चाहिए कि आवेश आर आवेग के छँटने पर वे व्यापक सरोकारों को पहचानते हुए अपनी-अपनी सीमाओं से मुक्त होंगी। निस्संदेह विशेषीकरण की इच्छा के बावजूद साधारणीकरण की यह प्रक्रिया भी साथ-साथ चल रही है क्योंकि अंततः कविता की मुक्ति जनसामान्य के साथ तादात्म्य में है, वर्ग-विशेष की संपत्ति बनने में नहीं। इसी संदर्भ में इन कविताओं को ग्रहण करना श्रेयस्कर होगा।" (ऋषभदेव शर्मा, तेलुगु साहित्य का हिंदी पाठ, पृ. 63)

"इस धारा की कविता को अल्पसंख्यक कविता कहने के पीछे स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की तरह 'स्वानुभूति' वाला तर्क विद्यमान है, लेकिन जिस प्रकार दलित व स्त्री साहित्य में चित्रित सब कुछ स्वयं रचनाकार आ जिया हुआ नहीं होता, उसी प्रकार यहाँ भी बहुत सारी कविता 'सहानुभूति' से उपजती दिखाई देती है. स्वानुभूति के नाम पर विलाप करके दया उपजाना सच के एक हिस्से को पेश करने से भी संभव है। गरीबी को भी इसी कारण हिंदू-मुस्लिम बना दिया गया है। उदाहरण के लिए वर्ग अंतराल को किसी धर्म की उपज मानना खंडसत्य भर हो सकता है। फिर भी अल्पसंख्यक कविता यह आरोप लगाने के पीछे नहीं रहना चाहती कि अल्पसंख्यकों को धर्म के आधार पर नौकरी से वंचित रखा गया है - 'इंटरव्यू के लिए बुलाते हैं मुझे/ पर मेरा नाम 'अली' जानकर/ रद्दी कागज के समान/ फेंक दिया करते हैं/ एक सूखे

पत्ते से बच गया हूँ मैं..../ आज/ 'मुंडित सिर' और 'चोटी वाले सिर' की/ होड़ में/ पिछड़ गया हूँ मैं।' (अली)।

स्कैबाबा, गौस मोहियोद्दीन, शाहजहाना, सिकिंदर जैसे साहित्यकारों ने तेलुगु दलित कविता को एक नया मोड प्रदान किया है। स्पष्ट है कि एक ओर मुस्लिम कविता वर्चस्व की राजनीति से संचालित है तो दूसरी ओर उनमें मुस्लिम जीवन और परिवेश की प्रामाणिकता का संस्पर्श उसे विश्वसनीय आधार प्रदान करता है।

**बोध प्रश्न**

- अल्पसंख्यक विमर्श अथवा मुस्लिम विमर्श से क्या अभिप्राय है?

**अन्य विमर्श**

तेलुगु साहित्य में हरित विमर्श, वृद्धावस्था विमर्श, आदिवासी विमर्श से संबंधित रचनाएँ भी सामने आईं। 'निजम' नाम से विख्यात पत्रकार गारा श्रीराममूर्ति ने अपने जीवन के अनुभवों को पत्रकारिता के साथ-साथ साहित्य के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। 2021 में 'अललु (तरंग)' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में सम्मिलित कविताओं की मुख्य वस्तु प्रकृति है। हरित विमर्श की दृष्टि से ये कविताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वी. आर. विद्यार्थी ने 'दृश्यम नुंडि दृश्यानिकी' (दृश्य से दृश्य तक) शीर्षक कविता संग्रह में अपनी अनुभूतियों और अनुभवों को ही काव्य के रूप में अभिव्यक्त किया है। इनके अतिरिक्त भानुश्री कोतवाल (नान्ना - पिता), बी. शशिकुमार (गुंडे सव्वडि - हृदय गति), डॉ. के. दिवाकराचारी (मनुषुलमै ब्रतकाली - मनुष्य बनकर जीना है), एस. वी. कृष्णजयंती (मरीचिका - मृगतृष्णा), एस. वी. कृष्ण (मुख चित्रम-मुख पृष्ठ) आदि की कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए कृषि क़ानूनों के खिलाफ किसानों के शांतिपूर्ण संघर्ष और उस संघर्ष का दमन करने की सरकारी नीति आदि अनेक विषयों को प्रो. मूडभाषी श्रीधर ने 'रैतू व्यतिरेक चट्टालपै तीरगबड्डा ट्राक्टरलु' (2021 - किसान विरोधी क़ानूनों के खिलाफ विद्रोह करने वाले ट्रैक्टर) शीर्षक पुस्तक में बेबाकी से प्रस्तुत किया है।

वृद्धों को केंद्र में रखा जा रहा है. वार्धक्य के बारे में स्पष्ट करने वाली पुस्तक 'वार्धक्यम: वरमा? शापमा?' (वार्धक्य : वरदान है या अभिशाप) प्रकाशित हुई। इसकी रचनाकार हैं डॉ. गुरजाडा शोभा पेरिंदेवी। उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से वार्धक्य से संबंधित अनेक भ्रांतियों का निराकरण किया है और स्पष्ट किया है कि वार्धक्य अभिशाप नहीं बल्कि जीवन का सार है।

'टी तोटला आदिवासुलु चेप्पिना कथलु' (2016, चाय बागान के आदिवासियों की कथाएँ) शीर्षक कहानी संग्रह में संकलित कहानियाँ दार्जिलिंग के चाय बागान में कार्यरत आदिवासियों द्वारा कही गई लोककथाएँ हैं। आदिवासी विमर्श के दृष्टि से यह कहानी संग्रह उल्लेखनीय है। बालगोपाल कृत 'आदिवासुलु : वैद्यम, संस्कृति, अनचिवेता' (2016, आदिवासी:

चिकित्सा, संस्कृति और दमन) तथा 'आदिवासुलु : चट्टालु, अभिवृद्धि' (आदिवासी: न्याय और अभिवृद्धि) भी इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

## 7.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! आपने इस इकाई में आधुनिक तेलुगु साहित्य के बारे में संक्षिप्त रूप से आधुनिक काल का अध्ययन किया है। संक्षिप्त इसलिए कहा जा रहा है कि हिंदी की तरह तेलुगु साहित्य का आधुनिक काल पुनर्जागरण युग से शुरू होता है और समसामयिक अर्थात आज तक भी निरंतर चलता रहा है। इतने वर्षों में अनेक साहित्यकारों ने तेलुगु साहित्य को अनेक साहित्यिक विधाओं के माध्यम से समृद्ध किया है। तेलुगु के कवि नूतन प्रयोगों के द्वारा कविता को सशक्त किया है। अवधान प्रक्रिया, आशु कविता, नानीलू, पंचपदी, मिनी कविता आदि अनेक विधाओं को तेलुगु कविता में देखा जा सकता है। नाटक, कथासाहित्य, आत्मकथा, स्मृति काव्य, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रावृत्त, आलोचना, समीक्षा, सिनेमा से संबंधित रचनाएँ आदि के रचनाओं के माध्यम से तेलुगु साहित्य को समृद्ध किया है। उत्तर आधुनिक विमर्शों की दृष्टि से भी तेलुगु साहित्य समृद्ध है। स्त्री, दलित अल्पसंख्यक, वृद्ध, किसान, हरित विमर्श आदि की दृष्टि से भी आँके महत्वपूर्ण रचनाएँ तेलुगु साहित्य में हैं। यहाँ सिर्फ आधुनिक साहित्य के कुछ प्रमुख बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है।

## 7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. तेलुगु में भी आधुनिक युग नवजागरण से आरंभ होता है। नवजागरण के प्रभाव से अनेक समाज सुधारकों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक बदलाव आए।
2. आधुनिक तेलुगु साहित्य के 'गद्य ब्रह्मा' कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु के युग में संपूर्ण देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ रही थी। "सामंती ढाँचा टूट चुका था। देश में संवेदनशील मध्यवर्ग तैयार हो गया था जो व्यापक राष्ट्रीय और सामाजिक हितों की दृष्टि से सोचने लगा था।
3. 1909-1940 तक के समय को भाव कविता आंदोलन का समय माना जाता है। तेलुगु की भाव कविता अंग्रेजी रोमांटिक कविता से प्रभावित है। भाव कविता अंतर्मुखी कविता है जो कवि के अंदर से भावनाओं को प्रतीकांतर रूप में प्रकट करने में सक्षम होती है। इस प्रकार की कविता में वस्तु गौण है और भाव प्रमुख तत्व बन जाता है।

4. तेलुगु साहित्य में श्रीश्री (श्रीरंगम श्रीनिवास राव) को अभ्युदय कविता के प्रवर्तक माना जाता है। अभ्युदय कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं भौतिकवादी दृष्टिकोण, शोषण का खंडन, श्रमिक एकता और श्रम की महत्ता क्रांति का चित्रण, मानवतावादी दृष्टिकोण, भाग्यवाद और ईश्वर का विरोध, अंधविश्वासों का खंडन, वर्गहीन समाज की स्थापना आदि।
5. समाज में पनप रहे शोषण, वर्ग विषमता, धोखाधड़ी आदि के प्रति दिगंबर कवियों ने सीधे सत्ता प्रतिष्ठान पर हमला करना शुरू कर दिया। दिगंबर कविता निराशावादी या सिनीकल कविता नहीं है। बल्कि वह नवीन मानवता के विकास में विश्वास, आशा-आस्था और आकांक्षा से प्रेरित रचना है।
6. वरवर राव, गद्दर, कालोजी जैसे कवियों ने विप्लव लेखक संघ विरसम के माध्यम से तेलुगु कविता को प्रभावित किया और युवा कवियों को अपने साथ जोड़ा।
7. तेलुगु में जानपद अर्थात लोक साहित्य का उल्लेखनीय स्थान है।
8. उत्तर आधुनिक विमर्शों की उल्लेखनीय रचनाएँ भी तेलुगु के आधुनिक साहित्य को सशक्त करने में महती भूमिका निभा रही हैं।

## 7.6 शब्द संपदा

1. अभ्युदय = प्रगतिशील
2. अष्टावधान = आठ विषयों पर अपने बुद्धि को एकाग्र करते हुए कविता करना। अवधान करने वाली को अवधानी कहा जाता है। उनके चारों ओर आठ व्यक्ति बैठते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछते हैं या समस्या उत्पन्न करते हैं, जिनमें अनेक का साहित्यिक रूप होता है। अवधानी छंदोबद्ध कविता के माध्यम से समाधान देता है।
3. आशु कविता = त्यवित गति से तत्काल कविता करना
4. इहलौकिक = इस संसार से संबंध रखने वाला
5. कन्याशुल्क = धन देकर नाबालिग कन्याओं का विक्रय करना
6. जानपद = जन का पद अर्थात जनता का साहित्य
7. पुनर्जागरण = सोई हुई चेतन को जगाना
8. पूँजीवाद = आर्थिक व्यवस्था जिसमें निजी उद्योगों को बढ़ावा दिया जाता है
9. फासिस्ट = तानाशाह के प्रवर्तक
10. बुर्जुआ = पूँजीवाद का समर्थक
11. शतावधान = सौ विषयों पर अपने बुद्धि को एकाग्र करते हुए कविता करना
12. सर्वहारा = समाज का वह वरज जो मजदूरी करके जीवन यापन करता है
13. सहस्रावधान = हजार विषयों पर अपने बुद्धि को एकाग्र करते हुए कविता करना

## 7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

**(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. तेलुगु साहित्य के परिदृश्य में आधुनिकता और समकालीनता के बीच निहित अंतर को स्पष्ट कीजिए।
2. तेलुगु साहित्य की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा का परिचय दीजिए।
3. भाव कविता से क्या अभिप्राय है? भाव कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का सोदाहरण परिचय दीजिए।
4. अभ्युदय कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
5. तेलुगु साहित्य की आधुनिक गद्य विधाओं पर प्रकाश डालिए।
6. स्त्री विमर्श किसे कहते हैं? तेलुगु साहित्य में चित्रित स्त्री विषयक मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।

**खंड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

1. दिगंबर काव्य आंदोलन पर टिप्पणी लिखिए।
2. विप्लव कविता का प्रादुर्भाव कब और क्यों हुआ? स्पष्ट कीजिए।
3. तेलुगु में जानपद (लोक) साहित्य की क्या विशेषता है? स्पष्ट कीजिए।
4. तेलुगु साहित्य में चित्रित दलित विमर्श पर प्रकाश डालिए।
5. तेलुगु साहित्य में मुखरित अल्पसंख्यक विमर्श पर प्रकाश डालिए।

**खंड (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए**

1. आधुनिक तेलुगु साहित्य के 'गद्य ब्रह्मा' कौन हैं? ( )
   (अ) गुरजाड़ा (आ) वीरेशलिंगम पंतुलु (इ) राममूर्ति पंतुलु (ई) आरुद्रा
2. 'नानीलू' के प्रवर्तक कौन हैं? ( )
   (अ) एन. गोपि (आ) सिनारे (इ) दिवाकर्लाचारी (ई) आरुद्रा
3. आधुनिक तेलुगु साहित्य के विकास में किस पत्रिका की भूमिका महत्वपूर्ण है? ( )
   (अ) सरस्वती (आ) आंध्र ज्योति (इ) कल्पना (ई) कृष्णा

4. दलितों की कथा-व्यथा को उजागर करने वाला तेलुगु का प्रथम क्रांतिकारी उपन्यास का क्या नाम है? ( )

   (अ)मालापल्ली (आ) चिवरकु मीगिलेदि (इ) वेयिपडगलु (ई) तृणकंकणम्

5. तेलुगु अभ्युदय कविता के प्रवर्तक का क्या नाम है? ( )

   (अ) चलम् (आ) श्रीश्री (इ) सिनारे (ई) कृष्णशास्त्री

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. तेलुगु साहित्य में दलित विमर्श का जनक .......... को माना जाता है।
2. तेलुगु के प्रथम उपन्यास .......... को माना गया है।
3. तेलंगाना के प्रजाकवि ...... विरसम के सशक्त स्तंभ हैं।
4. अभ्युदय कवि ...... रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे।
5. तेलुगु भाव कविता आंदोलन के अग्रदूत ...... हैं।

III. सुमेल कीजिए

| | |
|---|---|
| 1. गुराजाड़ा | (अ) गब्बिलम् |
| 2. वीरेशलिंगम | (आ) चिवरकु मीगिलेदि |
| 3. विश्वनाथ सत्यनारायण | (इ) कन्याशुल्कम |
| 4. बुच्चिबाबु | (ई) वेयिपडगलु |
| 5. जाषुवा | (उ) राजशेखर चरित्र |

## 7.8 पठनीय पुस्तकें

1. तेलुगु साहित्य का हिंदी पाठ : ऋषभदेव शर्मा
2. तेलुगु साहित्य - एक अंतर्यात्रा : गुर्रमकोंडा नीरजा
3. तेलुगु साहित्य: संदर्भ और समीक्षा : एस. टी. नरसिम्हाचारी

# इकाई 8: बाङ्ला साहित्य का इतिहास (प्राचीन और मध्यकाल)

इकाई की रूपरेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. पाठ का उद्देश्य

8.3. मूल-पाठ : बाङ्ला साहित्य का इतिहास (प्राचीन और मध्यकाल)

8.3.1. बाङ्ला भाषा और लिपि : सामान्य परिचय

8.3.1.1. बाङ्ला भाषा की उत्पत्ति और विविध नाम

8.3.1.2. बाङ्ला भाषा के व्यवहार रूप

8.3.1.3. बाङ्ला लिपि

8.3.2. बाङ्ला साहित्य का इतिहास : काल विभाजन

8.3.2.1. बाङ्ला साहित्य : प्राचीन काल : 8वीं से 12-13वीं शताब्दी

8.3.2.2. बाङ्ला साहित्य : मध्यकाल : 13वीं से 18वीं शताब्दी

8.3.2.2.1. राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

8.3.2.2.2. मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य

8.3.3. पाठ का सार

8.3.4. पाठ की उपलब्धियाँ

8.3.5. शब्द संपदा

8.3.6. परीक्षार्थ प्रश्न

8.3.7. पठनीय पुस्तकें

## 8.1 प्रस्तावना

बाङ्ला भाषा की गणना भारोपीय भाषा परिवार की पाँचवीं सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में की जाती है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में यह सबसे तेजी से विकास करने वाली भाषा भी मानी जाती है। भाषा-भूगोल की दृष्टि से यह भारत के तेरहवें सबसे बड़े तथा जनसंख्या की दृष्टि से चौथे, पश्चिम बंगाल राज्य की संपर्क-भाषा और राज्य भाषा है। असम राज्य की बराक घाटी एवं झारखंड राज्य में इस भाषा का व्यापक स्तर पर व्यवहार किया जाता है। बाङ्ला भारत के पड़ोसी बाङ्लादेश की राष्ट्रभाषा है। भारतीय भाषाओं में बाङ्ला को ही साहित्य का पहला नोबल पुरस्कार प्राप्त होने का गौरव प्राप्त है। विश्व भर में 21 फरवरी को 'अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' मनाया जाता है। यह भी बाङ्ला भाषा से जुड़ी एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है।

## 8.2 : पाठ का उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य है कि विद्यार्थी---

बाङ्ला भाषा के विकास, प्रकृति और महत्व का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकें।

बाङ्ला साहित्य के विकास के विभिन्न कालों को जान सकें।

बाङ्ला साहित्य के प्राचीन काल का अध्ययन करके अपना अभिमत निर्धारित कर सकें।

मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य के स्वरूप का अध्ययन करके स्वयं निष्कर्ष प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

## 8.3 : मूल-पाठ : बाङ्ला साहित्य का इतिहास (प्राचीन और मध्यकाल)

### 8.3.1. बाङ्ला भाषा और लिपि : सामान्य परिचय

**बाङ्ला भाषा की उत्पत्ति और विविध नाम :**

भाषा मनुष्य की अर्जित संपत्ति है। वह निरंतर परिवर्तनशील रहते हुए विकसित होती रहती है। किसी भी भाषा का निर्माण एक दीर्घ कालखंड में विभिन्न भाषायी, भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव से होता है। बाङ्ला भाषा की उत्पत्ति और विकास पर भी यह सिद्धांत लागू होता है। बाङ्ला भाषा का विकास पूर्वी अपभ्रंश से माना जाता है। विद्वानों ने भाषावैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा के लिए बाङ्ला भाषा की उत्पत्ति और विकास के काल-निर्धारण का प्रयास किया है। इस संबंध में विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग बाङ्ला भाषा का विकास सातवीं-आठवीं शताब्दी से मानता है, जबकि दूसरा दसवीं शताब्दी के काल से। बाङ्ला को दसवीं शताब्दी में अस्तित्व में आई भाषा मानते हुए सुकुमार सेन ने उसके विकास के तीन कालों का निर्धारण किया है। उनके अनुसार "मौखिक लौकिक या अपभ्रंश-अवहट्ट से उद्भव के उपरांत बाङ्ला भाषा ने विकास की दो क्रमिक अवस्थाओं को पार किया है, जिन्हें प्राचीन और मध्य बाङ्ला कहा जा सकता है। यह अब अपनी नई या आधुनिक अवस्था में है। प्राचीन बाङ्ला की व्याप्ति मोटे तौर से 950 से 1350 की अवधि तक है। मध्य बाङ्ला की अवस्था का प्रसार 1350 से 1800 की अवधि तक था, और आधुनिक बाङ्ला की अवस्था का आरंभ 1800 से हुआ।" (द हिस्ट्री ऑफ बंगाली लिटरेचर, निर्मला जैन द्वारा 'बाङ्ला साहित्य का इतिहास' नाम से अनूदित, पृ. 16)।

आधुनिक युग पूर्व तक बाङ्ला भाषा को अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है। सुकुमार सेन के मतानुसार, "अठारहवीं शताब्दी के पूर्व 'बाङ्ला भाषा' नाम साधारणत: प्रचलित नहीं था। विशिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त लोग प्राकृत-अपभ्रंश-अवहट्ट भाषा के नाम से परिचित नहीं थे। साधारण शिक्षित जन दो देश भाषाओं के नाम जानते थे। एक संस्कृत--- शास्त्र और पांडित्य की भाषा, और दूसरी--- मातृभाषा अर्थात बाङ्ला।" (बाङ्ला साहित्येर इतिहास-प्रथम खंड, पृ. 5)। सोमा बंद्योपाध्याय ने प्रमाण सहित बताया है कि "बाङ्ला भाषा पहले प्राकृत नाम से परिचित थी। इसका प्रमाण लोचनदास के चैतन्यमंगल के एक पद में मिलता है, जिसमें वे कहते

हैं, 'इहा बलि गीतार पड़िलो एक श्लोक/प्राकृत प्रबंधे कोह शुन सर्बलोक'।" (हिंदी साहित्य ज्ञानकोश-5, पृ. 2406)।

बंगाल का एक नाम 'गौड़ देश' होने के कारण एक समय बाङ्ला भाषा को 'गौड़ीय भाषा' भी कहा जाता था। बाङ्ला भाषा को 'बङ्ग भाष' और 'बङ्ग भाषा' नाम से भी जाना जाता रहा है। अंग्रेज़ जब भारत में आए, तो वे बाङ्ला भाषा को 'बेंगाला' तथा 'बंगाली भाषा' कहते थे। सर्व प्रथम पुर्तगालियों ने इसे 'बङ्ला भाषा' पुकारना शुरू किया। भाषा के लिए बङ्ला नाम बाङ्ला के बहुत निकट है।

बाङ्ला भाषा के व्यवहार रूप :

भाषा-गठन और प्रयोग के आधार पर बाङ्ला भाषा के तीन व्यवहार-रूप माने जाते हैं---

**क. साधु भाषा :** सुकुमार सेन ने बाङ्ला के इस रूप को 'ललित भाषा' कहा है। उनके अनुसार यह बाङ्ला की परंपरागत साहित्यिक शैली है और सोलहवीं शताब्दी की मध्य-बाङ्ला पर आधारित है। अधिकतर बंगाल के अभिजात वर्ग द्वारा व्यवहार में लाए जाने के कारण एक समय इसे शिष्ट भाषा भी कहा जाता था।

**ख. चलित भाषा :** बाङ्ला भाषा के सामान्य बोलचाल रूप को चलित भाषा कहा जाता है। पहले इस भाषा-रूप को केवल साधारण जनों द्वारा दैनिक व्यवहार में प्रयोग किया जाता था, लेकिन रवींद्रनाथ ठाकुर के आह्वान पर इसमें साहित्य-रचना भी की जाने लगी। वर्तमान में यही चलित भाषा बाङ्ला साहित्य की मुख्य भाषा है।

**ग. मानक बाङ्ला :** पश्चिम बंगाल की राज्य-भाषा और कार्यालयीन भाषा होने के कारण बाङ्ला भाषा के इस रूप में पारिभाषिक एवं तत्सम शब्दावली का प्राधान्य है।

**बाङ्ला लिपि :**

लिपि-विज्ञान के अनुसार ब्राह्मी लिपि से गुप्त लिपि, कुटिलाक्षर और नागरी लिपि का विकास हुआ। इस क्रम में पूर्वी नागरी लिपि अस्तित्व में आई, जिससे बाङ्ला, असमीया और उड़िया भाषाओं की लिपि विकसित हुई। दूसरी ओर कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि बाङ्ला लिपि का विकास ब्राह्मी के 'कुटिल लिपि' रूप से हुआ है। बाङ्ला लिपि का प्रारंभिक रूप बारहवीं शताब्दी तक प्रयोग में आ गया था, किंतु उसमें सोलहवीं शताब्दी तक परिवर्तन होते रहे। आवश्यकतानुसार उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भी परिवर्तन किए गए। सन् 1936 में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा बाङ्ला लिपि में कुछ संशोधन सुझाए गए थे, जिनका ढाका की 'बाङ्ला अकादमी' ने समर्थन किया था। चार्ल्स विल्किंसन नामक अंग्रेज़ ने सन् 1778 में बाङ्ला लिपि के टाइपसेट निर्मित किए थे। तभी से बाङ्ला भाषा में प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ।

### 8.3.2. बाङ्ला साहित्य का इतिहास : काल विभाजन

बाङ्ला साहित्य की रचना-परंपरा की नींव रखे जाने के समय बंगाल में एक ओर समृद्ध लोक-साहित्य परंपरा थी, तो दूसरी ओर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि भाषाओं में साहित्य-रचना की जा रही थी। इनमें भी बंगाली समाज में संस्कृत भाषा में रचित साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि के अध्ययन की विशेष प्रवृत्ति थी। राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में आने वाले परिवर्तनों के कारण बाङ्ला साहित्य की रचना परंपरा आठवीं से

बारहवीं शताब्दी के कालखंड में प्रारंभ हुई। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में उसमें व्यवधान आया, किंतु उसके बाद बाङ्ला साहित्य अबाध गति से रचा जाता रहा।

बाङ्ला साहित्य का काल-विभाजन निम्नानुसार किया जाता है---

प्राचीन काल : 8 वीं से 12-13 वीं शताब्दी तक

मध्य काल : 13 वीं से 18 वीं शताब्दी तक

आधुनिक काल : 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से.....

बाङ्ला साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि 13 वीं शताब्दी से लेकर 14 वीं शताब्दी के बीच का एक काल-खंड साहित्य-रचना की दृष्टि से अंधकार-काल है। कारण यह, कि राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इस अवधि में बाङ्ला भाषा में रचनाशीलता संकट ग्रस्त रही थी।

### 8.3.2.1. बाङ्ला साहित्य : प्राचीन काल

### 8.3.2.1.1. राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

बंगाल के इतिहास का आठवीं शताब्दी के पूर्व का लगभग एक-सौ वर्ष का कालखंड घोर अराजकता के कारण 'मत्स्य न्याय काल' नाम से पुकारा जाने लगा था। ताम्बे के 'खलीमपुर अभिलेख' से पता चलता है कि सन् 750 में बंगाल की जनता और वहाँ के कुछ प्रभावशाली सरदारों ने अराजकता से बाहर निकलने के उद्देश्य से गोपाल प्रथम को अपना राजा घोषित किया। इतिहासकार तारानाथ के अनुसार वह पुंगवर्धन के क्षत्रिय परिवार से था। गोपाल प्रथम ने बंगाल को मत्स्य न्याय काल से मुक्ति दिलाई और सन् 770 तक शासन किया। यही गोपाल प्रथम बंगाल में 'पाल वंश' के शासन का प्रारंभकर्ता माना गया है। पाल-युग की कला पर विचार करते हुए 'प्राचीन भारतीय कला : वास्तु एवं पुरातत्व' ग्रंथ में इस घटना के संबंध में एक श्लोक मिलता है--

मात्स्यन्याय मपोहितुं प्रकृतिर्भिर्लक्ष्या: करं ग्राहिता: ।
श्री गोपाल इति क्षितीश शिरयां चूडामणिस्तत्सुत: ॥

गोपाल प्रथम के पश्चात पालवंश में धर्मपाल, महीपाल प्रथम, देवपाल, नारायणपाल, रामपाल, मदनपाल आदि शक्तिशाली शासक हुए, जिन्होंने बंगाल के राजनैतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित किया।

इतिहासकारों का अनुमान है कि पाल-वंश मूलत: हिंदू था। लेकिन गोपाल प्रथम ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। बाद के पाल शासकों में कुछ ने शैव मत को अपनाया और किसी-किसी ने वैष्णव मत को भी, परंतु अधिकांश बौद्ध मत के आश्रय में रहे और उसे ही अधिक महत्व दिया। पाल-युग में बौद्ध धर्म को राजधर्म का स्थान प्राप्त हुआ। अनेक शासकों ने बड़ी संख्या में बौद्ध विहारों का निर्माण कराया और उनमें बौद्ध साधकों को अध्ययन, धर्माचरण और धर्म प्रचार की सुविधाएँ प्रदान कीं। बौद्ध विद्वान हरिभद्र धर्मपाल की राजसभा में थे। महीपाल प्रथम के काल में धर्म प्रचार हेतु बौद्ध भिक्षुओं का एक समूह भिक्खु अतीस के नेतृत्व में तिब्बत भेजा गया था।

इसके बावजूद पाल शासकों के मन में किसी प्रकार का धार्मिक-दुराग्रह अथवा शत्रुता का भाव नहीं था, बल्कि वे अन्य धर्मों को भी विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन व संरक्षण देते थे। इसी कारण पाल-युग में बौद्ध के साथ ही वैष्णव, भागवत, शैव आदि सभी धर्म-मत निर्बाध रूप में व्यवहार में रहे। नारायणपाल के समय बड़ी संख्या में शिव मंदिर बनवाए गए थे। प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग के यात्रावृत्त से पाल शासकों के साम्राज्य-विस्तार के साथ ही उनके धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यों का भी पता चलता है।

पाल-युग में अधिकांश रचनाएँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पालि में लिखी गईं। रामचरित (संध्याकर नंदी), लोपेश्वर शतक (वज्रदत्त), न्याय कुंडली (श्रीधर भट्ट), आगमशास्त्र (गौड़पाद), शब्द प्रदीप (सुरेश्वर), आयुर्वेद दीपिका, द्रव्यगुण संग्रह, शब्द चंद्रिका, भानुमति (चक्रपाणिदत्त), चिकित्सासारसंग्रह (बंगासेना), सुश्रुत भाष्य (गदाधर वैद्य), दायभाग, व्यवहार मालवा, कालविवेक (जीमूतवाहन) आदि पाल-युग की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। रामचरित द्वैर्थक महाकाव्य है। इसमें पाल-शासक रामपाल के जीवन का वर्णन है, जबकि इसका दूसरा अर्थ रामकथा कहता प्रतीत होता है। दायभाग नामक ग्रंथ हिंदू-विधान पर आधारित है। आगमशास्त्र दर्शन का ग्रंथ है।

प्राचीन काल में बाङ्ला भाषा में रचित साहित्य की दृष्टि से दो बातों का ध्यान रखना होगा। एक यह, कि लोक-व्हावाहार के साथ ही लोक-साहित्य में बाङ्ला का तत्कालीन रूप प्रयोग में था। पाल शासक महीपाल के नाम पर बाङ्ला लोक साहित्य में लोकगीतों की एक स्वतंत्र परंपरा ही शुरू हो गई थी। दूसरी यह, कि तत्कालीन अन्य भाषाओं के साहित्य में प्राचीन बाङ्ला की उपस्थिति यत्र-तत्र अनुभव होने लगी थी (इसे कुछ विद्वानों ने प्रोटो-बाङ्ला की स्थिति कहा है), जबकि सिद्धों के चर्यागीतों में प्राचीन बाङ्ला ने साहित्य-रचना-परंपरा स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। आगे उसी पक्ष पर विचार किया जा रहा है।

### 8.3.2.1.2. सिद्ध साहित्य :

बाङ्ला साहित्य के प्राचीन काल का प्रारंभ बौद्ध धर्म की महायान शाखा के वज्रयानी सिद्धाचार्यों के चर्यागीतों से हुआ। इन चर्यागीतों को 'चर्यापद' अथवा केवल 'चर्या' नाम से भी जाना जाता है। चर्या का अभिप्राय है, आचरण। चर्यागीतों में साधक के लिए करणीय और अकरणीय का निर्देश किया गया है। आठवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच हुए सिद्धों द्वारा रचित ये चर्यागीत 'चर्यागीतिकोष' के नाम से संग्रहीत किए गए थे और नेपाल के राजदरबार ग्रंथालय में सुरक्षित थे। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में मनिदत्त नामक टीकाकार विद्वान द्वारा इन चर्यागीतों की टीका करके 'चर्याश्चर्यविनिश्चय' (जिसका अभिप्राय है, चर्यागीतों की अपूर्व व्याख्या) नामक ग्रंथ तैयार किया गया। इस प्रकार चर्यागीतिकोष 'चर्याश्चर्यविनिश्चय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे कहीं-कहीं भ्रमवश 'चर्याचर्यविनिश्चय' भी लिखा गया है।

बाङ्ला साहित्य के आदि ग्रंथ 'चर्याश्चर्यविनिश्चय' के उद्धार का श्रेय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री (1853-1921) को है। वे सन् 1907 में अपनी प्राचीन ग्रंथ संधान यात्रा में नेपाल के राजदरबार-ग्रंथालय में गए थे। वहाँ उन्हें ताड़पत्र पर प्राचीन बाङ्ला में लिखित चर्याश्चर्यविनिश्चय की प्रति प्राप्त हुई। शास्त्री जी ने मनिदत्त द्वारा की गई टीका की सहायता से

चर्यागीतों की भाषा तथा विषयवस्तु को समझने का प्रयास किया। उसी समय उन्हें वहाँ बौद्ध सिद्धों सरहपा और कान्हपा द्वारा पश्चिमी अपभ्रंश में रचित दोहों की पोथियाँ और एक 'दाकार्णव' नामक पोथी मिली। सन् 1916 में हरप्रसाद शास्त्री ने चर्याश्चर्यविनिश्चय के साथ उन पोथियों को मिला कर 'हजार बछरेर पुरान बाङ्ला भाषाय बौद्धगान ओ दोहा' नामक ग्रंथ का संपादन किया, जिसे 'बंगीय साहित्य परिषद' द्वारा प्रकाशित किया गया। इसी का संक्षिप्त नाम 'बौद्ध गान ओ दोहा' है। शास्त्री जी ने चर्याश्चर्यविनिश्चय की भाषा पर विशेष ध्यान देते हुए अपना अभिमत इन शब्दों में व्यक्त किया--"हमारा विश्वास है कि जिन्होंने यह भाषा प्रयोग की है, वे बंगाल तथा उसके निकटवर्ती अंचलों से संबंध रखते हैं। यह भी प्रमाणित है कि उनमें से अनेक बंगाली थे। यद्यपि कई ऐसे हैं, जिनकी भाषा में कुछ-कुछ व्याकरणिक भेद मिलता है, लेकिन सभी की भाषा बाङ्ला प्रतीत होती।" यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि प्राचीन बाङ्ला केवल चर्याश्चर्यविनिश्चय की थी, शेष पोथियों की भाषा अपभ्रंश-अवहट्ट थी।

सिद्धों की संख्या चौरासी मानी गई है। इनके नाम के साथ प्राय: 'पा' जुड़ा रहता है, जैसे--- सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंबिपा, कुक्कुरिपा, कण्हपा आदि। यह 'पा' सम्मानसूचक 'पाद' (जैसे, पूज्यपाद) का प्रतीक है। चौरासी सिद्धों में कनखलापा, लक्ष्मीकरा, मनिभद्रा और मेखलापा नामक चार स्त्री-सिद्ध भी हैं। स्मरणीय है कि नाथ संप्रदाय के मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालंधरनाथ, चौरंगीनाथ, चर्पटनाथ और नागार्जुन की गणना चौरासी सिद्धों में भी होती है।

सिद्धों ने 'सहजिया संप्रदाय' का प्रवर्तन किया था। इस कार्य में कण्हपा और लुइपा की विशेष भूमिका थी। कण्हपा ने ही सबसे पहले दसवीं शताब्दी में सहजिया पदों की रचना की थी, जो इस संप्रदाय के प्रमुख ग्रंथ 'चर्यापद' में संकलित हैं। सहजिया संप्रदाय का एक अन्य ग्रंथ 'बोधि-चर्यावतार' है। सहजिया बौद्ध सिद्ध पांडित्य, निगूढ़ ज्ञान, किसी ग्रंथ द्वारा निर्धारित नियम-संयम, निश्चित धर्माचार, गहन तत्व-चिंतन आदि को त्याज्य मानते थे। जाति, ऊँच-नीच की भावना, सामाजिक आडंबर, मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव के लिए सहजिया संप्रदाय में कोई स्थान नहीं था। वहाँ गुरु का महत्व सबसे अधिक बताया गया है। साधना में गुरु ही साधक का सच्चा मार्गदर्शक होता है।

सिद्ध साधकों के लिए 'सहज' की सिद्धि का अभिप्राय था, 'शून्य' की प्राप्ति। शून्य की प्राप्ति 'चतुष्कोटि विनिर्मुक्ति' की अवस्था है। नागार्जुन ने इसे एक प्रश्न के माध्यम से समझाया है। वे प्रश्न करते हैं कि, शून्य क्या है? इस प्रश्न के चार उत्तर हैं--- नहीं कहा जा सकता है कि वह है, नहीं कहा जा सकता कि वह नहीं है, नहीं कहा जा सकता है कि वह है और नहीं भी है, नहीं कहा जा सकता कि उसके होने अथवा नहीं होने वाला कथन सही है या गलत। यही चतुष्कोटि विनिर्मुक्ति शून्य की अवस्था है। शून्य को 'विज्ञानवादी विज्ञप्तिमात्रता' भी कहा गया है, जिसके अनुसार शून्य गगन, आकाश और रव है। शून्यता के ज्ञान को 'प्रज्ञा' बताया गया है। सिद्धों की यह दार्शनिकता चर्यागीतों को समझने में सहायक है।

चर्यापद प्राचीन बाङ्ला भाषा में रचित हैं। तत्कालीन भाषिक परिस्थितियों के कारण उस भाषा पर अवहट्ट और शौरसेनी अपभ्रंश का गहरा प्रभाव है। इस कारण चर्यापदों की भाषा

के निर्धारण में समस्या आती रही है। साहित्येतिहासकार सुकुमार सेन ने उल्लेख किया है कि, “चर्यागीत प्राचीन बाङ्ला में रचित होते हुए भी उनकी भाषा पर अवहट्ट का विशेष प्रभाव होने के कारण कोई-कोई उस भाषा को बाङ्ला मानने में संकोच करते हैं। कोई-कोई उसे प्राचीन हिंदी, प्राचीन मैथिली, प्राचीन उड़िया, प्राचीन असमीया--- अर्थात बाङ्ला को छोड़ कर अन्य कोई भारतीय आर्य भाषा--- समझते हैं। किंतु सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने अपने ग्रंथ ‘द ऑरिजिन एंड डवलपमेंट ऑफ द बंगाली लिटरेचर’ में प्रतिपादित किया है कि चर्यागीति की भाषा प्रधानत: और मूलत: बाङ्ला ही है।” भाषा विज्ञानी मुहम्मद शहीदुल्ला ने भी चर्यागीतों की भाषा को दसवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य प्रयुक्त बाङ्ला माना है।

भाषिक-स्वभाव की दृष्टि से चर्यागीतों की भाषा को ‘संधा भाषा’ अथवा ‘संध्या भाषा’ कहा गया है। इस संबंध में दो मत उल्लेखनीय हैं। पहला मत यह है, कि सिद्धाचार्यों ने अपनी रचनाओं में ‘कूट शैली’ अपनाई है तथा शब्दों का व्यवहार इस ढंग से किया है कि अर्थ सांध्यकालीन धुंधलके के रहस्यमय पर्दे में लिपटा हुआ-सा अनुभव होने लगता है। ऐसी भाषा को महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने ‘आलो-अंधेर भाषा’ नाम दिया है। इसे ही विद्वानों ने ‘संधा’ या ‘संध्या भाषा’ कह कर पुकारा है। दूसरा मत महामहोपाध्याय विधुशेखर शास्त्री का है, जो इससे सर्वथा भिन्न है। इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली (1928, पृ. 289) में प्रस्तुत उनके मत के अनुसार सिद्ध साहित्य की भाषा संध्या भाषा न होकर ‘संधा भाषा’ है। संधा मूलत: शब्द के भीतर दो अर्थों की संधि या मेल है, एक प्रचलित अर्थ और दूसरा साभिप्राय अर्थ। सिद्धों ने अपनी भाषा में शब्दों का प्रयोग साभिप्राय और निर्दिष्ट अर्थ में इस प्रकार किया है कि अर्थ के अनुधावन के लिए दार्शनिक मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए विशेष प्रयास करने पड़ते हैं।

**8.3.2.1.3. नाथ साहित्य :**

ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के काल में बंगाल सहित भारत के विभिन्न अंचलों में नाथ संप्रदाय की उपस्थिति एवं उत्कर्ष का उल्लेख मिलता है। यह भी माना जाता है कि बौद्ध सिद्धों के सहजिया संप्रदाय में वाममार्गी प्रवृत्तियों तथा नारीभोग साधना ने जो स्थान बना लिया था, उससे अलग हट कर नाथ संप्रदाय का विकास हठयोग साधना को केंद्र में रख कर हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ संप्रदाय के अनुसार हठयोग में ‘ह’ का अभिप्राय है सूर्य और ‘ठ’ का अभिप्राय चंद्रमा। ये दोनों साधनात्मक प्रतीक हैं और कुंडलिनी जागरण के माध्यम से ‘शून्य समाधि’ की दशा को प्राप्त किया जाता है। नाथ संप्रदाय में शिव को ‘आदिनाथ’ माना गया है। मृत्यु पश्चात मुक्ति के लिए नाथ हठयोगियों में न कोई आकर्षण है और न ही नाथ-दर्शन में उसका कोई स्थान। नाथ-साधक का लक्ष्य परम दिव्य अविकारी शरीर में ही शिवत्व की सिद्धि माना गया है। इसे अविकारी देह में अमरत्व की प्राप्ति कहा जाता है।

बाङ्ला नाथ साहित्य में प्राप्त दो कथाएँ उल्लेखनीय हैं--- शिव (आदिनाथ)-मीनानाथ-गोरखनाथ की कथा और गोपीचन्द्र की कथा। नाथ साहित्य प्राय: लिखित स्रोतों के स्थान पर मौखिक लोक-स्रोतों से संबंध रखता है। वह गान-परंपरा के सहारे लोक में जीवित रहा है। आगे चल कर उसका जो संकलित रूप उपलब्ध हुआ, उसकी भाषा प्राचीन बाङ्ला के बदले मध्यकालीन बाङ्ला के निकट प्रतीत होती है। इस कारण बाङ्ला नाथ साहित्य का काल-

निर्धारण विद्वानों के लिए अभी तक भी चुनौती बना हुआ है। यहाँ नाथ साहित्य का उल्लेख प्राचीन काल में ही किए जाने के दो सामान्य कारण हैं। पहला यह, कि नाथ संप्रदाय के अनेक साधक ऐसे हैं, जो सिद्धाचार्यों में भी गिने जाते हैं, अर्थात वे चौदहवीं शताब्दी के परवर्ती नहीं होंगे, और दूसरा यह, कि नाथ संप्रदाय सहजिया बौद्ध सिद्ध संप्रदाय के कालखंड में ही विकसित होने के कारण उसका साहित्य भी मूलत: उसी काल में रचा हुआ अनुमित किया जाना समीचीन होगा।

### 8.3.2.1.4. लौकिक साहित्य :

बाङ्‌ला भाषा के आदिकालीन लौकिक साहित्य में डाक और खना का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ने ही लोक के व्यावहारिक जीवनानुभवों को लोकोक्तियों की शैली में अभिव्यक्त किया है। बंगाली लोक इनकी उक्तियों को शताब्दियों से लोकोक्तियों के रूप में मानता और व्यवहार करता आ रहा है, लेकिन लोकसाहित्य के विद्वान इन्हें लोकोक्ति मानने में संकोच करते हैं। बाङ्‌ला लोकसाहित्य विज्ञानी खना और डाक की लोक-उक्तियों को 'वचन' कहे जाने के पक्षधर हैं।

डाक कोई कवि विशेष न होकर सहजिया बौद्ध साधकों का एक वर्ग था, जो लौकिक साहित्य भी रचता था। डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य ने डाक शब्द पर विचार करते हुए कहा है कि डाक "शब्द वैदिक भाषा का नहीं है और न कहीं प्राचीन संस्कृत काव्यों की भाषा में ही उपलब्ध है। इसलिए संस्कृत में इस शब्द का मूल उपलब्ध होने के विषय में संदेह है। इस शब्द का मूल तिब्बती भाषा का शब्द 'ग्डाग' (Gdag) है, जिसका अर्थ प्रज्ञा अथवा ज्ञान होता है। अत: यह तिब्बती-स्रोत से आगत शब्द है।" डाक की लोकोक्तियाँ साधारण लोकजीवन व्यवहार, धर्म का निर्वाह, नैतिकता और वैयक्तिक आचरण, मानव-स्वभाव, कृषि, मौसम के अनुसार खाद्य और अखाद्य का ध्यान, लोक-चिकित्सा आदि से अधिक संबंधित हैं।

खना के बारे में लोक में प्रचलित कथा के अनुसार खना प्रख्यात ज्योतिष और खगोलविद् वराह के पुत्र मिहिर की पत्नी थी। वह भी ज्योतिष शास्त्र की प्रख्यात विदुषी थी और उसे मौसम व कृषि के संबंध का भी ज्ञान था। इसीलिए खना के वचन मुख्यत: ज्योतिष विचार, कृषि, जलवायु, शुभाशुभ विचार आदि विषयों पर प्राप्त होते हैं। बाङ्‌ला लोक-साहित्य की अध्येता सुदेष्णा बसाक ने अपने ग्रंथ 'बाङ्‌लार प्रबाद' में कहा है कि "खना के वचनों पर ज्योतिष शास्त्र का प्रभाव है। खना ने ग्रह-नक्षत्रों के शुभाशुभ के हिसाब से गणना की है और उसके आधार पर कृषि संबंधी निर्देश दिए हैं। खना के वचनों में जलवायु के फलाफल के परिणामस्वरूप ऋतु-चक्र संबंधी बातें प्राप्त होती हैं।" (पृ. 17)।

हिंदी पट्टी में लोकप्रिय घाघ की बाङ्‌ला लोकोक्तियाँ पूर्वी बंगाल (वर्तमान बाङ्‌लादेश) के लोक-जीवन में भी खूब प्रचलित हैं, किंतु उन्हें वचन कहा जाता है। घाघ के साथ भी ज्योतिर्विद

वराह-मिहिर के संबंध को लेकर बंगाल क्षेत्र में एक किंवदंती प्रचलित है। खना और घाघ की लोकोक्तियों में अनेक समानताएँ मिलती हैं।

### 8.3.2.2. बाङ्ला साहित्य : मध्यकाल

### 8.3.2.2.1. राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

बाङ्ला साहित्य का मध्य काल बंगाल में सेन वंश तथा उसके बाद आए मुस्लिम शासन के कालखंड में समाया हुआ है।

सेन वंश : राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति और भाषा :

पाल वंश के पतन के बाद बंगाल में सेन वंश का शासन आया। इसका श्रेय सामंत सेन और उसके पुत्र हेमंत सेन को है। उसने सन् 1070 से 1096 तक शासन किया। उसके बाद विजय सेन (1096-1158), बल्लाल सेन (1158-1178), लक्ष्मण सेन (1178-1205) आदि ने राज्य किया। बंगाल में सेन-वंश के शासन, शासकों की नीतियों, उनके द्वारा धारण की गई उपाधियों, धर्म, संस्कृति, कला, आर्थिक दशा, भाषा, साहित्य आदि के लिए किए गए कार्यों का पर्याप्त विवरण आदिलपुर शिलालेख, केशवसेन शिलालेख, सनोखार प्रतिमा शिलालेख, बैरकपुर ताम्रलेख, नैहाटी ताम्रलेख के साथ ही तत्कालीन दस्तावेजों तथा उमापति धर द्वारा राचित 'देवपरा प्रशस्ति' जैसे काव्यों में मिलता है। इनसे पता चलता है कि शक्तिशाली शासक विजय सेन शिव का उपासक था। बल्लाल सेन ने शगुन-विचार पर 'दानसागर' और खगोलशास्त्र पर एक अपूर्ण ग्रंथ 'अद्भुतसागर' की रचना की थी। तत्कालीन ही नहीं, वर्तमान बंगाल के समाज को भी गहराई से प्रभावित करने वाले बल्लाल सेन के दो कार्य उल्लेखनीय हैं--- एक, बंगाल में 'जाति-व्यवस्था' की पुनर्स्थापना का प्रयास और दूसरा, 'कुलीनवाद' नामक आंदोलन की शुरुआत। आदिकालीन कवि जीमूतवाहन के काव्य 'दायभाग' में वर्णित हिंदू आचार-संहिता उसी समय लागू की गई थी। ढाका स्थित प्रसिद्ध 'ढाकेश्वरी मंदिर' भी बल्लाल सेन ने बनवाया था।

लक्ष्मण सेन बंगाल का पहला परम वैष्णव शासक था। उसकी उपाधि 'परम भागवत' थी। उसके काल में बंगाल में वैष्णव धर्म-मत उठ कर खड़ा हुआ। लक्ष्मण सेन के शासन-काल में गीतगोविंद के माध्यम से संस्कृत गीति-काव्य के प्रतिष्ठाता कवि जयदेव हुए। वे राजा लक्ष्मण सेन की राजसभा में प्रमुख कवि थे। प्रसिद्ध है कि गोवर्धनाचार्य, धोयी, शरण, उमापति धर, हलायुध आदि कवि भी राजा लक्ष्मण सेन की राजसभा में थे, जिन्हें 'जयदेव गोष्ठी' के कवि कहा जाता है। संस्कृत-कृति गीतगोविंद की लयात्मकता छंद, अनुप्रास और अंतरचेतना को प्राकृत की प्रवृत्तियों तथा बंगाल की लोक-काव्य-परंपरा ने प्रभावित किया था। दूसरी ओर इस कृति ने बाङ्ला वैष्णव गीति काव्य को सर्वाधिक प्रेरित किया।

**मुस्लिम शासन : राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति और भाषा :**

सन् 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक के सेनापति इख्तियार उद्दीन मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने लक्ष्मण सेन की राजधानी पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और बंगाल पर मुस्लिम शासन की नींव रख दी। उसके पश्चात बंगाल सन् 1757 में अंग्रेजों (ईस्ट इंडिया कंपनी) के आधिपत्य में जाने तक मुस्लिम शासकों के अधीन रहा। इतिहास के शोधकर्ताओं ने बंगाल पर मुस्लिम शासन की अवधि को तीन चरणों में बाँटा है--

सन् 1204-1338 : दिल्ली सल्तनत द्वारा नियुक्त शासकों का शासन ।

सन् 1340-1576 : बंगाल में स्वतंत्र सुल्तानों का शासन ।

सन् 1576–1757 : बंगाल मुगलों और नवाबों के शासन में।[1]

बंगाल पर शासन करने वाले मुस्लिम शासक तुर्क, अफगान, अबीसीनियन, फारसी और मुगल मूल के थे। यह आश्चर्यजनक लग सकता है कि इनमें से अधिकांश ने धार्मिक कट्टरता को अपनी राजकीय-नीति का अंग न बना कर धार्मिक-सहिष्णुता एवं प्रत्येक धर्म को फलने-फूलने देने की नीति का अनुसरण किया। अलाउद्दीन हुसेन शाह (1494–1519) नामक मुस्लिम शासक को उसकी उदार धार्मिक-दृष्टि के कारण 'बंगाल का अकबर' कहा जाने लगा। कवि विजय गुप्त ने उसे कृष्ण के अवतारों में से एक कहा।

मुस्लिम शासन-काल में अरबी, फारसी के साथ ही बाङ्ला भाषा को फलने-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। कवींद्र परमेश्वर और श्रीकर नंदी द्वारा महाभारत के बाङ्ला अनुवाद उसी काल में हुए। इसके अतिरिक्त सुल्तान जलालुद्दीन शाह और सुल्तान नसीरुद्दीन ने भी महाभारत को बाङ्ला में अनुवाद करने के प्रयास किए।

सहजिया वैष्णव संप्रदाय और बाङ्ला भाषा व साहित्य :

सेन-शासन में वैष्णव धर्म को राज-धर्म की प्रतिष्ठा मिली थी और शासकों की वैष्णवी भावना ने जनता को इस प्रकार प्रभावित किया था कि बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया के बावजूद बौद्ध-वैष्णव समन्वय संभव होने लगा था। इसमें बुद्ध की गणना भी हिंदू अवतारों में किए जाने की घटना ने सहयोग किया था। परिणाम यह हुआ कि पाल युग के सहजिया बौद्ध संप्रदाय के समान सेन युग में 'सहजिया वैष्णव संप्रदाय' का उदय हुआ। इसमें सहजिया बौद्धों के परकीया प्रेम को गीतगोविंद के राधा-कृष्ण में स्थान मिल गया और सहजिया बौद्ध परंपराओं का पालन करने वालों में से अनेक लोग सहजिया वैष्णव संप्रदाय में चले आए। संभव है, आगे चल कर इसमें परकीया प्रेम तत्व ने विकृतियाँ उत्पन्न की हों, इसीलिए चौदहवीं शताब्दी में बंगाल में

---

[1]. स्रोत : Muslim Treatment of Other Religions in Medieval Bangal, Moh. Iliyas and others, Sage Open, Vol. 10, Issue 4, Oct-Dec. 2020 ।

'नवीन वैष्णव जागरण' आया तथा बड़ चंडीदास ने सहज को पुनर्परिभाषित किया--- 'सहज सहज सबाइ कहय/सहज जानिबे के,/तिमिर अंधकार जे हैयाछे पार/सहज जेनेछे से।'

नवीन वैष्णव जागरण ने राधा-कृष्ण के प्रेम के माध्यम से बौद्ध सहजिया के नारी-भोग प्रधान परकीया प्रेम को 'अलौकिक प्रेम' में परिवर्तित कर दिया। बड़ चंडीदास ने ही अपनी प्रेमिका 'रामी रजकिन' को संबोधित करते हुए कहा--- 'सुन रजकिन रामी,/ओ दुटि चरण शीतल बोलिया,/शरण लेइलाम आमि।/रजकिन रूप, किशोरी स्वरूप,/कामगंध नाहि ताय,/ना देखिले मन, करे उचाटन,/देखिले परान जुड़ाय।'

डॉ. सत्येन्द्र ने माना है कि सहजिया वैष्णव संप्रदाय के चौदह वैष्णव कवियों ने अड़तीस रचनाएँ बाङ्ला भाषा में की थीं। इसी आधार पर वे कहते हैं कि "चंडीदास से आरंभ होकर सहजिया संप्रदाय की एक धारा चली, जिसने पर्याप्त साहित्य बाङ्ला भाषा को प्रदान किया। ये सभी वैष्णव सहजिया थे और राधा-कृष्ण के परकीया प्रेम का माध्यम उन्होंने ग्रहण किया था।" (बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 72)।

सत्यपीर संप्रदाय और बाङ्ला भाषा व साहित्य :

'बंगाल का अकबर' कहे जाने वाले मुस्लिम शासक गौड़ेश्वर हुसेन शाह (1494–1519) ने 'सत्यपीर' संप्रदाय का प्रवर्तन किया था। हुसेन शाह को बंगाल में धार्मिक-समन्वय को बढ़ावा देने वाले शासकों में अग्रगण्य माना जाता है। उल्लेखनीय है कि मुगल शासक अकबर (1556 – 1605) से बहुत पहले हुसेन शाह ने सत्यपीर संप्रदाय के रूप में एक ऐसा धार्मिक संप्रदाय प्रारंभ किया था, जिससे बिना किसी भेदभाव के सभी जुड़ सकते थे और जिसके देवता 'सत्यपीर' को समस्त धर्मों को मानने वाले अपना देवता मान सकते थे।

सत्यपीर संप्रदाय के मूल ग्रंथ के रूप में बाङ्ला भाषा में 'सत्यपीर मंगल' की रचना की गई। सन् 1734 में फकीरचंद नामक कवि ने सत्यपीर की कथा लिखी, जो बंगाल के लोक-जीवन में एक बहुप्रचलित लोककथा है।

सूफी संप्रदाय और बाङ्ला भाषा व साहित्य :

बाबा आदम शाहिद, शाह सुल्तान आदि सूफी साधक मुस्लिम शासन के पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी में ही बंगाल आ गए थे। मुस्लिम शासन काल में बड़ी संख्या में अरब, ईरान, ईराक, यमन और मध्य एशिया के विभिन्न क्षेत्रों से सूफियों का बंगाल आना हुआ। इसके अतिरिक्त वहाँ से उत्तर भारत आने वाले सूफियों में से भी अनेक बंगाल पहुँचे।

बंगाल के सांस्कृतिक जीवन तथा बाङ्ला भाषा और साहित्य को प्रभावित करने में सूफियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने भाषा, साहित्य, आध्यात्मिक कथाओं और जीवन-शैली में बाङ्ला भाषा, बाङ्ला लोक-परंपराओं, कथाओं, किंवदंतियों, लोकाचारण आदि को प्रधानता

दी। सूफियों ने एक ओर फारसी सूफी साहित्य का बाङ्ला में अनुवाद किया, दूसरी ओर स्वतंत्र रूप में ग्रंथ-रचना की। बाङ्ला सूफी साहित्य को दो वर्गों में रखा जाता है। पहला, सूफी-दर्शन के विविध पक्षों से संबंधित साहित्य। इसके अंतर्गत आद्य परिचय (शेख ज़ाहिद), आगम, ज्ञानसागर (कानू फकीर के रूप में प्रसिद्ध अली राजा), हर-गौरी संवाद (शेख चाँद) आदि का उल्लेख किया जा सकता है। दूसरा वर्ग सूफी पदावली अथवा सूफी-पद के अंतर्गत आने वाली छोटी-छोटी गीत-रचनाओं का है। बाङ्ला में अफजल अली रजा, शेख चाँद, ऐनुद्दीन आदि प्रसिद्ध सूफी-पदकर्ता हुए हैं। सूफियों ने बंगाल में सूफी भक्ति संगीत की एक विशेष शैली 'कव्वाली' प्रारंभ की। इसके अतिरिक्त मसनवी, गजल और रुबाई का भी विकास किया। बाङ्ला भाषा में आगत फारसी और अरबी शब्दावली मुख्य रूप से सूफी साहित्य की देन है।

गौड़ीय वैष्णव मत और बाङ्ला भाषा व साहित्य :

सेन-युग में विकसित वैष्णव भावना के कारण निर्मित भूमि पर बंगाल में श्रीमाधवेंद्र पुरी ने राधा-कृष्ण भक्ति की धारा प्रवाहित की थी। यही धारा रागानुगा अथवा प्रेमाभक्ति आधारित गौड़ीय वैष्णव मत के मूल में है। प्रसिद्ध विद्वान प्रभुदयाल मीतल ने अपने ग्रंथ 'चैतन्य मत और ब्रज साहित्य' में सिद्ध किया है कि "माधवेंद्र पुरी जी चाहे दाक्षिणात्य हों और चाहे बंगाली, किंतु यह प्राय: निश्चित है कि बंगाल में कृष्ण भक्ति के व्यापक प्रचार की आधारशिला उन्हीं के द्वारा रखी गई थी। वे मध्व संप्रदाय के अंतर्गत 'राधा-भाव' के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी यह विशिष्ट मान्यता ही चैतन्य मत की प्रेमाभक्ति का मूल कारण रही है। उन्होंने जयदेव और चंडीदास के गीतों की ध्वनि के साथ बंगाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया था।" (पृ. 74)। प्रारंभिक चरण में मध्व संप्रदाय से निकट संबंध के कारण गौड़ीय वैष्णव मत का एक नाम 'माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय' भी प्रचलित था।

गौड़ीय वैष्णव मत के केंद्र में चैतन्य महाप्रभु (1486 – 1533) हैं। उन्होंने राधा-कृष्ण भक्ति का उपदेश देते हुए अपने अनुयायियों को बताया कि सच्चिदानंद परम तत्व की साधना ज्ञान, योग और भक्ति से की जा सकती है। इनमें से ज्ञान तत्व ब्रह्म का आभास कराता है, योग से ब्रह्म की अनुभूति उपलब्ध होती है, जबकि भक्ति से भगवान स्वयं ही भक्त के वश में हो जाते हैं; अत: प्रेम-विह्वल होकर राधा-कृष्ण की भक्ति के साथ हरिनाम-संकीर्तन करना ही भक्त का धर्म है। यह संपूर्ण वैष्णव भक्ति आंदोलन को बंगाल के नदिया में विकसित गौड़ीय वैष्णव आंदोलन की देन कही जा सकती है। सच्चे वैष्णव की पहचान बताते हुए चैतन्य महाप्रभु ने कहा था कि सच्चा वैष्णव वही है, जिसकी जिह्वा पर कृष्ण-नाम विराजमान हो और जिसके दर्शन मात्र से अन्य भी कृष्ण-नाम का उच्चारण करने लगें।

गौड़ीय वैष्णव मत ने मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य को भाषा, रचना-शैली और साहित्यिक वैशिष्ट्य के स्तर पर प्रभावित किया। बाङ्ला गीत-काव्य का सर्व श्रेष्ठ इसी मत के

भक्त-रचनाकारों की देन है। चैतन्य महाप्रभु जयदेव के गीतगोविंद, चंडीदास के श्रीकृष्ण कीर्तन और विद्यापति की पदावली का गान करते हुए प्रेम-विह्वल होकर बाह्य-चेतना खो देते थे। विद्यापति पदावली के अनुकरण पर गौड़ीय वैष्णव भक्त-रचनाकारों द्वारा बाङ्ला वैष्णव पदावली की रचना के क्रम में ही ब्रजबुलि (या ब्रजाली) भाषा का विकास हुआ था। बाङ्ला साहित्य पर चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव के कारण मध्यकालीन बाङ्ला साहित्येतिहास का काल-विभाजन उन्हीं को केंद्र में रख कर किया जाता है।

### 8.3.2.2.2. मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य

मध्यकालीन बाङ्ला साहित्येतिहास के दो कालखंड हैं---

पूर्व चैतन्य युग अथवा पूर्व मध्यकाल : 13वीं से 15 वीं शताब्दी

चैतन्य युग अथवा उत्तर मध्यकाल : 16 वीं से 18 वीं शताब्दी

### 8.3.2.2.2.1. : पूर्व चैतन्य युग अथवा पूर्व मध्यकाल

वैष्णव काव्य चंडीदास और उनका श्रीकृष्ण कीर्तन :

पूर्व चैतन्य युग के सर्वमान्य कवि चंडीदास हैं। उनके काव्य का नाम 'श्रीकृष्ण कीर्तन' (श्रीकृष्ण कीर्तन काव्य) है। उल्लेखनीय है कि बंगाल में एक से अधिक कवि चंडीदास होने का अनुमान है। इनमें से एक तो चैतन्य युग में हुए माने जाते हैं। इन सभी के वैष्णव गीत पूर्व चैतन्य युग के चंडीदास के नाम से जाने जाते थे, जिनकी संख्या एक हजार के लगभग थी। लेकिन श्रीकृष्ण कीर्तन की प्रति मिल जाने के बाद यह सिद्ध हुआ कि पूर्व चैतन्य युग के कवि चंडीदास ने लगभग पाँच-सौ गीतों की रचना की होगी। इन्हीं चंडीदास के 'बडु चंडीदास' और 'अनंतबडु चंडीदास' नाम भी मिलते हैं।

श्रीकृष्ण कीर्तन की पाण्डुलिपि सन् 1909 में बसंतरंजन राय विद्वतबल को बाँकुरा के देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के घर मिली थी। इसका पहला और अंतिम पन्ना नष्ट हो गया था, किंतु गीतों की पुष्पिकाओं (भणिताओं) में कवि का नाम था। इसी पाण्डुलिपि से यह भी पता चला कि चंडीदास ग्रामदेवी बासुली के भक्त थे तथा उसी देवी को अपने काव्य की प्रेरक शक्ति मानते थे। बंगीय साहित्य परिषद ने सन् 1916 में बसंतरंजन राय विद्वतबल के संपादन में 'श्रीकृष्ण कीर्तन' का प्रकाशन किया।

श्रीकृष्ण कीर्तन में 418 बाङ्ला वैष्णव गीत और 133 संस्कृत श्लोक हैं। गीतों को जन्म, ताम्बूल, दान, नौका, कर, भार, वृंदावन, यमुना, बाण, बाँसी, राधा-विरह आदि तेरह खंडों में विभक्त किया गया है। गीतों में राग का उल्लेख भी मिलता है। चंडीदास के वैष्णव गीतों की भाषा 14वीं-पंद्रहवीं शताब्दी में प्रचलित बाङ्ला है। चंडीदास ने श्रीकृष्ण कीर्तन के गीतों में राधा और कृष्ण की जो कथा कही है, वह बड़ाइ नामक पात्र के कारण बहुत रोचक हो गई है। बड़ाइ राधा की दादी है, जिसे कृष्ण राधा तक अपना प्रेम-प्रस्ताव पहुँचाने के लिए माध्यम के

रूप में प्रयोग करते हैं। इसके बाद वह राधा और कृष्ण के प्रेम के सभी उतार-चढ़ावों में उपस्थित है।

कृष्ण और राधा अलौकिक पात्र और शाश्वत प्रेमी-प्रेमिका हैं। उनका प्रेम भी अलौकिक और आध्यात्मिक है, लेकिन चंडीदास ने स्थान-स्थान पर इस अलौकिकता को लौकिकता के स्तर पर उतारा है। राधा का सौंदर्य-वर्णन उसे ठेठ बंगाली युवती का रूप देता लगता है और कृष्ण की प्रेम-प्राप्ति-चेष्टाएँ भी इसी जगत के किसी प्रेमी नायक से मिलती-जुलती लगती हैं। इस कवि-योजना ने लौकिक और अलौकिक, पार्थिव और अपार्थिव प्रेम के बीच ऐसे संबंध-सूत्र निर्मित कर दिए हैं कि कृष्ण और राधा प्रेमाध्यात्म की लीला करते हुए भी साधारण लोक के अपने बने रहते हैं।

**कवि सार्वभौम विद्यापति :**

मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात विद्यापति को दीर्घ-काल तक बाङ्ला के कवियों में स्थान दिया जाता रहा। त्रैलोक्य भट्टाचार्य ने चंडीदास के साथ विद्यापति को भी बाङ्ला कविता को सजीव एवं आकर्षक रूप देने वाले अतुलनीय प्रतिभावान कवि कहा था। सन् 1875 में बंगदर्शन के अंक में राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने प्रमाण उपस्थित कर सिद्ध किया कि विद्यापति बाङ्ला के नहीं, मैथिली भाषा के कवि हैं। इस विवाद को परे सरकाते हुए यह ध्यान रखना होगा कि विद्यापति ने बंगाल की वैष्णव भक्ति और वैष्णव कवियों को प्रभावित भी किया और प्रेरित भी। विद्यापति के पदों ने बंगाल पहुँच कर बाङ्ला, उडिया और मैथिली के सहारे ब्रजबुलि भाषा को जन्म दिया, जो वैष्णव गीत काव्य का मुख्य आधार बनी। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने चंडीदास को 'संगीत और भाव का कवि' कहा है, जबकि विद्यापति को 'रूप का कवि'। बाङ्ला वैष्णव भक्ति और बाङ्ला वैष्णव गीति में जिस 'विह्वल-प्रेम भक्ति' का सर्वोच्च महत्व है, उसमें संगीत, भाव और रूप केंद्रीय तत्व हैं; अर्थात चंडीदास के साथ विद्यापति के बिना बाङ्ला साहित्य की मूल वैष्णव चेतना पूरी नहीं होती।

**मंगल काव्य**

बंगाल के धार्मिक-सांस्कृतिक इतिहास की विशिष्ट घटना के प्रभाव में रचा गया मंगल-साहित्य मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य की विशेष उपलब्धि है। पाल-युग में सहजिया बौद्ध संप्रदाय में जांगुली तारा आदि अनेक देव-देवियों ने अपना स्थान बना लिया था और वे लोक-जीवन में भी प्रचलित होने की चेष्टा करने लगे थे। बौद्धों से प्रभावित एक 'धर्म ठाकुर संप्रदाय' बना था, जिसके देवता धर्म ठाकुर थे। जब सेन-युग में बौद्ध धर्म का पतन और वैष्णव धर्म की नवीन प्रतिष्ठा हुई, तो वहाँ सहजिया वैष्णव संप्रदाय का उदय हुआ, जिसमें बड़ी संख्या में सहजिया बौद्ध शामिल हो गए। इन्हीं सहजिया बौद्धों के साथ उनके देवी-देवता भी चले आए। बुद्ध के हिंदू अवतार में परिणत हो जाने ने इन देवी-देवताओं को बंगाल के वैष्णव लोक-समाज

में प्रतिष्ठित होने में सहायता की। फलत: अभी तक ग्राम्य और अनार्य माने जाने वाले धर्म ठाकुर, जांगुली तारा, चंडी, बासुली आदि ने वैष्णव (हिंदू) देवी-देवता बनने की कोशिश शुरू कर दी। लेकिन यह भी उल्लेखनीय है कि ब्राह्मणवाद से प्रभावित उच्च वर्गीय बंगाली समाज ने प्रारंभ में इन देवी-देवताओं को स्वीकार नहीं किया। ये तत्कालीन निम्नवर्गीय और ग्राम्य बंगाली लोक द्वारा ही अपनाए गए।

यही वह बिन्दु है, जिसने मंगल साहित्य की नींव रखी; अर्थात अनार्य (अहिंदू) देवी-देवताओं को, अपने को आर्य (हिंदू) देवी-देवता सिद्ध करने और निम्न वर्ग के साथ ही उच्च वर्ग द्वारा भी पूजित होने के प्रयास में जिस अपार्थिव-शक्ति, अभक्तों के विनाश, भक्तों के कल्याण की क्षमता, अलौकिक व्यक्तित्व, पौराणिक स्रोतों से संबंध आदि का प्रदर्शन करना पड़ा, उसी का वर्णन करने वाली रचनाएँ 'बाङ्ला मंगल साहित्य' हैं। भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं के आधार पर बाङ्ला साहित्य में मंगल साहित्य के अनेक वर्ग निर्मित हुए, जैसे--- मनसा मंगल, चंडी मंगल, धर्म मंगल, शिव मंगल आदि।

**मनसा मंगल :**

मनसा मंगल साहित्य की रचना के प्रारंभ का श्रेय हरिदत्त को है। उनके पश्चात आलोच्य काल में पुरुषोत्तम, नारायण देव, विजय गुप्त और विप्रदास का नाम आता है।

विजय गुप्त का मनसा मंगल अथवा पद्मा पुराण :

विजय गुप्त पंद्रहवीं शताब्दी के मुस्लिम शासक सुल्तान हुसेन शाह के आश्रित कवियों में से एक थे। उन्होंने 'मनसा मंगल' काव्य की रचना की, जिसके केंद्र में 'मनसा' देवी है। मनसा सर्पों की अधिष्ठात्री देवी है। यह भी प्रचलित है कि मनसा शिव की मानस कन्या है और उसका जन्म पद्म-सरोवर में हुआ था; अत: विजय गुप्त के मनसा मंगल का एक नाम 'पद्मा पुराण' भी है। विजय गुप्त के मनसा मंगल की कथा के मूल सूत्र अन्य सभी मंगल काव्यों के ही समान हैं।

मनसा मंगल काव्यों की मूल कथा :

मनसा मात्र निम्न वर्ग की पूजा से संतुष्ट नहीं है, वह चाहती है कि उच्च वर्ग में भी उसकी प्रतिष्ठा हो। यहाँ चाँद सौदागर का प्रसंग आता है। चाँद सौदागर चंपकनगरी का अति प्रतिष्ठित व्यापारी था। वह शिव भक्त था। मनसा सोचती थी कि यदि वह शिव के उपासक चाँद सौदागर से अपनी पूजा करवा पाए, तो अन्य उच्च वर्ग भी उसे पूजा देने लगेंगे। लेकिन चाँद सौदागर मनसा की पूजा के लिए तैयार नहीं होता। इससे कुपित होकर मनसा उसके छ: पुत्रों का विनाश कर देती है। व्यापार के लिए बाहर जाने पर उसका सारा सामान समुद्र में डूब जाता है। वह उसके पुत्र लखीन्दर को भी लोहे के कमरे में नाग भेज कर डसवा देती है। लखीन्दर की नवोढ़ा पत्नी बेहुला मनसा द्वारा उत्पन्न बाधाओं और कष्टों को पार करके पति के शव के साथ स्वर्ग पहुँच जाती है। वहाँ शिव के कहने पर मनसा लखीन्दर के प्राण वापस कर देती है। चाँद

सौदागार के अन्य पुत्रों के प्राण भी वापस हो जाते हैं। इसके बाद अपनी हठ पर अड़ा चाँद सौदागर बेहुला के अनुनय-विनय करने पर बाएँ हाथ से पूजा का पुष्प फेंक कर मनसा की पूजा करता है। अनिच्छा पूर्वक और बाएँ हाथ से ही सही, मनसा चाँद सौदागर से अपनी पूजा करवाने में सफल हो जाती है। उच्च वर्ग में मनसा की पूजा का द्वार खुल जाता है।

**अनूदित साहित्य**

**कृत्तिवासी रामायण (श्रीराम पाँचाली) :**

कृत्तिवासी रामायण बंगाल का 'जातीय महाकाव्य' है। इसे अनूदित रामायण कहा जाता है, किंतु यह परंपरागत अर्थ में अनुवाद न होकर वाल्मीकि रामायण को मूल स्रोत के रूप में ग्रहण करते हुए बंगाल के विभिन्न लोक-स्रोतों और अन्य क्षेत्रों से प्राप्त सामग्री के आधार पर रची गई है।

कृत्तिवास ओझा को कुछ विद्वान चौदहवीं शताब्दी का कवि मानते हैं, जबकि कुछ पंद्रहवीं शताब्दी का। प्रसिद्ध है कि कृत्तिवास महाकवि श्रीहर्ष के वंशज थे। उनके पूर्वज कन्नौज से बंगाल के फूलिया ग्राम में आ बसे थे। काव्य-प्रतिभा के प्रस्फुटन के बाद जब वे तत्कालीन बंगाल महाराज की राजसभा में गए, तो राजा ने उनसे वाल्मीकि रामायण को बाङ्ला भाषा में अनुवाद करने का आग्रह किया। इस प्रकार कृत्तिवासी रामायण जैसा अद्‌भुत ग्रंथ बंगाल की जनता को सुलभ हुआ।

कृत्तिवासी रामायण को बंगाली लोक-जीवन में 'रामायण पाँचाली' अथवा 'श्रीराम पाँचाली' भी कहा जाता है। इसका कथानक छ: कांडों में विभक्त है--- आदि कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड और लंका कांड। रचना पयार त्रिपदी छंद में हुई है। भाषा अति सहज और सरल बाङ्ला है। कृत्तिवासी रामायण के राम विष्णु के अवतार हैं, किंतु उनमें देवत्व की अपेक्षा सामाजिक और मानवी आदर्शों की प्रधानता है। कृति में बंगाल का लोक-जीवन जीवंत हो उठा है। सीता, राम, लक्ष्मण आदि सभी बंगाल के लोक-समाज के पात्र जैसे चित्रित हुए हैं। कृत्तिवासी रामायण के कुछ प्रसंग कवि की अभिनव कल्पना और उद्भावना शक्ति के परिचायक हैं, जैसे--- मंदोदरी व राम की भेंट, रावण-मांधाता युद्ध, राम द्वारा शक्ति की पूजा आदि।

**महाभारत :**

अनेक साहित्येतिहासकारों ने खोज करके पता लगाया है कि बाङ्ला भाषा में महाभारत के अनुवाद का पहला प्रयास संजय नामक कवि ने किया था। यह अनुवाद गौड़ सुल्तान नासिर शाह के आग्रह पर सन् 1325 के कुछ पूर्व किए जाने का अनुमान किया जाता है। यह भी पता चलता है कि संजय कृत अनुवाद अपूर्ण था। पूर्व मध्य-काल में महाभारत के बाङ्ला अनुवाद का व्यवस्थित प्रयास सुल्तान हुसेन शाह के शासन-काल में हुआ। चट्‌ट्ग्राम के तत्कालीन सूबेदार

परागल खाँ के आश्रित कवि 'कवीन्द्र परमेश्वर' ने अपने आश्रयदाता के आग्रह पर महाभारत के बाङ्ला अनुवाद का कार्य प्रारंभ किया। कवीन्द्र परमेश्वर का अनुवाद पयार छंद में है। इसे 'कवीन्द्र महाभारत' भी कहा जाता है। परागल खाँ की मृत्यु के बाद सूबेदार बने उसके पुत्र छुट्टी खाँ ने श्रीकरण नंदी नामक कवि से महाभारत के अश्वमेध पर्व का बाङ्ला में अनुवाद करवाया। यह अनुवाद जैमिनीय भारत के आधार पर किया गया।

**श्रीमद्भागवत का अनुवाद :**

बंगाल के शासक गौड़ेश्वर सुल्तान रुक्नुद्दीन बरबक शाह के आश्रित कवि मालाधर बसु ने सन् 1473 से 80 के बीच श्रीमद्भागवत के दशम एवं एकादश स्कंध का बाङ्ला अनुवाद किया। सुल्तान ने मालाधर बसु को 'गुणराज खाँ' की उपाधि प्रदान की थी। मालाधर बसु के अनुवाद का नाम 'श्रीकृष्ण विजय' है। कहीं-कहीं इस ग्रंथ के 'श्रीकृष्ण मंगल', 'गोविंद मंगल' और 'गोविंद विजय' नाम भी मिलते हैं। दशम स्कंध में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर द्वारका तक की कथा है, जिसका वैष्णव मत के अनुयायियों के लिए सर्वाधिक महत्व है। यह वैष्णवों का सर्वप्रिय ग्रंथ है। श्रीकृष्ण विजय चैतन्य महाप्रभु को भी अति प्रिय था। मालाधर बसु ने जयदेव के गीतगोविंद से प्रेरित होकर राधा को श्रीकृष्ण-कथा का अंग बनाया है, जिसमें उसे अपूर्व सफलता मिली है। इन सब कारणों से श्रीकृष्ण विजय बंगाल में वैष्णव आस्था के प्रसार का मुख्य आधार माना जाता है।

### 8.3.2.2.2.2. चैतन्य युग अथवा उत्तर मध्यकाल

**वैष्णव पदावली**

उत्तर मध्य कालीन बाङ्ला वैष्णव पदावली के केंद्र में राधा-कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु हैं। द्विज चंडीदास, लोचनदास, बलरामदास, मुरारि गुप्त, कवि शेखर, राय शेखर, नरहरि सरकार, वासुदेव घोष आदि एक-सौ से भी अधिक पदकर्ता-कवियों के लगभग तीन हजार पद बाङ्ला वैष्णव काव्य की अमूल्य संपदा हैं। वैष्णव पदावली के दो वर्ग हैं--- कृष्ण संबंधी पदावली और चैतन्य महाप्रभु संबंधी पदावली।

**कृष्ण संबंधी पदावली :** इसके अंतर्गत तीन प्रकार के पद आते हैं---

**गोष्ठ लीला :** गोष्ठ लीला पदों की तीन श्रेणियाँ है। पहली, गोष्ठ--- कृष्ण द्वारा गोचारण, कंस के भेजे दैत्यों के वध और कालियदमन आदि की लीलाएँ, दूसरी देव-गोष्ठ--- ग्वाल-बाल द्वारा माता यशोदा से बाल-कृष्ण की लीलाओं का बखान, और तीसरी, उत्तर गोष्ठ--- बाल कृष्ण के गाय चराने के लिए चले जाने पर यशोदा की व्याकुलता तथा कृष्ण का वन से लौटना।

**राधा-कृष्ण प्रेम :** इसके अंतर्गत राधा-कृष्ण प्रेम तथा कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा के विरह संबंधी पद आते हैं।

**प्रभास लीला :** इसमें कृष्ण द्वारा प्रभास-क्षेत्र में धनुर्यज्ञ के आयोजन, वृंदावन वासियों का आमंत्रिन न किए जाने पर भी यज्ञ में सम्मिलित होने पहुँच जाने, राधा द्वारा कृष्ण से मिलने का प्रयास करने पर द्वारपालों द्वारा उसे रोक देने और कृष्ण द्वारा बलदेव से माता यशोदा, सखा ग्वाल-बालों एवं राधा के बारे में जिज्ञासा करने संबंधी पद आते हैं।

**चैतन्य महाप्रभु संबंधी पदावली :** गौड़ीय वैष्णव मत के अनुयायियों के बीच चैतन्य महाप्रभु को गौरांग महाप्रभु भी कहा जाता है। उन पर केंद्रित पदावली के तीन वर्ग हैं---

**गौरांग जीवन-लीला :** इसके अंतर्गत गौरांग महाप्रभु के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करने वाले पद आते हैं। चैतन्य द्वारा घर का त्याग करने और संन्यास ग्रहण करने संबंधी घटनाएँ भक्तों को भाव-विह्वल करने वाली हैं। चैतन्य का बाल्य-काल का एक नाम निमाई था। उनके संन्यास की घटना को 'निमाई संन्यास' के नाम से पदों में गाया गया है।

**अवतारी गौरांग :** अद्वैताचार्य ने चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का पूर्णावतार घोषित किया था। इसलिए वैष्णव कवियों ने बड़ी संख्या में ऐसे पदों की रचनाएँ की है, जिनमें चैतन्य नदिया में वैसी ही अवतारी लीलाएँ करते हैं, जैसी कृष्ण ने वृंदावन में की थीं।

**प्रेम विह्वल गौरांग :** चैतन्य चरितामृत ग्रंथ में उल्लेख है कि गौरांग महाप्रभु गीतगोविंद के गीत और श्रीकृष्ण कीर्तन तथा विद्यापति के पद गाते-गाते भाव-विभोर हो जाते थे। वे कभी राधा के रूप में कृष्ण के वियोग को अनुभव करते थे, तो कभी कृष्ण के रूप में राधा के प्रेम में डूब जाते थे। प्रेम और विरह की ये दशाएँ उन्हें कई बार बाह्य-चेतना-शून्य कर देती थीं। प्रेम विह्वल गौरांग की इन दशाओं का वर्णन करने वाले अनेक पदों की रचना वैष्णव कवियों ने की है।

**वैष्णव पदावली : कीर्तन और जात्रा-गीत :**

पद-रचना और कीर्तन-गायन मूलत: बंगाल की लोक-संस्कृति की देन है। गौड़ीय वैष्णव मत ने उसे वहीं से ग्रहण करके वैष्णव आराधना विधान का अंग बनाया और अभूतपूर्व रूप में विकसित किया। चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से पद-गायन के दो रूप विशेष रूप से विकसित हुए--- एक, वैष्णव-भक्तों की कीर्तन मंडलियों के माध्यम से कीर्तन-गायन और दो, यात्रा-गीत। प्रारंभ में चैतन्य महाप्रभु के साथ यात्रा करने वाले भक्त मार्ग में जहाँ भी रात्रि-विश्राम हेतु ठहरते थे, वहीं कीर्तन-गायन करते थे। धीरे-धीरे इसमें नाट्य तत्व भी जुड़ गया। इस प्रकार पद-गायन और नाट्य के सम्मिश्रण से एक नवीन लोक रंगमंच 'यात्रा' विकसित हुआ, जिसे बाङ्ला की भाषिक प्रकृति के कारण 'जात्रा' कहा गया। प्रसिद्ध है कि जात्रा में चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण और राधा दोनों का अभिनय करते थे। जात्रा में किए जाने वाले कीर्तन में गाए जाने वाले वैष्णव-पदों को 'जात्रा-गीत' कहा गया।

**मुसलमान वैष्णव कवि :**

राध-कृष्ण विषयक पद-रचना करके वैष्णव-चेतना के प्रसार में सहयोग देने और बाङ्ला वैष्णव काव्य को समृद्ध बनाने वाले कवियों की सूची में अनेक नाम इस्लाम धर्म से संबंध रखने वाले कवियों के भी हैं। इनमें से राधा-कृष्ण के लीला-पदों की रचना करने वाले नासिर महमूद और वैष्णव पद-रचना के साथ ही 'ज्ञानसागर' एवं 'ध्यानमाला' नामक वैष्णव-ग्रन्थों की रचना करने वाले सैयद मुर्तजा के नाम उल्लेखनीय हैं।

**गौड़ीय वैष्णव मत का सिद्धांत साहित्य**

गौड़ीय वैष्णव मत के दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन तथा उपासना पद्धति का विवेचन करने वाले ग्रन्थों में सिद्धांत चंद्रोदय, भक्तितत्व चिंतामणि, रसभक्ति चन्द्रिका, उपासना पटल, प्रेमभक्ति चन्द्रिका, स्वरूप कल्पतरु आदि महत्वपूर्ण हैं।

**गौड़ीय वैष्णव मत का जीवनी साहित्य**

जीवनी-साहित्य उत्तर मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य की नवीन उपलब्धि है। चैतन्य महाप्रभु की उनके जीवन-काल में ही कृष्ण के पूर्ण अवतार के रूप में प्रतिष्ठा हो जाने के कारण अनेक भक्त कवियों के मन में उनकी जीवन-लीला को आधार बना कर जीवनी लिखने की प्रेरणा जागी। विवरणों से ज्ञात होता है कि एक भक्त गोविंददास करमकर चैतन्य के साथ ही रहते थे और उनके जीवन की घटनाओं को उनसे छिपा कर कड़छा, अर्थात संक्षिप्त विवरण के रूप में लिखते जाते थे। वे इसी शैली में गौरांग महाप्रभु के यात्रा-विवरण भी एकत्र करते जाते थे। अन्य भक्त-कवि भी अपने-अपने ढंग से महाप्रभु की पद्यबद्ध जीवनियाँ लिखते थे। आगे चल कर चैतन्य महाप्रभु के अतिरिक्त अद्वैताचार्य जैसे कुछ विशिष्ट भक्तों की जीवनियाँ भी लिखी गईं। चैतन्य भागवत (वृंदावनदास), चैतन्यमंगल (लोचनदास), चैतन्य चरितामृत (कृष्णदास कविराज) गौरांग महाप्रभु की उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं। गोविंददास के चरित ग्रंथ अद्वैतमंगल, नरोत्तमविलास, प्रेमविलास, अद्वैतप्रकाश, भक्ति रत्नाकर आदि भी वैष्णव भक्तों में लोकप्रिय रहे हैं। सभी ग्रन्थ मुख्यत: पयार छंद में रचे गए हैं। गौड़ीय वैष्णव जीवनी ग्रन्थों में काव्य-सौंदर्य खोजने में भले ही कुछ कठिनाई हो, लेकिन तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से इनका महत्व है।

**मंगल काव्य**

**मनसा मंगल :** बाङ्ला साहित्य के प्राचीन काल की मनसा मंगल काव्य परंपरा उत्तर मध्य काल में भी जारी रही। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के कवि द्विज वंशीदास ने मनसा मंगल की रचना की। इसमें पूर्व परंपरा से यह अंतर है कि चाँद सौदागर को शिव के बदले चंडी-भक्त बताया गया है। मनसा का एक नाम केतका भी था। अपने को केतकादास कहने वाले सत्रहवीं शताब्दी के कवि क्षेमानंद का मनसा मंगल इस परंपरा का महत्वपूर्ण काव्य माना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी के ही जगज्जीवन घोषाल ने मंगल काव्य रचा। रचना में नवीनता लाने के लिए उन्होंने अपने काव्य में देवखंड और चाँद-बेहुला खंड बनाए। सन् 1844 में जगमोहन सिंह ने भी मनसा मंगल की रचना की।

**चंडी मंगल :** चंडी देवी के स्वरूप और शक्ति की पहचान दो स्रोतों से संबंध रखती है--- मार्कण्डेय पुराण वाला पौराणिक स्रोत और व्याधों व शबरों की देवी वाला आर्येतर स्रोत। चंडी मंगल काव्य में दूसरे स्रोत का ही अधिक उपायोग किया गया है।

चंडी मंगल काव्य में दो कथाएँ प्रचलित हैं। कालकेतु व्याध की कथा और धनपति सौदागर की कथा। पहली कथा में बताया गया है कि जब कालकेतु नामक व्याध के निरंतर शिकार के कारण जंगल के पशु भयभीत हो गए, तो वे अपनी जीवन-रक्षा की प्रार्थना लेकर चंडी के पास गए। चंडी ने इसे अपने को व्याध समुदाय में प्रतिष्ठित करने और उसकी पूजा पाने के अवसर के रूप में लिया। इसके बाद चंडी के आशीर्वाद से कालकेतु के संकट टलने और अंत में कालकेतु द्वारा चंडी की पूजा-स्तुति किए जाने की घटनाएँ आती हैं; अर्थात चंडी व्याध समुदाय में प्रतिष्ठित हो जाती है। इसी प्रकार धनपति सौदागर की कथा चंडी को उच्च वर्ग में प्रतिष्ठित किए जाने से संबंधित है। वणिक-वर्ग का धनपति चंडी को नहीं मानता। इसके बाद संकटों के पहाड़ टूट गिरने और अंतत: धनपति द्वारा चंडी की पूजा करने संबंधी घटनाएँ आती हैं। चंडी की उच्च वर्ग में भी प्रतिष्ठा हो जाती है।

उपर्युक्त दोनों कथाओं को आधार बना कर चंडी मंगल काव्य की रचना हुई है। तेरहवीं शताब्दी में हुए कवि माणिक दत्त चंडी मंगल की रचना करने वाले पहले कवि माने जाते हैं। प्रसिद्ध है कि स्वयं चंडी ने सपने में दर्शन देकर माणिक दत्त को 'चंडी अष्ट मंगल' की रचना करने को कहा था। मुकुन्दराम 'कविकंकण' ने सोलहवीं शताब्दी के अंत में चंडी मंगल काव्य रचा। इसमें चंडी को निर्बल, भयभीत और पीड़ित पशु जाकर घेर लेते हैं। इस उद्भावना के माध्यम से प्रतीकात्मक शैली में तत्कालीन समय में सत्ता और शक्तिशाली वर्गों द्वारा निर्बल वर्गों के दमन व शोषण को दर्शाया गया है। नवद्वीप के राजा कृष्णचंद्र के सभा-कवि भारतचंद्र ने सन् 1752 में चंडी मंगल काव्य रचा। इसका एक खंड अन्नदा मंगल है, दूसरा कालिका मंगल। तीसरे खंड में आक्रामक मानसिंह और राज्य की रक्षा के लिए प्रतापादित्य द्वारा उसके साथ किए गए युद्ध का वर्णन है। अन्नदा मंगल में संस्कृत-स्रोत से ग्रहण की गई 'विद्या-सुंदर' की कथा का समावेश किया गया है। भारतचंद्र के परवर्ती चंडी मंगल रचनाकारों में जयनारायण सेन, भवानी शंकर, जनार्दन आदि कवि आते हैं।

**धर्म मंगल :** धर्म मंगल काव्य का मूल प्रेरणा-स्रोत 'धर्म ठाकुर संप्रदाय' है। यह संप्रदाय बौद्ध प्रभाव से दसवीं शताब्दी में अस्तित्व में आया और सोलहवीं शताब्दी तक फलता-फूलता रहा। इसके देवता 'धर्म' और सिद्धांत ग्रंथ 'शून्य पुराण' है।

धर्म मंगल काव्य में दो केंद्रीय कथाएँ प्राप्त होती हैं--- लाउसेन की कथा और हरिश्चंद्र की कथा। लाउसेन धर्म ठाकुर की भक्त रंजवती और सामंत कर्णसेन की संतान है। शक्ति के उपासक सामंत इचई घोष से उसका संघर्ष ठन जाता है। लाउसेन विजय प्राप्त करने के लिए धर्म ठाकुर की कृपा हेतु अपने शरीर के नौ खंड करके उन्हें अर्पित कर देता है। धर्म ठाकुर प्रसन्न हो जाते हैं

और लाउसेन को विजय मिलती है। दूसरी हरिश्चंद्र की कथा है। इसमें धर्म ठाकुर निस्संतान हरिश्चंद्र दंपति को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं, लेकिन अतिथि ब्राह्मण के रूप में आए उन्हीं धर्म ठाकुर का आतिथ्य करने के लिए हरिश्चंद्र और उनकी रानी को अपने पुत्र की बलि चढ़ा देनी पड़ती है। अंत में धर्म ठाकुर प्रसन्न हो जाते हैं और भोजन के समय प्रकट होकर लुइचंद्र को जीवित कर देते हैं।

'बाङ्ला मंगल काब्येर इतिहास' नामक ग्रंथ से पता चलता है कि मयूर भट्ट और रूपराम धर्म मंगल काव्य के पहले दो कवि थे। उनके बाद खेलाराम, माणिकराम गांगुली, सीताराम, श्याम पंडित, रामचन्द्र, घनराम आदि कवियों का नाम आता है। इन सभी में सन् 1567 में धर्म मंगल काव्य रचने वाले माणिकराम गांगुली का काव्य सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ।

शिव मंगल : चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के काल में बंगाल के लोक-समाज में शिव-गीत अपना स्थान बना चुके थे, किंतु शिव मंगल काव्य का विकास सत्रहवीं शताब्दी में दिखाई देता है। शिव मंगल काव्य को 'शिवायन काव्य' के नाम से भी जाना जाता है। रामकृष्ण राय (शिवायन), हरिचरण आचार्य (शिवायन), द्विज रामचंद्र (हर-पार्वती मंगल), द्विज कालिदास (कालिका विलास), रामेश्वर चक्रवर्ती (शिव संकीर्तन), द्विज मणिराम (वैद्यनाथ मंगल) आदि शिव मंगल काव्य के प्रमुख रचनाकार हैं।

शिव मंगल काव्यों में पौराणिक शिव भी हैं, जिनका संबंध दक्ष-सती-शिव सूत्रों से निर्मित कथा से है, लेकिन पौराणिक शिव उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। शिव मंगल अथवा शिवायन काव्यों में जो शिव अत्यधिक लोकप्रिय हैं, उनका निर्माण बंगाल के लोक-जीवन में प्रचलित शिव-गीतों और कथाओं से हुआ है।

अन्य मंगल काव्य : इन प्रमुख मंगल काव्यों के अतिरिक्त बाङ्ला साहित्य में कालिका मंगल, शीतला मंगल, राय मंगल, षष्ठी मंगल, शारदा मंगल, गंगा मंगल, लक्ष्मी मंगल, सूर्य मंगल, कपिला मंगल, गौसानी मंगल आदि काव्य भी उपलब्ध हैं।

**अनूदित साहित्य**

**रामायण :** उत्तर मध्य काल में राम-कथा के अनुवाद दो रूपों में मिलते हैं। एक वे अनुवाद, जो समग्र रामायण कृति को अनूदित करने का लक्ष्य निश्चित करके प्रारंभ किए गए। इस कार्य में अनेक अनुवादक अपने लक्ष्य में सफल रहे, जबकि कुछ ऐसे भी हुए, जो अपना कार्य पूरा नहीं कर सके। उनका अधूरा अनुवाद किसी अन्य ने पूरा किया। षष्ठीवर सेन, जगतराम, शिवचरण, नित्यानंद 'अद्भुताचार्य', शंकर 'कविचंद्र चक्रवर्ती', फकीरराम 'कविभूषण', लक्ष्मण बंद्योपाध्याय, रघुनंदन गोस्वामी, राममोहन, कवयित्री चंद्रावती आदि ने रामायण के अनुवाद

किए। इनमें से षष्ठीवर सेन का अनुवाद अपूर्ण रह गया था। उसे उनके पुत्र गंगादास ने पूरा किया। इसी प्रकार जगतराम द्वारा किया गया अनुवाद भी अपूर्ण था, जिसे उनके पुत्र रामप्रसाद ने पूरा किया। कवयित्री चंद्रावती ने रामायण का अनुवाद 'रामायण गाथा' नाम से छड़ा और पाँचाली पद्धति से किया। इस पद्धति से रामकथा किसी लोक-कहानी जैसी बन गई। रामायण के अन्य अनुवादकों ने भी अपने अनुवादों में बंगाल के लोक में प्रचलित कथाओं, गाथाओं, किंवदंतियों से सामग्री लेकर उसे रामकथा का सहज अंग बनाया है। रामकथा के दूसरे अनुवाद वे हैं, जो रामायण के किसी प्रसंग विशेष को आधार बना कर किए गए हैं। लवकुशेर युद्ध (लोकनाथ सेन), रामेर स्वर्गारोहण (भवानीचंद्र), लंका कांड (फकीरराम), अरण्य कांड (वीकन शुक्लदास), लक्ष्मण दिग्विजय (भवानीदास) आदि इसी कोटि में आते हैं।

**महाभारत :** महाभारत का ऐतिहासिक महत्व का और सर्वाधिक लोकप्रिय अनुवाद सन् 1630 के लगभग काशी रामदास द्वारा किया गया। बंगाली समाज में इस अनुवाद की प्रतिष्ठा कृत्तिवासी रामायण के समान है। पयार छंद, अभिनव अभिव्यक्ति शैली और संस्कृतनिष्ठ बाङ्ला भाषा के कारण काशी रामदास के महाभारत का साहित्यिक महत्व भी असंदिग्ध है। अनुवादक-कवि ने महाभारत-कथा में कुछ अद्भुत प्रसंगों का समावेश भी किया है। उदाहरण के लिए--- युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में लंकापति विभीषण का आना, युधिष्ठिर को अभिवादन न करके केवल कृष्ण को अभिवादन करना, यह देख कर कृष्ण द्वारा विराट रूप का प्रदर्शन और धर्मराज के प्रभाव को स्थापित किया जाना।

**श्रीमद्भागवत :** इस कालखंड में श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध को बाङ्ला भाषा में अनुवाद करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। ये अनुवाद विविध नामों से किए गए और सभी में बंगाली-लोक एवं बंगाल की वैष्णवी भावधारा के समावेश का पूरा ध्यान रखा गया। शंकर 'कविचंद्र' ने 'गोविंद मंगल' नाम से भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद किया, जबकि माधवाचार्य और परशुराम चक्रवर्ती ने 'श्रीकृष्ण मंगल' नाम से। इसके अतिरिक्त रामायण और महाभारत के अनुवाद के समान श्रीमद्भागवत के विशेष-विशेष प्रसंगों को आधार बना कर भी स्वच्छंद अनुवाद किए गए, जैसे--- प्रह्लाद चरित्र, सुदामा चरित्र, उद्धव संवाद, गजेंद्र मोक्ष, गुरु दक्षिणा आदि।

## 8.4 : पाठ का सार

बाङ्ला आर्य भाषा परिवार की सर्वाधिक प्रगतिशील भारतीय भाषाओं में से एक है। इस भाषा का विकास आठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य पूर्वी अपभ्रंश, प्राकृत, अवहट्ट और तत्कालीन स्थानीय भाषा-स्रोतों से हुआ। बाङ्ला का व्यवहार साधु-भाषा, चलित-भाषा और

मानक-भाषा शैलियों में प्राप्त है। ब्राह्मी के पूर्वी नागरी अथवा कुटिल लिपि-रूप से बाङ्ला-लिपि का विकास माना जाता है।

बाङ्ला साहित्य के प्राचीन काल को पाल-वंश के शासकों ने प्रभावित किया। इस युग में बौद्ध धर्म की महायानीय शाखा के सिद्धाचार्यों, बौद्ध सहजिया संप्रदाय, नाथ संप्रदाय और मंगल काव्य परंपरा के मनसा मंगल कवियों द्वारा बाङ्ला साहित्य रचा गया। मध्य काल में बाङ्ला भाषा और साहित्य को सेन-वंश तथा उदारवादी मुस्लिम शासकों ने प्रभावित किया। इसका पूर्व मध्य कालीन साहित्य वैष्णव चेतना के पुनर्जागरण का परिणाम है, जिसे बडु चंडीदास और विद्यापति ने प्रेरित किया। उत्तर मध्य काल चैतन्य महाप्रभु और उनके गौड़ीय वैष्णव मत से प्रेरित है। चैतन्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण इस कालखंड को चैतन्य-युग और पूर्व मध्य काल को पूर्व चैतन्य युग भी कहा जाता है। उत्तर मध्य काल में राधा-कृष्ण और गौरांग महाप्रभु संबंधी वैष्णव पदावली की विशेष रूप से रचना हुई, जिसमें वैष्णवी-आस्था वाले भक्त कवियों के साथ-साथ मुस्लिम कवियों की भी भूमिका है। मंगल काव्य के विविध रूपों की रचनाएँ तथा राम-कथा, महाभारत-कथा एवं श्रीमद्भावत के अनुवाद मध्य काल के दोनों कालखंडों में प्राप्त होते हैं।

## 8.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस पाठ की अध्ययन सामग्री से---

1. पाठ-निर्माण के उद्देश्यों की पूर्ति होती है।
2. प्राचीन और मध्य कालीन बाङ्ला साहित्य को प्रभावित करने वाले राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों को समझने हेतु सहायक सामग्री उपलब्ध होती है।
3. बाङ्ला बौद्ध सिद्ध काव्य, वैष्णव काव्य, मंगल काव्य तथा अनूदित साहित्य की विवेचनात्मक जानकारी मिलती है।

## 8.6 : शब्द संपदा

1. अधिष्ठात्री = मुख्य अथवा प्रधान पूजनीय,
2. अबाध = बिना किसी बाधा के,
3. अर्जित = कमाया हुआ,
4. अस्तित्व = होना अथवा अवस्थिति,
5. आगम = शास्त्र,
6. आडंबर = ढोंग, दिखावा,
7. आधिपत्य = प्रभुत्व, स्वामित्व,

8. गहन = गहरा, गंभीर,

9. चर्या = आचरण,

10. तत्व = जिसमें कुछ और न मिला हुआ हो, रहस्य,

11. प्रतिष्ठा= आदर, कीर्ति, गौरव,

12. प्रवर्तन = प्रारंभ अथवा स्थापित करना,

13. प्रवृत्ति = आदत, झुकाव,

14. पार्थिव= भौतिक, पृथिवी संबंधी,

15. राजकिन= धोबिन,

16. लीला = आश्चर्यजनक कार्य, देवता अथवा ईश्वर के कार्य,

17. लौकिक= इस लोक अथवा संसार से संबंधित,

18. विधान= किसी कार्य के संचालन के लिए बनाए गए नियम, प्रणाली,

19. विरह = किसी से अलग हो जाने के कारण उत्पन्न भाव,

20. वैष्णव = विष्णु की उपासना करने वाला।

## 8.7: परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए ।**

1. बाङ्ला साहित्य के प्राचीन काल की राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लिखिए।
2. सिद्धों द्वारा प्रवर्तित 'सहजिया संप्रदाय' का परिचय दीजिए।
3. उत्तर मध्यकालीन बाङ्ला वैष्णव पदावली का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
4. चंडी मंगल काव्य और उससे जुड़ी कथाओं पर एक लेख लिखिए।
5. पूर्व मध्य काल में अनूदित बाङ्ला साहित्य का परिचय दीजिए।

**खंड- (ब)**

लाघूत्तरीय प्रश्न :

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200शब्दों में दीजिए ।**

1. काशी रामदास द्वारा महाभारत के बाङ्ला अनुवाद की विशेषताएँ लिखिए।
2. कृत्तिवास ने रामायण के अनुवाद में कौन-सी नवीन विशेषताएँ जोड़ी हैं?
3. बंगाल में विकसित वैष्णव भक्ति को श्रीमाधवेंद्र पुरी की देन बताइए।

4. चर्याश्चर्यविनिश्चय का परिचय दीजिए।
5. बाङ्ला भाषा और साहित्य के विकास में सूफी संतों की भूमिका पर विचार कीजिए।

**खंड (स)**

I. **सही विकल्प चुनिए :**

1. बाङ्ला भाषा के व्यवहार-रूप हैं---

(अ) साधु भाषा (ब)चलित भाषा (स) मानक बाङ्ला

2. काव्य भाषा, गद्य भाषा, नाट्य भाषा

(अ) संस्कृत बहुल (ब) अरबी बहुल (स) मैथिली बहुल

3. चर्याश्चर्यविनिश्चय की भाषा को महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने कहा था---

(अ) चर्या-भाषा (ब) विनिश्चय-भाषा (स) आलो-अंधेर भाषा

4. चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का पूर्णावतार घोषित किया था---

(अ) सिद्धांताचार्य (ब) अद्वैताचार्य (स) गौरांग महाप्रभु

**II. दिए गए विकल्पों में से चुन कर रिक्त-स्थान भरिए :**

2. बाङ्ला भाषा को ........ भी कहा जाता था। (आंचलिक-भाषा/गौड़ीय-भाषा)
3. लक्ष्मण सेन बंगाल का पहला..... शासक था। (परम वैष्णव/परम शैव)
4. शून्य की प्राप्ति....विनिर्मुक्ति की अवस्था है। (सप्तकोटि/चतुष्कोटि)
5. जीवनी-साहित्य उत्तर मध्यकालीन बाङ्ला साहित्य की........ उपलब्धि है। (नवीन/महत्वपूर्ण)

---

## 8.8: पठनीय पुसतकें

---


1. बाङ्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन (अनु. निर्मला जैन),
2. भारतीय साहित्य, (संपा. डॉ. नगेंद्र),
3. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास,
4. डॉ. सत्येन्द्र, भारतीय साहित्य की पहचान (संपा. सियाराम तिवारी)।


------

# इकाई 9: बाङ्ला साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

इकाई की रूपरेखा

9.1. प्रस्तावना
9.2. पाठ का उद्देश्य
9.3. मूल पाठ : बाङ्ला साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)
9.3.1. पृष्ठभूमि
9.3.2. बाङ्ला नवजागरण
9.3.3. गद्य का प्रादुर्भाव
9.3.4. आधुनिक कालीन बाङ्ला साहित्य
9.4. पाठ का सार
9.5. पाठ की उपलब्धियाँ
9.6 शब्द-संपदा
9.7. परीक्षार्थ प्रश्न
9.8. पठनीय पुस्तकें

## 9.1 प्रस्तावना

बाङ्ला आधुनिक भारतीय भाषा-समूह में विशिष्ट महत्व की अधिकारिणी भाषा मानी जाती है। आठवीं से दसवीं शताब्दी के काल में पूर्वी अपभ्रंश और तत्कालीन स्थानीय भाषा-स्रोतों से अस्तित्व में आई बाङ्ला भारत और बाङ्लादेश सहित विश्व के अनेक भागों में व्यवहार में लाई जाती है। बाङ्ला जीवन और साहित्य में आधुनिकबोध के आविर्भाव के संकेत अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मिलने लगे थे। उन्नीसवीं शताब्दी का आरंभिक चरण आधुनिक काल के आगमन की स्पष्ट घोषणा करने वाला बना। इसके पश्चात शीघ्र ही आधुनिक साहित्य रचा जाने लगा।

## 9.2. : पाठ का उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य है कि विद्यार्थी---

- आधुनिक काल की राजनैतिक व सामाजिक पृष्ठभूमि जान सकें।
- साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में बाङ्ला नवजागरण से परिचित हो सकें।
- आधुनिक बाङ्ला काव्य के स्वरूप और विकास को समझ सकें।
- आधुनिक बाङ्ला नाटक के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- आधुनिक बाङ्ला कथा साहित्य और कथेतर गद्य विधाओं से परिचित हो सकें।

## 9.3 : मूल पाठ : बाङ्ला साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

### 9.3.1. पृष्ठभूमि

**आर्थिक, राजनैतिक और समाज-सांकृतिक परिस्थितियाँ :**

सन् 1756 में नवाब सिरजुद्दौला के बंगाल का शासक बनने तक बंगाल दिल्ली के मुगल बादशाह के लिए आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्व का प्रांत था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1680 में मुगल शासक औरंगजेब से एक व्यापारिक चार्टर पर सहमति प्राप्त करके बंगाल में व्यापारिक गतिविधियाँ शुरू कर दीं। ईस्ट इंडिया कंपनी को प्राप्त व्यापारिक विशेषाधिकार न केवल बंगाल के नवाबी राजकोष को, बल्कि बंगाली व्यापारियों के आर्थिक हितों को भी भारी नुकसान पहुँचाने वाला सिद्ध हुआ।

आर्थिक हितों के बीच यह टकराव बंगाल में राजनैतिक संघर्ष का मूल कारण बना। नवाब सिराजुद्दौला ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक विशेषाधिकार का घोर विरोधी बन गया और कंपनी अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए बंगाल की गद्दी पर किसी कठपुतली नवाब को बैठाने की योजना के कारण सिराजुद्दौला की शत्रु बन गई। अंत में सन् 1757 में रॉबर्ट क्लाइव और सिराजुद्दौला के बीच इतिहास प्रसिद्ध प्लासी-युद्ध हुआ, जिसके परिणाम ने बंगाल के राजनैतिक भविष्य को अंग्रेजी शासन के अधीन रखने की ठोस आधारभूमि का निर्माण किया। सन् 1765 की 'इलाहाबाद संधि' के प्रावधान के अनुसार अंग्रेजों ने मुगल बादशाह से बंगाल पर पूर्ण राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया।

सन् 1770 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। एक अनुमान के अनुसार लगभग एक तिहाई बंगाली आबादी के सामने जीवन का संकट आ खड़ा हुआ। इसके बावदूद ईस्ट इंडिया कंपनी अकाल और उसके शिकार लोगों की ओर से आँखें मूँदे रही। यह नीति कंपनी के विरुद्ध जन-असंतोष को जन्म देने वाली सिद्ध हुई। सन् 1793 में स्थाई-बंदोबस्त व्यवस्था लागू हुई। इसने गरीब किसानों को भूमि-कर चुकाने के लिए अपनी भूमि बेचने के लिए विवश कर दिया। किसानों की जमीन उस वर्ग ने खरीदी, जो ईस्ट इंडिया कंपनी की सहायता करने के बदले उसकी कृपा प्राप्त करके अचानक नव-धनाढ्य वर्ग के रूप में उभरने लगा था। इससे बड़ी संख्या में किसान भूमिहीन होकर मजदूर बनने पर मजबूर हुए। सन् 1800 आते-आते ब्रिटेन के लंकाशायर की कपड़ा मिलों ने भारत पर आर्थिक हमला कर दिया।

इस संपूर्ण घटनाक्रम से बंगाल के सामाजिक-ढाँचे में महत्वपूर्ण बदलाव आया। इस बदलाव का मुख्य केंद्र कोलकाता बना। वहाँ पश्चिम को ललचाई नजरों से देखने वाला अंध अंग्रेज़ समर्थक एक वर्ग खड़ा हुआ, जिसमें 'नव-धनाढ्य' समूह, बल्लाल सेन के काल से चले आने वाले 'कुलीन' वर्ग तथा नवीन 'भद्रलोक' समूह का एक हिस्सा शामिल था। इसी वर्ग के नव-धनाढ्य बौद्धिक-विलास के लिए कवियों को प्रश्रय देकर उनसे घोर शृंगारिक रचनाएँ करवाने लगे। ऐसी रचनाओं को 'कविगान' कहा जाता था। अर्थात बाङ्ला काव्य में पिछले दरवाजे से

हिंदी के रीतिकाल जैसी प्रवृत्ति का प्रवेश होता दिखाई दिया। उसी काल में एक ऐसा शिक्षित वर्ग उभरा, जो पश्चिम को ललचाई अथवा उपेक्षा भरी दृष्टि से देखने के बदले आलोचनात्मक दृष्टि से देखना चाहता था। वह भारत को आधुनिक स्वरूप देने में सहायक पश्चिमी शिक्षा तथा अन्य जीवन मूल्यों का पक्षधर बना। यही वर्ग बाङ्ला नवजागरण का शिल्पकार कहलाया।

**18वीं शताब्दी का उत्तरार्ध : साहित्य में आधुनिक-बोध के संकेत :**

नवद्वीप के राजा कृष्णचंद्र के सभाकवि भारतचंद्र ने सन् 1752 में चंडीमंगल काव्य की रचना की थी, जिसके तीन खंड हैं--- 'अन्नदा मंगल', 'कालिका मंगल' और 'अन्नपूर्णा मंगल'। अन्नदा मंगल में विद्या-सुंदर की कथा है। कवि ने कथा के निर्वाह और उसे कहने के लिए भाषा, छंद और अलंकारों का जिस कौशल के साथ प्रयोग किया है, उससे पता चलता है कि कविता उत्तर मध्यकालीन सीमा को पार करके नव-युग की ओर बढ़ना चाहती है। इसीलिए साहित्येतिहासकारों ने भारतचंद्र की गणना बाङ्ला काव्येतिहास के संक्रमणकालीन कवियों में की है।

रामप्रसाद सेन 'कविरंजन' भी राजा कृष्णचंद्र के सभाकवि और भारतचंद्र के समकालीन थे। उन्होंने 'श्यामा संगीत', 'विद्या-सुंदर' और 'शाक्त पदावली' की रचना की थी। श्यामा संगीत में काली को अन्य गुणों साथ ही मानवी गुणों से संपन्न भी दर्शाया गया है। इसी प्रकार शाक्त पदावली के 'आगमनी संगीत' और 'विजया संगीत' पदों में साधारण लोक-समाज के हृदय की भावाकुलता एवं कारुणिकता को प्रधानता दी गई है। यह बाङ्ला काव्य में आने वाले परिवर्तन का हल्का-सा संकेत था।

भारतचंद्र और रामप्रसाद सेन के बाद व्यापक राजनैतिक उथल-पुथल के कारण दीर्घ अवधि तक बाङ्ला काव्य व्यवधान का शिकार रहा। उस अवधि में 'कविवाल्ला' और 'पाँचाली' का प्रचलन देखने में आया। कविवाल्ला में दो कवि-मंडलियों के बीच टक्कर होती थी। इसमें काव्य के स्तर से अधिक विरोधी पक्ष पर उसकी मार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। पाँचाली में विभिन्न देवी-देवता चरित्रों से जुड़े प्रसंग होते थे।

आधुनिक काल की ओर प्रस्थान : ईश्वरचंद्र गुप्त :

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ईश्वरचंद्र गुप्त (1812-1859) का आगमन हुआ। उन्होंने एक ओर मध्यकालीन परिपाटी की भक्ति और शृंगार प्रधान रचनाएँ कीं, तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज में शुरू हो चुके पश्चिमी अंधानुकरण की आलोचना करने वाले काव्य का प्रणयन भी किया। यह बाङ्ला में स्वदेशाभिमान एवं सामाजिक चेतना के करवट लेने की सूचना थी। मौलिक काव्य-सृजन के अतिरिक्त उन्होंने 'प्रबोध चंद्रोदय' का काव्यानुवाद तथा 'हितोपदेश' का गद्यानुवाद किया। उनकी रचनाओं में ऐसे अनेक शब्दों को बाङ्ला साहित्य के भाषा-गठन में स्थान दिया गया, जो पहले उपेक्षित रहते थे। उन्होंने सन् 1829 में 'संवाद प्रभाकर' नामक

पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका ने दीनबंधु मित्र, मधुसूदन दत्त, बंकिमचंद्र चटर्जी, रंगलाल बनर्जी आदि आधुनिक बाङ्ला साहित्य के प्रख्यात लेखकों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ईश्वरचंद्र गुप्त ने आधुनिक बाङ्ला साहित्य में जो भूमिका निभाई, उसे आगे चल कर हिंदी में भारतेन्दु द्वारा निभाई गई भूमिका का अध्ययन करके समझा जा सकता है।

### 9.3.2. बाङ्ला नवजागरण

बंगाल के नवजागरण को समग्र भारतीय नवजागरण का पुरोधा माना जाता है। नवजागरण का उद्घोष राजा राममोहन राय ने किया और उसका पूर्ण विकास रवींद्रनाथ के चिंतन में दिखाई दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि इस नवजागरण के प्रारंभिक कुछेक सूत्र ईश्वरचंद्र गुप्त और जेम्स ऑगस्तस हिकी के कार्यों में प्रकट हो गए थे।

नवजागरण के आधार स्तंभ और उनकी भूमिका :

राजा राममोहन राय (1772-1833) को आधुनिक भारत की नींव रखने वाला महापुरुष माना जाता है। वे मातृभाषा बाङ्ला के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के विद्वान थे। उन्होंने वेद, उपनिषद और अन्य धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। राजा राममोहन राय पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली तथा विज्ञान व पश्चिम के दर्शन और साहित्य को आधुनिक भारत के निर्माण के लिए उपयोगी एवं आवश्यक मानते थे। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन के पक्षधर होते हुए भी वे बाङ्ला भाषा के विकास और व्यवहार को अनिवार्य मानते थे। उनके इस दृष्टिकोण में मातृभाषा-प्रेम की भावना छिपी हुई है। राजा राममोहना राय ने हिंदू समाज के साथ ही भारत को निर्बल बनाने वाली सती प्रथा, बालविवाह जैसी कुप्रथाओं का विरोध किया था। इसी के साथ वे विधवा विवाह के समर्थक थे। राजा राममोहन राय ने समाज-सुधार के उद्देश्य से सन् 1828 में 'ब्राहम समाज' की स्थापना की थी। उन्होंने बाङ्ला में 'संवाद कौमुदी', फारसी में 'मीरात-उल-अखबार' और चार भाषाओं (बाङ्ला, हिंदी, फारसी, अंग्रेजी) में एक साथ प्रकाशित होने वाले 'बंगदूत' पत्र का प्रकाशन किया था। सन् 1790 में अंग्रेजी सरकार ने समाचारपत्रों पर सेंसरशिप लागू की, तो राजा राममोहन राय ने इसके विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया था। राजा राममोहन राय ने जीवन, समाज और साहित्य में जो भूमिका निभाई, वह बाङ्ला नवजागरण की विस्तृत रूपरेखा स्पष्ट करने वाली है। प्रख्यात भारत-प्रेमी फ्रांसीसी विद्वान रोमां रोलां ने राजा राममोहन राय को भारत का 'प्रथम विश्व नागरिक' संबोधित किया था।

राजा राधाकांत देव के प्रयास से सन् 1817 में कोलकाता में 'हिंदू कॉलेज' की स्थापना हुई, जिसने बाङ्ला नवजागरण में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। द्वारकानाथ ठाकुर के प्रयासों से सन् 1835 में 'कलकत्ता मेडिकल कॉलेज' की स्थापना हुई। उन्होंने बाङ्ला भाषा के उत्थान के

उद्देश्य से एक सांस्कृतिक संस्था तथा बंगाल के आर्थिक विकास के लिए 'यूनियन बैंक' का स्थापना की। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने शिक्षा के प्रसार के लिए 'मेट्रोपॉलिटन इंस्टीव्यूशन' (वर्तमान में विद्यासागर कॉलेज) स्थापित किया, विधवा-विवाह के समर्थन में आंदोलन चलाते हुए 7दिसंबर, 1856 को अपने निर्देश में पहला विधवा-विवाह संपन्न कराया। वे बाङ्ला गद्य के उन्नायकों में से एक माने गए। माइकेल मधुसूदन दत्त ने अंग्रेजी के मोह से मुक्त होकर बाङ्ला के समर्थन में कहा कि 'मातृभाषा को सीखने और उसे समृद्ध बनाने से बढ़ कर और कुछ नहीं हो सकता।'

रामकृष्ण परमहंस नवजागरण के अति महत्वपूर्ण महापुरुषों में आते हैं। उदयराज ने 'हिंदी साहित्य ज्ञानकोश' में उल्लेख किया है कि "रामकृष्ण परमहंस ने धार्मिक अराजकता और अंधविश्वासों के युग में धर्म को बुद्धिसम्मत और मानवीय बनाने का काम किया था। उनके धर्म का सबसे महत्वपूर्ण पहलू था, गरीब और वंचित मनुष्यों की सेवा।" भारत देश को उसका राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्' प्रदान करने वाले बंकिमचंद्र चटर्जी ने गीता पर टिप्पणी करते हुए घोषित किया कि 'भारत एक राष्ट्र के रूप में तब तक विकास नहीं कर सकता, जब तक हाशिम शेखों और रामकेवट की स्थितियों में समानता के आधार पर साथ-साथ सुधार नहीं होता।' बंकिम ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतवासियों को कर्मयोग में दीक्षित किया। हेमचंद्र बनर्जी ने 'भारत संगीत' जैसी कविता रची। इस कविता ने बाङ्ला नवजागरण की राष्ट्रीय भावना को जन-जन तक पहुँचाया।

केशवचंद्र सेन ने ब्राह्म समाज की 'भारतवर्षीय ब्राह्म समाज' धारा का नेतृत्व किया। उन्होंने इसमें ईसाइयत के मूल्यों को अपनाने के साथ ही चैतन्य भक्ति को भी स्थान दिया। केशवचंद्र सेन पाश्चात्य और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय के पक्षधर थे। महर्षि दयानंद को संस्कृत के स्थान पर हिंदी का व्यवहार करने की प्रेरणा देने वाले केशवचंद्र सेन ही थे। स्वामी विवेकानंद ने 20 सितंबर, 1893 को 'विश्व धर्म-महासभा', शिकागो में गर्जना की थी, "पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उसके पास धर्म पर्याप्त है--- जलते हुए हिंदुस्तान के लाखों दुखार्त भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे हैं। वे हमसे रोटी मांगते हैं और हम उन्हें देते हैं पत्थर। क्षुधातुरों को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है, भूखों को दर्शन सिखाना उनका अपमान करना है।" कहना होगा कि विवेकानंद ने बाङ्ला नवजागरण को धर्म, दर्शन और जीवन-यथार्थ का एक नवीन धरातल प्रदान किया था। बाङ्ला नवजागरण में हिंदू कॉलेज के युवा अध्यापक डिरोजियो और उनकी प्रेरणा से अस्तित्व में आए 'तरुण बंगाल आंदोलन' की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

बाङ्ला नवजागरण अपनी संपूर्णता में फलित हुआ रवीन्द्रनाथ के चिंतन, कार्यों और साहित्य में। इंद्रनाथ चौधुरी के अनुसार रवींद्रनाथ ने अनुभव किया था कि 'पश्चिम राज्य, सत्ता और व्यक्ति को महत्व देता है, जबकि भारत के लिए समाज, धर्म और जवाबदेही महत्वपूर्ण है।' रवींद्रनाथ भारत को मात्र भौगोलिक इकाई न मान कर भाव, विचार और सांस्कृतिक परंपरा का जीवित पुंज मानते थे। वे ऐसी शिक्षा चाहते थे, जो परंपरागत ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वय करके व्यक्ति को उसकी निर्बलताओं तथा सबलताओं का साक्षात्कार कराती है। रणजीत साहा ने रवींद्रनाथ ठाकुर की मनीषा-दृष्टि को एक ही साथ 'भारतीय और सार्वभौम' माना है। यह बाङ्ला नवजागरण का फ़लक-विस्तार है।

**नवजागरण के प्रभाव : समाज, स्वाधीनता-आंदोलन, साहित्य :**

डॉ. शंभुनाथ ने माना है कि "राजा राममोहन राय से लेकर रवींद्रनाथ ठाकुर के दौर तक के लगभग सवा-सौ साल की नई चेतना को बाङ्ला नवजागरण कहा जाता है, जिसके परिप्रेक्ष्य में बाङ्ला भाषा, कला-साहित्य और शिक्षा के अलावा ज्ञान-विज्ञान की भी उन्नति हुई।" बाङ्ला नवजागरण ने एक ऐसे समाज के लिए कार्य किया, जो शास्त्रों के प्रमाणवाद, कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्त हो। वह स्वाधीनता संघर्ष के लिए ऐसे राष्ट्रीय जागरण का पक्षधर था, जिसमें भारतीय सांस्कृतिक मूल्यबोध और आधुनिकता का समन्वय हो। उसमें मानव-मूल्यों के साथ ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति आग्रह था। वह वैचारिकता और आलोचनात्मक दृष्टि को महत्व देता था। आधुनिक बाङ्ला साहित्य को नवजागरणकालीन चेतना ने कथ्य, भाषा और शिल्प; अर्थात सभी स्तरों पर प्रभावित किया।

### 9.3.3. गद्य का प्रादुर्भाव :

बाङ्ला नवजागरण के परिणामस्वरूप विकसित बौद्धिक-चेतना, पश्चिम से आयातित आधुनिक शिक्षा प्रणाली, ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म-प्रचार केंद्रित उद्देश्यों के लिए किए गए कार्य, ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना और उसके स्थायित्व के लिए अपनाए गए उपायों के अंतर्गत स्थापित 'फोर्ट विलियम कॉलेज', भारत संबंधी अध्ययन और संस्कृत में उपलब्ध ज्ञान-परंपरा पर केंद्रित शोध के लिए स्थापित 'एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता' (जो बाद में केवल 'एशियाटिक सोसायटी' कहलाई), मुद्रण-सुविधा का प्रारंभ, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आदि आधुनिक बाङ्ला साहित्य में गद्य के प्रारंभ और विकास के मूल आधार हैं।

सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में सबसे पहले पुर्तगाली ईसाई धर्म-प्रचारकों ने अपने धर्म के पक्ष में वातावरण बनाने के लिए काव्य के स्थान पर गद्य को माध्यम बनाने की दिशा में कदम

बढ़ाया था। सन् 1778 में बाङ्ला लिपि में पहली बाङ्ला पुस्तक, 'ग्रामर ऑफ द बैंगाली लैंग्वेज' प्रकाशित हुई। इसके लेखक नाइथेनियल ब्रांसे थे। विलियम केरी, विलियम वार्ड और जोशुआ मार्शमेन के संयुक्त प्रयास से सन् 1800 में श्रीरामपुर मिशन प्रेस की स्थापना हुई। विलियम केरी ने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए जो नीति अपनाई, उसमें गद्य में बाइबल के अनुवाद के साथ ही बाङ्ला के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन भी शामिल था। परिणामस्वरूप प्रेस की स्थापना के आठ वर्ष के भीतर बाइबल का बाङ्ला अनुवाद पूरा हो गया। इसी बीच कृत्तिवासी रामायण और काशी रामदास के महाभारत का प्रकाशन भी संपन्न हो गया। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ अधिकारियों को बाङ्ला भाषा सिखाने के उद्देश्य से 'लिपिमाला', 'हितोपदेश', 'राजावली', 'बतिश सिंहासन' आदि पुस्तकें भी छाप ली गईं।

राजा राधाकांत देव, विलियम कैरे और रामकमल सेन के प्रयासों से सन् 1817 में 'कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी' की स्थापना हुई। नाम से ही स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण था। सोसायटी ने विभिन्न विषयों की गद्य-पुस्तकें तैयार करवाईं। पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में अन्य लेखकों के अलावा राजा राममोहन राय और बंकिमचंद्र चटर्जी भी शामिल थे।

नवीन खोजों के अनुसार सन् 1795 में प्रकाशित 'बंगाल हारकरु' साप्ताहिक ने बाङ्ला पत्रकारिता की नींव रखी थी। इसके बाद दिग्दर्शन (1818), बंगाल गेजेटि(1818), समाचार दर्पण(1818), संवाद कौमुदी(1821), समाचार चंद्रिका(1822), संवाद तिमिर नाशक(1823), बंगाल हेराल्ड(1829), बंगदूत(1829), संवाद प्रभाकर(1829), ज्ञानान्वेषण(1831), विज्ञान सेवधि (1832), तत्वबोधिनी(1843), बंगदर्शन(1872) आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इन सभी में सामान्य जानकारी प्रधान लेख, आलोचनात्मक लेख, निबंध, अभिमत, टिप्पणियाँ, विस्तृत समाचार आदि का प्रकाशन हुआ। काव्य के अतिरिक्त कहानियों और उपन्यासों का धारावाहिक प्रकाशन भी इन पत्रिकाओं में बहुतायत से किया गया। पत्र-पत्रिकाओं ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

### 9.3.4. आधुनिक कालीन बाङ्ला साहित्य

#### 9.3.4.1. काव्य

आधुनिक बाङ्ला साहित्य बाङ्ला नवजागरण के गर्भ से उत्पन्न हुआ। काव्य में नवजागरण के प्रभाव विविध रूपों में अभिव्यक्त हुए।

आधुनिक बाङ्ला काव्य के पहले चरण के प्रतिनिधि मधुसूदन दत्त (1824-1873) हैं। उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, तेलुगु आदि भाषाओं का अध्ययन किया। लेकिन उनका सबसे अधिक लगाव अंग्रेजी साहित्य और ग्रीक पुराकथाओं से था। वे साहित्यिक जीवन के प्रथम चरण में अंग्रेजी में लिखते थे। सन् 1848 में उनका अंग्रेजी काव्य-संग्रह, 'द

कैप्टिव लेडी’ प्रकाशित हुआ। उन्हें लगा था कि यह संग्रह उन्हें अंग्रेजी काव्य-जगत में प्रतिष्ठित कर देगा। लेकिन उनकी आशा और विश्वास को उस समय भारी धक्का पहुँचा, जब अंग्रेजी समालोचकों और पाठकों ने उनकी कविताओं का कोई नोटिस नहीं लिया।

इस घटना ने माइकेल मधुसूदन दत्त को समझा दिया कि वे अपनी मातृभाषा बाङ्ला में लिख कर ही महत्व के अधिकारी बन सकते हैं। जब मधुसूदन दत्त ने अपनी भाषा की ओर लौट कर देखा, तो उनके मुँह से निकला, ‘बाङ्ला भाषा अत्यंत सुंदर है, वह केवल अपनी प्रतिभाओं की राह देख रही है, जो आकर उसे भासमान कर दें।’ इसके बाद बाङ्ला काव्याकाश में किसी उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति माइकेल मधुसूदन दत्त का उदय हुआ। इस मधुसूदन-नक्षत्र की अप्रतिम आभा में रामायण, महाभारत और यूनानी पुराकथाओं के साथ ही कालिदास, दाँते, होमर, वर्जिल, मिल्टन, शैक्सपियर आदि का ऐतिहासिक योगदान था।

माइकेल मधुसूदन दत्त ने तिलोत्तमा संभव(1860), मेघनाद वध (दो भाग-1861), ब्रजांगना(1861), वीरांगना(1862), चतुर्दशपदी कवितावली (1866) आदि काव्य-ग्रंथ रचे। इनमें से ‘मेघनाद वध’ को बाङ्ला का पहला महाकाव्य माना गया। मेघनाद वध की मूल प्रेरणा रामायण और महाभारत हैं, लेकिन कवि ने नवीन प्रयोगों और दृष्टिकोण के बल पर उसे अत्यधिक विशिष्ट बना दिया है। मेघनाद वध में दिखाया गया है कि लंकापति रावण का वीर पुत्र मेघनाद अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्ध-भूमि में उतरा था। वह विश्वासघाती अधम विभीषण के कारण लक्ष्मण के हाथों वीरगति को प्राप्त हुआ। बाङ्ला समाज और साहित्य के एक वर्ग द्वारा मधुसूदन दत्त के इस दृष्टिकोण की आलोचना भी हुई थी और मेघनाद वध के उत्तर में ‘छछूंदर वध’ लिखा गया था। लेकिन अपने रचनात्मक वैभव एवं क्रांतिकारी दृष्टिकोण के कारण मेघनाद वध बाङ्ला का महान महाकाव्य बना।

‘तिलोत्तमा संभव’ में देवताओं को पराजित करने के बाद तिलोत्तमा नामक सुंदरी के कारण एक-दूसरे का विनाश करने वाले सुंद और उपसुंद नामक राक्षस भाइयों की देवी-उपाख्यान संबंधी प्रसिद्ध कथा है। ‘ब्रजांगना’ राधा-कृष्ण प्रेम संबंधी काव्य है, जिसमें कुछ परंपरागत और कुछ नितांत अभिनव छंदों का प्रयोग किया गया है। ‘वीरांगना’ प्रेम-पातियों का प्रगीतात्मक काव्य है। ये पातियाँ पुराणों और महाकाव्यों की शकुंतला, तारा, रुक्मिणी, कैकेयी, शूपर्णखा, द्रौपदी, भानुमती, दुश्शला, जाह्नवी, उर्वशी, जना आदि इक्कीस नारियों द्वारा अपने पतियों अथवा प्रेमियों को लिखी गई हैं। ‘चतुर्दशपदी कवितावली’ में एक-सौ दो सॉनेट हैं। इनके बारे में समालोचकों का अभिमत है कि काव्य-कला की दृष्टि से इनमें मधुसूदन की सृजनशीलता का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है।

मधुसूदन दत्त के समकालीन कवियों में हेमचंद्र बंद्योपाध्याय ने चिंता तरंगिणी, वीरबाहु, कवितावली, छायामायी, आशा कानन, वृत्रासुर आदि काव्यों की रचना की। पच्चीस सर्गों में रचित वृत्रासुर महाकाव्य ने उन्हें मधुसूदन दत्त युग के कवियों में श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया। नवींचंद्र सेन ने महाभारत की कृष्णकथा के आधार पर रैवतक, कुरुक्षेत्र और प्रभास नामक महाकाव्यात्मक-त्रयी की रचना की। पलाशीर युद्ध, क्लियोपेट्रा और रंगमती उनके आख्यान काव्य हैं। इनमें से पलाशीर युद्ध ने उन्हें अपार ख्याति प्रदान की। बिहारीलाल चक्रवर्ती आधुनिक बाङ्ला गीति काव्य के प्रवर्तक के रूप में विख्यात हुए। साहित्येतिहासकार रवींद्रनाथ ठाकुर पर बिहारीलाल चक्रवर्ती का प्रभाव मानते हैं। संगीत शतक, बंगसुंदरी, निसर्ग संदर्शन, बंधु वियोग, प्रेम प्रवाहिनी, शारदा मंगल आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। स्त्री रचनाकारों में कामिनी राय ने आलो ओ छाया, मानकुमारी ने कुसुमांजलि तथा गिरींद्र मोहिनी ने अश्रुकण शीर्षक काव्य रचे।

समग्र काव्य-चेतना की दृष्टि से मधुसूदन युग में बाङ्ला काव्य प्राचीन और मध्यकालीन काव्य की सीमाओं से मुक्त हुआ। उसने संस्कृत की समृद्ध काव्य परंपरा के साथ ही पश्चिम की प्राचीन व नवीन काव्य रचना परंपराओं व शैलियों से सकारात्मक संवाद बनाने की कोशिश की। कवियों ने काव्यानुवादों से परहेज नहीं किया, किंतु बाङ्ला भाषा की मौलिक रचनाधर्मिता से विश्व को परिचित कराने के लिए आधुनिक बोध संपन्न मौलिक काव्य-सृजन को ही अनिवार्य माना। मधुसूदन दत्त ने छंद और काव्य-शिल्प के क्षेत्र में जो नया मार्ग दिखाया था, वह निरंतर विकसित हुआ। इस युग में सामाजिक-चेतना, राजनैतिक जागरण और राष्ट्रीय भावना की सशक्त पृष्ठभूमि निर्मित हुई। आगे, बहुत कम समय में ही बाङ्ला काव्य ने भाव-विचार, कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में जिस विस्तार को प्राप्त कर लिया, उसकी भूमिका मधुसूदन दत्त के काल में निर्मित हो गई थी।

इसी काल-सीमा पर बाङ्ला काव्य के विकास का दूसरा चरण 'रवींद्र युग' के रूप में आविर्भूत हुआ। यह 'ससीम में असीम के दर्शन और आधुनिक साहित्य में सार्वभौम के लिए प्रयास' का युग था। इस युग के केंद्र में रवींद्रनाथ ठाकुर (1861-1941) थे, जिन्हें साहित्येतिहासकार सुकुमार सेन ने 'भारतीय कवियों में सर्वाधिक भारतीय, साथ ही सर्वाधिक सार्वभौम कवि' कहा है। स्वयं रवींद्रनाथ ने भी एकाधिक बार घोषित किया था--- 'आमि पृथिबीर कबि'। विश्व भर ने उन्हें उनकी घोषणा के अनुसार स्वीकार भी किया।

'पृथ्वीराजेर पराजय' रवींद्रनाथ की पहली काव्य-कृति थी, जिसकी पाण्डुलिपि के नष्ट हो जाने की सूचना मिलती है। चार सर्गों में रचित लघु काव्य 'कवि काहिनी' को रवींद्रनाथ ने

अपनी प्रथम प्रकाशित काव्य पुस्तक माना है। यह सन् 1878 में छपी थी। बनफूल, भग्न हृदय, संध्या संगीत, प्रभात संगीत, छबि ओ गान, शैशव संगीत आदि उनकी काव्य-यात्रा के पहले पड़ाव की रचनाएँ हैं। अपनी काव्य-यात्रा के पहले चरण में ही रवींद्रनाथ ने 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' की रचना की थी। ब्रजबुलि में रचित इसके वैष्णव पदों को उत्तर मध्यकाल के किसी भानुसिंह ठाकुर कवि के पद मान लिया गया था। चैताली, सोनार तरी, विदाय अभिशाप, चित्रा, कल्पना, शिशु, गीतांजलि, गीतिमाल्य, बलाका, प्रवाहिनी, वनवाणी, वीथिका, श्यामली, आकाश प्रदीप, जन्मदिने आदि रवींद्रनाथ की साठ के लगभग काव्य कृतियाँ हैं। 'छड़ा' और 'शेषलेखा' काव्य-कृतियों का प्रकाशन रवींद्रनाथ की मृत्यु के बाद हुआ। रवींद्रनाथ ठाकुर को विश्वकवि के रूप में प्रतिष्ठित करने वाला काव्य 'गीतांजलि' है। स्वयं कवि द्वारा किया गया इसका अंग्रेजी गद्यानुवाद 'सौंग ऑफरिंग्स' नाम से सन् 1912 में प्रकाशित हुआ। रवींद्रनाथ को गीतांजलि के लिए सन् 1913 में 'नोबल पुरस्कार' के लिए चुना गया।

रवींद्र युग में रवींद्रनाथ ठाकुर से प्रेरित और प्रभावित कवियों में राजनीकांत सेन, अतुल प्रसाद सेन, सतीशचंद्र राय, रमणी मोहन घोष, प्रमथनाथ चौधरी, गिरिजानाथ मुखोपाध्याय, विजयकृष्ण घोष, सत्येन्द्रनाथ दत्त, यतीन्द्रमोहन बागची, कुमुदरंजन मल्लिक कालीदास राय, दौलत अहमद, सैयद इमदाद अली, काजी इमदादुल हक आदि का नाम लिया जा सकता है। कवयित्रियों में प्रियंवदा, सुरमा सुंदरी घोष, अनंगमोहिनी देवी, अंबुजा सुंदरी दासगुप्त, नगेंद्रबाला बसु आदि ने रवींद्र परिकर के रचनाकारों में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

रवींद्र युग में ही काजी नज़रुल इस्लाम (1898-1976) ने बाङ्ला काव्य के इतिहास में रोमानियत की अतिशयता से मुक्त होकर स्वाधीन क्रांतिकारी समाज निर्माण का उद्घोष करते हुए एक नया मोड़ उपस्थित किया। सन् 1922 में प्रकाशित उनके काव्य-संग्रह 'अग्निवीणा' के क्रांतिकारी भावों और ओजस्वी भाषा ने कवि को 'विद्रोही कवि काजी नज़रुल इस्लाम' के रूप में लोकप्रिय बना दिया। उसी वर्ष उन्होंने धूमकेतु नाम से एक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इसके क्रांतिकारी तेवर के कारण नज़रुल को सरकार का कोपभाजन बनाना पड़ा। नज़रुल ने धार्मिक दुराग्रह से ऊपर उठते हुए सांप्रदायिकता का विरोध किया। श्यामा संगीत, रक्तांबरधारिणी माँ, कोरबानी, मुहर्रम आदि पर रची गई कविताएँ उनकी कवि-दृष्टि का परिचय देती हैं। काजी नज़रुल इस्लाम ने बाङ्ला गीति-काव्य में भी एक स्वतंत्र शैली का विकास किया, जिसे 'नज़रुल गीति' के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। विद्रोही, भांगार गान, विषेर बाँसी, दोलनचाँपा, सिंधु हिल्लोल, छायानट बुलबुल आदि उनकी अन्य चर्चित काव्य कृतियाँ हैं।

उसी काल में, रवींद्र-काव्य की केंद्रीय चेतना को बाङ्ला कविता की आधुनिकतावादी यात्रा, प्रगतिशील दृष्टिकोण की प्राप्ति और यथार्थ से अति यथार्थ की ओर बढ़ती परिस्थितियों की अभिव्यक्ति में बाधा मानने वाले कवियों का भी एक समूह उठ खड़ा हुआ। यह समूह रवींद्र को प्रयोगधर्मिता और यथार्थ की दिशा में तेजी से बढ़ने को व्याकुल बाङ्ला कविता के मार्ग की बाधा मानता था। उसने घोषित किया था कि रवींद्रनाथ को अस्वीकार किए बिना कविता के नवीन क्षितिज नहीं खुल सकेंगे। रवींद्र-अस्वीकृति-समूह का नेतृत्व मोहितलाल मजूमदार और यतींद्र सेनगुप्त ने किया। जीवनानंद दास, प्रेमेंद्र मित्र, बुद्धदेव बसु, विष्णु दे, सुधींद्रनाथ दत्त, अमिय चक्रवर्ती आदि रवींद्रनाथ के प्रभामंडल-पाश से बाङ्ला कविता को मुक्त करने की इच्छा रखने वाले इस समूह के मुख्य कवि थे। वस्तुत: बाङ्ला कविता के इतिहास में यह मोड़ प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विश्व-जीवन में उभरे मृत्युभय, संशय, व्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन की स्थिति, मनोविश्लेषणवाद से परिचय, आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग की दैनंदिन समस्याओं से उत्पन्न सवाल, सामाजिक-विघटन के संकट की शुरुआत, मार्क्सवादी विचारधारा के प्रारंभिक प्रभाव, इलियट, डी.एच.लारेंस, मलार्मे, एजरा पाउंड, प्राऊस्ट के प्रति आकर्षण आदि के कारण आया। इस समूह ने अपनी काव्य मान्यताओं के समर्थन तथा रवींद्रनाथ की अस्वीकृति के लिए कल्लोल, प्रगति, परिचय आदि पत्रिकाएँ प्रकाशित की थीं। इनमें से प्रगति पत्रिका का मोटो ही रखा गया था, 'रबींद्रनाथ हइते आगइया जाओवा अर्थात रबींद्र-रीति सबले अस्वीकार'।

स्पष्ट है कि बाङ्ला कविता सन् 1930 के आसपास नवीन काव्य प्रयोगों, आंदोलनों, नवीन विचारधाराओं और यथार्थ के नए रूपों की ओर बढ़ी। कवियों ने छंद-प्रतीक-बिंब के नवीन विधान के साथ ही प्रकृति को भी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा के कवियों, विशेषकर रवींद्रनाथ से भिन्न ढंग से देखा। उन्होंने  काव्यभाषा के अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी रूप की दिशा में बढ़ने की घोषणा की। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभावों ने काव्य में इन प्रवृत्तियों के स्वीकार को और भी संगतिपूर्ण बना दिया। बुद्धदेव बसु के 'बंदीर बंदना', 'पृथिवीर प्रति', 'कंकावाती', 'द्रोपदीर शाड़ि', विष्णु दे के 'उर्वशी ओ आर्टेमिस', 'चोराबल्ली', 'नाम रेखेछि कोमल गांधार', अमिय चक्रवर्ती के 'खसड़ा', 'एक मुठो', 'माटिर देओयाल', 'पाराबार' और जीवनानंद दास के 'धूसर पाण्डुलिपि', 'वनलता सेन', 'महापृथिवी', 'सातटि तारार तिमिर', 'रूपसी बाङ्ला' जैसे काव्य संग्रहों में इस परिवर्तन की अनुगूँज सरलता से सुनी जा सकती है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, सुभाष मुखोपाध्याय, कृष्णधर, आलोक सरकार, सुनील गंगोपाध्याय, समरेंद्र सेनगुप्त, शरतकुमार मुखोपाध्याय, सुकांत भट्टाचार्य, शक्ति चट्टोपाध्याय, आलोकरंजन दासगुप्त, शंख घोष, अरुण भट्टाचार्य आदि कवियों में

से कुछ ने वामपंथी विचारधारा से प्रेरित होकर कविताएँ रचीं , कुछ ने विचारधारा के साथ प्रतिबद्धता को परे सरका कर जन-प्रतिरोध और जन-पक्षधरता को काव्य का विषय बनाया और कुछ राजनैतिक-आर्थिक दुरभिसंधियों, व्यक्ति मूल्यों तथा व्यक्ति की स्वाधीनता को आधार बना कर कविता रचते रहे। इन्हीं मूल्यों-मान्यताओं के साथ बाङ्ला कविता इक्कीसवीं शताब्दी में फलफूल रही है।

बाङ्ला कविता के इतिहास में साठ के दशक में प्रारंभ हुए 'भूखी पीढ़ी' आंदोलन और उसके प्रमुख कवि मलय राय चौधरी की चर्चा पर्याप्त हुई है, लेकिन हमारा ध्यान दलित चेतना और आदिवासी चेतना की कविता की ओर भी जाना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से बंगाल में दलित चेतना का प्रारंभ सन् 1887 में श्रीमंत नस्कर (1863-1907) की पुस्तक जाति-चंद्रिका' से होता है। बाङ्ला काव्य में दलित चेतना ने सन् 1943 में अनिलरंजन विश्वास के काव्य संग्रहों, 'झरना' और 'बिदाय गोधूलि' के जरिए अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उनके कुल आठ संग्रह प्रकाशित हुए। अनिलरंजन के अतिरिक्त अनिल सरकार, मनोहरमौलि विश्वास, श्यामल कुमार प्रामाणिक, कल्याणी ठाकुर, मंजुबाला, वीनाराम सरकार, सुकांत मंडल, कल्पना शिव, दुलाल उड़िया, अचिंत्य विश्वास आदि दलित कवियों ने बाङ्ला दलित-चेतना का विस्तार किया। दलित कवि अचिंत्य ने घोषित किया--- 'बहुत सहा है/अब और नहीं'। जहाँ तक आदिवासी-चेतना का सवाल है, वह बाङ्ला काव्य में प्रारंभिक अवस्था में है।

### 9.3.4.2. नाटक और रंगमंच

बाङ्ला नाटक और रंगमंच बाङ्ला लोक-नाट्य शैलियों, चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव मत द्वारा प्रारंभ जात्रा, संस्कृत नाटक परंपरा और पश्चिम के नाटक व रंगमंच से प्रेरित है। चैतन्य महाप्रभु के भक्तों ने धर्म-यात्राओं में पद-गायन को स्थान दिया, जो भक्ति के आवेश और अभिव्यक्ति की स्वाभाविक प्रक्रिया में नाट्य की ओर बढ़ गया। यहाँ भक्तों की सहायता बंगाल के लोकजीवन में पहले से विद्यमान नाट्य शैलियों ने की। उल्लेखनीय है कि गौड़ीय वैष्णव मत के कीर्तन में नाट्य के मिश्रण से 'जात्रा' नामक नाट्य शैली की शुरुआत हुई। श्रीकुमार बनर्जी का मत है कि "क्रमश: 'जात्रा' ने कथानक, पात्र एवं संवाद से युक्त पूर्ण नाटक का रूप ले लिया, पर संगीत का प्राचुर्य उसमें बराबर बना रहा। दृश्य विधान, यवनिका आदि से युक्त कोई व्यवस्थित मंच न था। इनका प्रदर्शन वर्गाकार रंगशालाओं में होता था, जिसके चारों ओर श्रोताओं की भीड़ बैठती थी।" जब बंगाल व्यवस्थित रंगमंच की ओर बढ़ने को तैयार होने लगा, तो पहले-पहल संस्कृत के नाटकों का अनुवाद प्रारंभ हुआ। इसके बाद अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद किए गए। कालांतर में बाङ्ला उपन्यासों के नाट्य रूपांतर भी काफी संख्या में हुए।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेज़ शासक अपनी संस्कृति के अंग के रूप में और अपनी भाषा में मनोरंजन के उद्देश्य से विक्टोरियन शैली का रंगमंच ले आए थे। सन् 1775 में 'कलकत्ता थिएटर' स्थापित हुआ, जिसमें अंग्रेजी नाटकों का मंचन किया जाता था। बाङ्ला रंगमंच की नींव सान् 1795 में पड़ी। इसका श्रेय एक रूसी विज्ञान व्यवसायी हेरासिम लेबोदाफ को है। इस रंगमंच पर अंग्रेजी कामेडी 'डिसगाइज' का बाङ्ला रूपांतर 'छद्मवेश' नाम से तथा एक प्रहसन 'लव इज द बेस्ट डॉक्टर' का बाङ्ला रूपांतर खेला गया। भूमिकाएँ बंगाली अभिनेता-अभिनेत्रियों द्वारा निभाई गईं। इसके बाद बंगालियों के भीतर अपने घरों के आंगन अथवा सामने खुले स्थान पर अस्थाई मंच बना कर नाटक-प्रदर्शन के प्रति रुचि जागी। प्रसन्न कुमार ठाकुर, नवीनचंद्र बसु, कालीप्रसन्न सिंह आदि ने इस पद्धति से रंगमंच बनवाए। यह अन्य भाषाओं से नाटकों के अनुवाद और कृतियों के नाट्य रूपांतर के साथ ही बाङ्ला में मौलिक नाटक-लेखन को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

बाङ्ला में नाटक-लेखन का पहला प्रयास सन् 1852 में ताराचरण सीकदार द्वारा किया गया। उन्होंने पश्चिमी नाट्य-कला का अनुकरण करते हुए महाभारत के सुभद्राहरण प्रसंग पर 'भद्रार्जुन' नाटक लिखा। नाट्य-कला के तत्वों की अतिशय निर्बलता के कारण इसे समालोचकों ने नाटक मानने से परहेज किया। सन् 1854 में पंडित रामनारायण तर्करत्न द्वारा लिखा गया नाटक 'कुलीन कुलसर्वस्व' प्रकाशित हुआ। इसे बाङ्ला का पहला मौलिक नाटक माना गया। 'कुलीन कुलसर्वस्व' में बंगाल के सेन शासक, बल्लाल सेन द्वारा प्रारंभ की गई 'कुलीन प्रथा' के विनाशकारी सामाजिक परिणामों को दर्शाया गया था। इसका पहला मंचन सन् 1856 में किया गया। रामनारायण तर्करत्न ने 'नव नाटक' शीर्षक दूसरा नाटक भी लिखा। उन्होंने संस्कृत नाटक 'वेणीसंहार' का बाङ्ला में अनुवाद भी किया। इसे सन् 1857 में कालीचरण सिंह द्वारा अपने ही आंगन में बनाए गए 'विद्यातोषिणी' नामक रंगमंच पर प्रदर्शित किया गया।

सन् 1858 में पायकपाड़ा के राजा ईश्वरचंद्र सिंह द्वारा कोलकाता में 'बेलगाछिया थिएटर' नाम से बाङ्ला के पहले स्थाई रंगमंच की स्थापना की गई। इस थिएटर का उद्घाटन रामनारायण तर्करत्न द्वारा किए गए श्रीहर्ष की कृति 'रत्नावली' के बाङ्ला रूपांतर के प्रदर्शन से हुआ। इसी मंच पर रत्नावली का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रदर्शित किया गया। यह अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त से करवाया गया था। स्मरणीय है कि अनूदित अंग्रेजी नाटक की अत्यधिक सफलता ने मधुसूदन दत्त के भीतर की नाट्य-लेखन प्रतिभा को जगाया, जिस कारण उन्होंने महाभारत के एक प्रसंग को आधार बना कर बाङ्ला में 'शर्मिष्ठा' नाटक की रचना की। यह नाटक बेलगाछिया रंगमंच पर सन् 1859 में प्रदर्शित किया गया। इसकी सफलता से उत्साहित होकर मधुसूदन दत्त ने 'पद्मावती' (1860) और 'कृष्णकुमारी' (1861) नामक नाटक रचे। उनके

पद्मावती नाटक पर यूनानी नाट्य-शैली का प्रभाव है। मधुसूदन दत्त द्वारा दो प्रहसन भी रचे गए, 'एकेइ की बले सभ्यता' और 'बुड़ोशालिकेर घाड़े'।

सन् 1860 में दीनबंधु मित्र द्वारा लिखा गया नाटक 'नील दर्पण' प्रकाशित हुआ। इसमें नील की खेती करने वाले किसानों पर नील-कोठियों के मालिक अंग्रेज़ साहबों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों के साथ ही उनके कुकृत्यों को दर्शाया गया था। यह राष्ट्रीय चेतना के उभार को अभिव्यक्त करने वाले प्रारंभिक भारतीय नाटकों में से एक है। इससे जुड़ी एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। कोलकाता का 'द ग्रेट नेशनल थिएटर' (स्था. 1872) अपनी नाटक-प्रदर्शन यात्रा में सन् 1876 में लखनऊ में 'नीला दर्पण' का मंचन कर रहा था। किसानों का शोषण और अन्य अत्याचार दर्शाने के क्रम में जब नाटक का वह दृश्य आया, जिसमें तोराप नाम का पात्र, भारतीय युवती का बलात्कार करने की कोशिश करने वाले अंग्रेज़ साहब 'मि. रोग' पर लात-घूँसे बरसाता है, तो अंग्रेज़ दर्शक उत्तेजित होकर तोराप पर हमला करने के लिए मंच की ओर दौड़ पड़े। दीनबंधु मित्र ने 'सधवार एकादशी', 'नवीन तपस्विनी', 'कमले कामिनी' आदि नाटक, 'बिये पागला बुड़ो' (प्रहसन) व 'जामाई बारीक' (व्यंग्य नाटक) भी लिखे।

बाङ्ला नाटक और रंगमंच के इतिहास में नव-युग का आगमन गिरीशचंद्र घोष (1844-1912) से माना जाता है। उन्हें बाङ्ला थिएटर को राजाओं और धनाढ्य बंगाली वर्ग से मुक्त करके साधारण जनता के बीच ले जाने का श्रेय दिया जाता है। वे नाटक लेखक, अभिनेता, निर्देशक, थिएटर मंडलियों के संगठनकर्ता आदि थे। गिरीशचंद्र घोष ने महाभारत के कथा-प्रसंगों, पौराणिक घटनाओं-पात्रों, इतिहास, समाज, राष्ट्रीय-चेतना और तत्कालीन जीवन-यथार्थ को उपजीव्य बना कर लगभग अस्सी नाटक लिखे। 'अभिमन्यु वध', 'पांडव गौरव', 'सिराजुद्दौला', 'मीर कासिम', 'छत्रपति शिवाजी', 'अशोक', 'बलिदान' आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। उन्होंने जात्रा और संगीत रूपक भी रचे। गिरीशचंद्र घोष युग के अन्य नाटककारों और रंगकर्मियों में अमृतलाल बसु, उपेंद्रनाथ दास, धर्मदास सुर, नागेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय, अर्धेंदुशेखर मुस्तफ़ी, विनोदिनी देसाई आदि प्रसिद्ध हैं।

द्विजेंद्रलाल राय (1863-1913) ने बाङ्ला नाटक और रंगमंच को गिरीशचंद्र घोष से आगे बढ़ाया। अप्रतिम नाटक-लेखन और रंगमंचीय प्रतिभा के कारण उन्हें बाङ्ला का 'पहला आधुनिक नाटक लेखक' कहा गया। स्वयं गिरीशचंद्र घोष ने द्विजेंद्रलाल राय को 'भविष्य का नाटककार' कहा था। 'कल्कि अवतार', 'पाषाणी', 'प्रायश्चित', 'मेवाड़ पतन', 'चंद्रगुप्त', 'शाहजहाँ', 'वीर दुर्गादास' आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। इतिहास के साथ कम से कम मनमानी करने, धार्मिक पुनरुत्थान के बदले मानववादी सेकुलर दृष्टि अपनाने, कर्म और मनुष्य की नियति

के यथार्थ को पहचानने, नाट्य-भाषा को कलात्मक गंभीरता संपन्न बनाने और नाटक में अभिनव चेतना को स्थान देने के कारण बाङ्ला नाटक और रंगमंच के इतिहास में 'द्विजेंद्रलाल युग' नाम से एक अलग युग माना गया। इस प्रकार एक ही काल-खंड में कार्यरत दो नाटककारों ने बाङ्ला नाटक और रंगमंच को अपने-अपने वैशिष्ट्य से सींच अपनी अलग पहचान बनाई।

उसी काल में बाङ्ला नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में अमृतलाल बसु और क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद भी सक्रिय थे। अमृतलाल बसु गिरीशचंद्र घोष की नाट्य-मंडली के सदस्य थे और नाटककार के साथ ही बाङ्ला थिएटर के उत्कृष्ट हास्य-अभिनेता भी थे। उन्होंने 'हरिश्चंद्र', 'याज्ञसेनी', 'नव यौवन', 'खास दखल', 'तरुबाला', 'कालापानी' आदि नाटक लिखे। क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद को उनकी नाटक-लेखन दृष्टि के कारण द्विजेंद्रलाल राय के निकट माना जाता है। उन्हें नाट्य-संवादों में विविध नवीन प्रयोगों तथा नाट्य-भाषा को प्रसंगानुकूल बनाने के विशेष कौशल के कारण प्रसिद्धि मिली। क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के 'प्रतापादित्य', 'भीष्म', 'सावित्री', 'आलमगीर', 'दौलते दुनिया', 'नरनारायण' आदि नाटक खूब सराहे गए। उन्होंने 'अलीबाबा' नामक संगीत ओपेरा भी लिखा था।

द्विजेंद्रलाल राय के बाद बाङ्ला नाटक और रंगमंच को रवींद्रनाथ ठाकुर मिले। उनकी पहली नाट्य-रचना 'रुद्रचंड' नाटिका है, जिसका प्रकाशन 1881 में हुआ था। रणजीत साहा ने इसे 'युवा कवि रवींद्रनाथ के सफल काव्याभ्यास का निदर्शन' माना है। नाट्य-कला की दृष्टि से रवींद्र ने 1881 में ही 'वाल्मीकि प्रतिभा' शीर्षक सफल गीतिनाट्य की रचना करके बाङ्ला नाटक और रंगमंच को नवीन आभा से भर देने की आशा जागा दी। इसके बाद रवींद्रनाथ द्वारा रची गई 'कालमृगया', 'प्रकृतिर प्रतिशोध', 'चित्रांगदा', 'डाकघर', 'नटीर पूजा', 'रक्त करबी', 'श्यामा', 'मुक्तिर उपाय' जैसी चालीस से अधिक नाट्य-रचनाओं ने बाङ्ला नाटक को विश्व नाट्य साहित्य के समक्ष गौरव के साथ खड़ा होने का अवसर प्रदान किया। उनके नाटकों में गीत-प्रयोग का वैशिष्ट्य और डाकघर जैसे नाटकों की प्रतीकात्मकता बाङ्ला नाटक की अभिनव उपलब्धि है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी ही कथा-कृतियों के नाट्य रूपांतर भी किए थे।

रवींद्रनाथ ठाकुर परवर्ती काल बीसवीं शताब्दी के मध्याह्न से इक्कीसवीं शताब्दी की ओर बढ़ता हुआ और तेजी से बदलता हुआ काल है। इस काल के नाटकों को दो-दो विश्वयुद्धों के साथ ही स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के राजनैतिक बदलावों, सामाजिक परिस्थितियों, वैश्विक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों, विचारधाराओं के संघर्ष, व्यक्ति के अस्तित्व के सामने खड़े सवालों, धर्म और सांप्रदायिकता के विविध पक्षों, आर्थिक समस्याओं, स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक समुदायों पर होने वाले आक्रमणों और उनका सामना करने वाले इन समूहों की प्रतिरोधी चेतना आदि ने गहराई से प्रभावित किया। इस प्रभाव के कारण निरंतर जटिल होती बीसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर संपूर्ण परवर्ती काल के यथार्थ को बाङ्ला नाटकों एवं रंगमंच

ने अभिव्यक्त किया। रवींद्रोत्तर काल नवनाट्यांदोलनों का काल है। इस कालखंड में 'गण नाट्यांदोलन' उभरा, जिसने बाङ्ला नाटक को जनता की समस्याओं और विसंस्कृतिकरण के संकट को सामने लाने का माध्यम बनाया। इस संदर्भ में, नाटक-लेखन और रंगमंच, दोनों ही दृष्टियों से 'इंडियन पीपल्स थिएटर एसोसिएशन' ('इप्टा') की भूमिका महत्वपूर्ण है। वैसे, पूर्व में यह परिवर्तन विजन भट्टाचार्य के नाटकों, 'आगुन', 'जवाबबंदी' (1943) और 'नवान्न' (1944) में भी दिखाई दिया था।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बाङ्ला भाषा में 'रुद्ध संगीत' जैसा सशक्त नाटक लिखा और मंचित हुआ, जिसने साम्यवाद के रेजीमेंटेशन का सामना करते कलाकारों के माध्यम से कम्युनिस्ट शासकों के चरित्र में आई विकृतियों पर सवाल उठाए। सन् 1959 में 'मृत्युर चोखे जल', 1965 में 'मृत्यु संवाद', 1971 में 'राज रक्त', 1972 में 'चाक भांगा मधु', 1976 में 'नाटक गुलजार', 1978 में 'अमिताक्षर', 1986 में 'निशाभोज', 1990 में 'स्वप्न संतति' आदि नाटकों ने बंगाल और वैश्विक जीवन की स्थूल-सूक्ष्म समस्याओं को प्रस्तुत किया। स्वातंत्र्योत्तर काल में बाङ्ला नाटक और रंगमंच को उत्पल दत्त, बादल सरकार, रुद्रप्रसाद सेनगुप्त, व्रात्य बसु, शंभु मित्र, साँओली मित्र, अर्पिता घोष जैसे प्रख्यात रंगकर्मी मिले। इसी अवधि में लिटिल थिएटर ग्रुप, नंदीकर, चेतना, नक्षत्र, बहुरूपी, अनामिका, लिविंग थिएटर, पंचम वैदिक जैसी रंग संस्थाएँ भी अस्तित्व में आईं।

बादल सरकार ने बाङ्ला नाटक और रंगमंच को प्रोसीनियम थिएटर की सीमाबंदी से निकाल कर 'फ्री थिएटर' की जमीन पर ला खड़ा किया तथा 'परिक्रमा' योजना के अंतर्गत नाटक व रंगमंच को छोटे शहरों से गाँव की ओर ले गए। इसी के साथ उन्होंने 'तीसरा रंगमंच'--- विकल्प का रंगमंच--- की अवधारणा को साकार किया। रंगमंच के साथ ही इसका निर्णायक प्रभाव नाटक-लेखन पर पड़ा; क्योंकि तब बाङ्ला में तीसरा रंगमंच के अनुकूल नाटकों का अभाव था। इस समस्या ने बादल सरकार से 'बल्लभपुरेर रूपकथा', 'एवं इंद्रजित', 'तीसवीं शताब्दी', 'पागला घोड़ा', 'संगीता मेहता', 'अबूहसन', 'मिछिल' जैसे युगजीवी नाटक लिखवाए। नाटकों की कमी की भरपाई के लिए अनुवाद, रूपांतरण और एडाप्टेशन के माध्यम से चेखव, गोर्की, इब्सन, ब्रेख्त आदि बाङ्ला नाटक साहित्य के अंग बने। सन् 2004 में रंगकर्मी अर्पिता घोष ने सार्त्र के नाटक 'क्राइम पैशनेल' का अनुवाद 'राजनीतिक हत्या' शीर्षक से किया। इस तरह, प्रयोग और प्रतिरोध के साथ बाङ्ला नाटक व रंगमंच की यात्रा जारी है।

### 9.3.4.3. कथा-साहित्य
#### उपन्यास

बंगाल के लीक-समाज में ‘विद्या-सुंदर’ और ‘कामिनी-कुमार’ आदि आख्यान काफी पहले से चले आ रहे हैं। ये मनुष्य के भीतर छिपे कथा तत्व के संकेत हैं। सन् 1854 में ताराशंकर तर्करत्न ने संस्कृत कृति ‘कादंबरी' का अनुवाद किया। उसी काल में मदनमोहन तर्कालंकार ने ‘स्वप्नवासवदत्ता’ का अनुवाद किया। ऐसे प्रयास कथा तत्वों को एक समाज से दूसरे समाज तक पहुँचाने वाले होते हैं। लगभग यही समय रहा होगा, जब बाङ्ला में भवानीचरण बंद्योपाध्याय की ‘नवबाबू विलास’ शीर्षक गद्य-रचना प्रकाशित हुई। इसमें नव शिक्षितों पर व्यंग्य किया गया है। तभी कालिप्रसन्न सिंह की गद्य-रचना, ‘हुतोम पेंचार नक्शा’ छपी। सन् 1858 में प्यारीचांद मित्र उर्फ टेकचंद ठाकुर की गद्य-रचना, ‘आलालेर घरेर दुलाल’ प्रकाशित हुई। इनमें से प्यारीचांद मित्र की कृति को कुछ लोगों ने बाङ्ला की पहली उपन्यास-कृति मान लेना चाहा था, लेकिन यह मत आगे नहीं बढ़ सका। विधागत कसौटी के आधार पर यह सिद्ध हो गया की ‘आलालेर घरेर दुलाल’ उपन्यास के निकट भले ही हो, परंतु वह उपन्यास नहीं है।

गद्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में बाङ्ला में उपन्यास की नींव बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय(1838-1894) ने रखी। सन् 1865 में प्रकाशित ‘दुर्गेशनंदिनी’ बंकिम का भी पहला उपन्यास है और बाङ्ला का भी। इसके प्रकाशित होते ही बाङ्ला पाठकों और समीक्षकों के आश्चर्य की सीमा न रही। पंडित शिवनाथ शास्त्री ने कहा कि ‘ऐसा उपन्यास बाङ्ला में पहले किसी के देखेने में नहीं आया।’ यही नहीं, ‘संवाद प्रभाकर’ पत्रिका ने लिखा--- “अंग्रेजी में जैसे उत्तम उपन्यास हैं, बाङ्ला भाषा में वैसे नहीं हैं; इस निमित्त हम इस उत्कृष्ट प्रथम बाङ्ला उपन्यास को गौरव का स्थान देते हैं। वस्तुत: इस पुस्तक में असाधारण नैपुण्य का प्रदर्शन करके बंकिम बाबू “बाङ्ला के प्रथम उपन्यासकार” उपाधि के अधिकारी बने हैं।” (बंकिम समग्र, पृ. 980)। इस प्रकार बाङ्ला कथा साहित्य के इतिहास में ‘बंकिम युग’ की शुरुआत हुई। दुर्गेशनंदिनी के पश्चात बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के ‘कपाल कुंडला’(1866), ‘मृणालिनी’(1869), ‘विषवृक्ष’(1873), ‘इंदिरा’(1873), ‘युगलांगुरीय’(1874) ‘चंद्रशेखर’(1875), ‘रजनी’(1877), ‘कृष्णकांतेर उइल’(1878), ‘राजसिंह’ (1882) ‘आनंदमठ’(1882), ‘देवी चौधरानी’(1884), ‘राधारानी’(1886) और ‘सीताराम’(1887) उपन्यास प्रकाशित हुए।

भाषाई और अन्य साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त, बंकिम के उपन्यास इतिहास के माध्यम से बाङ्ला नवजागरण की राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करने तथा भारत के राष्ट्रीय चिंतन को राह दिखाने वाले हैं। प्रख्यात राष्ट्रवादी विपिनचंद्र पाल ने उनके तीन उपन्यासों पर टिप्पणी

करते हुए कहा था कि, “केवलमात्र रसमूर्ति की सृष्टि करने के उद्देश्य से ही बंकिमचंद्र ‘आनंदमठ’, ‘देवी चौधरानी’ या ‘सीताराम’ की रचना में प्रवृत्त नहीं हुए थे। इन तीनों (रचनाओं) का उद्देश्य था, देशवासियों को भारत के उच्चांग कर्मयोग में दीक्षित करना।” (बंकिम समग्र, पृ. 994)। स्वाधीन भारत का राष्ट्रगीत ‘वंदे मातरम्’ उनके उपन्यास ‘आनंदमठ’ के लिए रचा गया था।

बंकिम युग में इतिहास को उपन्यासों का उपजीव्य बनाने वाले लेखक के रूप में रमेशचंद्र दत्त ने भी प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनका उपन्यास ‘बंगविजेता’ सन् 1874 में प्रकाशित हुआ था, जिसने बाङ्ला के ऐतिहासिक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनके ‘माधवी कंकण’, ‘राजपूत जीवन संध्या’, और ‘महाराष्ट्र जीवन प्रभात’ शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यासों को भी ख्याति मिली। रमेशचंद्र दत्त ने ‘संसार’ तथा ‘समाज’ नामक सामाजिक उपन्यास भी लिखे। राखालदास बंद्योपाध्याय उस काल के ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्हें ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में क्रांतिकारी मोड़ उपस्थित करने वाला लेखक माना जाता है। उन्होंने गुप्त साम्राज्य के उदय और अस्त, पाल वंश के स्वर्ण काल, मुगल काल में बंगाल में पुर्तगालियों की दमन-नीति आदि को अपने उपन्यासों का विषय बनाया तथा इतिहास को जीवंत बनाने में सफलता प्राप्त की। ‘शशांक’, ‘करुणा’, ‘ध्रुवा’, ‘धर्मपाल’, ‘मयूख’, ‘असीम’ आदि राखालदास बंद्योपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इस युग के अन्य उपन्यासकारों में तारकनाथ गंगोपाध्याय, प्रभातकुमार, जलधर, मनमोहन चट्टोपाध्याय, दामोदर मुखोपाध्याय, इंद्रनाथ बंद्योपाध्याय, प्रतापचंद्र घोष, स्वर्णकुमारी देवी, मीर मुशर्रफ हुसेन, योगेंद्रचंद्र आदि उल्लेखनीय हैं।

बंकिम युग के बाद बाङ्ला उपन्यास के इतिहास में ‘रवींद्र-शरत युग’ का आगमन हुआ। रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने उपन्यासों में इतिहास, सामाजिक परिवर्तन, स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम के साथ ही नैतिकता और मर्यादा की खोज, भारत और भारतीयता की आधुनिक अस्मिता की व्याख्या, मानव-स्वतंत्रता, स्वाधीनता के लिए संघर्ष के विविध पक्षों, मनोवैज्ञानिकता के साथ विचारशीलता, अधिकांशत: राजन्य और उच्च-मध्य वर्गीय पात्रों, भाषा में लालित्य और काव्यात्मकता को स्थान दिया। ‘करुणा’(1880) रवींद्रनाथ ठाकुर का प्रथम उपन्यास है। इसके बाद उनके ‘बउ ठाकुरानीर हाट’(1882), ‘राजर्षि’(1886), ‘प्रजापतिर्निर्बंध’(1901), ‘नष्टनीड़’(1902), ‘चोखेर बालि’(1902), ‘नौकाडूबि’(1906), ‘गोरा’(1910), ‘चतुरंग’(1916), ‘घरे-बाइरे’(1916), शेषर ‘कविता’(1929), ‘योगायोग’(1929), ‘दुई बोन’(1933), ‘मालंच’(1934) और ‘चार अध्याय’(1934) शीर्षक उपन्यास प्रकाशित हुए।

समालोचकों ने 'गोरा' और 'घरे-बाइरे' को रवींद्र के सबसे प्रभावशाली उपन्यासों में स्थान दिया है। गोरा के विषय में रणजीत साहा का कहना है कि "गोरा तत्कालीन जातीय अस्मिताओं और धार्मिक श्रेष्ठता से उपजी कट्टरता पर आक्रामक प्रहार था, जिसमें रवींद्रनाथ ने तार्किकता के साथ उसका प्रतिकार करते हुए समभाव की संस्कृति और समाज मानव दर्शन को प्रतिष्ठित किया।"

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय(1876-1937) ने उपन्यास लेखन की मूल प्रेरणा बंकिम से ग्रहण की थी। साहित्येतिहासकार सुकुमार सेन ने 'सुलभ शरत समग्र' का संपादन करते हुए शरत के साहित्य गुरु के रूप में बंकिम का नाम लिया है। शरत के कई उपन्यास (जैसे, विराज बोउ, चंद्रनाथ आदि) बंकिमचंद से प्रभावित लगते हैं। दूसरी ओर अपने कई उपन्यासों (अरक्षणीया, विप्रदास आदि) में वे रवींद्र से संवाद करते प्रतीत होते हैं। इसके बावजूद बंकिम और रवींद्र, दोनों के ही प्रभा-मण्डल से मुक्त होकर शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय ने बाङ्ला उपन्यास को एक नितांत भिन्न भूमि पर चलना सिखाया। उन्होंने उपन्यास में प्लॉट की अपेक्षा चरित्र को प्रधानता देना शुरू किया और प्रचलित सामाजिक नैतिकता को सवालों के घेरे में ला खड़ा किया। शरच्चंद्र स्त्री-मन और स्त्री-अस्मिता को पहचानने वाले सबसे बड़े कथाकार थे। 'देहगत सतीत्व' पर 'मनोगत एकनिष्ठ प्रेम' को वरीयता देने वाले शरत के उपन्यास स्त्री पाठकों के बीच विशेष रूप से अपनी पहुँच बनाने में सफल हुए। शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय का कहना था कि "सतीत्व संबंधी मान्यताएँ कभी एक नहीं रहीं, न पहले ही थीं, कदाचित भविष्य में भी नहीं रहेंगी। एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्व एक नहीं हैं। यदि इस तथ्य को साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता, तो यह सत्य बचा नहीं रहेगा।" 'बड़ो दीदी'(1913), 'विराज बोउ'(1914), 'बिंदुर छेले'(1914), 'परिणीता'(1914), 'मेज दीदी'(1915), 'बैकुंठेरउइल'(1915), 'पल्ली समाज'(1916), 'अरक्षणीया'(1916), 'निष्कृति'(1917), 'श्रीकांत'(पहला खंड-1917, दूसरा-1918, तीसरा-1927, चौथा-1933), 'देवदास'(1917), 'चरित्रहीन'(1917), 'गृहदाह'(1920), 'देना-पाओना'(1923), 'शेष प्रश्न'(1931) शरत के उपन्यास हैं।

रवींद्र-शरत युग में विभूति भूषण भट्ट (स्वेच्छाचारी), सुरेंद्रनाथ मजूमदार (सहजीया), अनुरूपा देवी (पोष्य पुत्र, वाग्दत्ता, ज्योतिहारा, मंत्रशक्ति, माँ, महानिशा), इंदिरा देवी (स्पर्शमणि), शैलबाला घोषजाया (शेख दादू, मिष्टि शरबत, नमिता, जन्म अपराधी, जन्म अभिशाप, महिमादेवी) आदि के अतिरिक्त मणि हुसेन, नजीबुर्रहमान, शांता देवी आदि ने भी बाङ्ला उपन्यास साहित्य का विकास किया। उस युग में एक विशेष प्रवृत्ति के दर्शन नरेशचंद्र सेन के उपन्यास 'पापेर छाप'(1922) में हुए। इसे 'वास्तववादी' प्रवृत्ति नाम दिया गया, जिसका

अभिप्राय था--- यौन संबंधों के नग्न चित्रण की प्रवृत्ति। सुकुमार सेन ने 'पापेर छाप' को 'यौन भावनाश्रित क्रिमिनल मनोवृत्ति के चित्रण का पहला उपन्यास' कहा था। मणींद्रलाल बसु और शैलजानंद मुखोपाध्याय ने भी वास्तववादी प्रवृत्ति से प्रभावित उपन्यास लिखे। रवींद्र-शरत युग में ही एक नवीन विशेषता तत्कालीन पूर्वी बंगाल के उपन्यासकारों में लक्षित की गई। वहाँ नजीबर रहमान ने 'अनवारा', 'प्रेमर समाधि'(1919), 'गरीबर मेय'(1923), शेख इदरीस अली ने 'प्रेमेर पोथे'(1926), काजी अब्दुल वदूद ने 'नोदी बक्श'(1919), काजी इमदादुल हक ने 'अब्दुल्ला'(1930), अबुल फजल ने 'प्रदीप ओ पातोंगे'(1940), 'शाहोशिका'(1946) जैसे उपन्यास लिख कर मुस्लिम समाज की विरूपताओं को उजागर करने के साथ ही मुसलिम अस्मिता को भी कथा साहित्य का विषय बनाया। यह बाङ्ला उपन्यास का फ़लक-विस्तार था।

रवींद्र-शरत परवर्ती काल का बाङ्ला उपन्यास उन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित है, जिनका उल्लेख काव्य और नाटक व रंगमंच का परिचय देते हुए किया जा चुका है। विभूतिभूषण बंद्योपाध्या ने 'पथेर पाँचाली' (1929), 'अपराजिता'(1929), 'दृष्टि प्रदीप'(1935) 'आरण्यक'(1938) और ताराशंकर बंद्योपाध्या ने 'कवि'(1938) लिख कर युग परिवर्तन की सूचना दे दी थी। यह परिवर्तन उपन्यास को नगरों और उनसे भी अधिक गांवों में रहने वाले साधारण लोगों के जीवन तथा समाज के साथ ही ग्राम्य प्रकृति तथा यथार्थपरक सांस्कृतिक चेतना का साक्षी बनाने से जुड़ा था। विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय ने 'देवयान'(1944), 'आदर्श हिंदू होटल' (1940), 'इच्छामती' (1949) और ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने 'हाँतुलि बाँकेर उपकथा' (1947), 'नागिनी कन्यार कादिनी'(1952), 'आरोग्य निकेतन'(1952) लिख कर रवींद्र-शरत परवर्ती काल के पहले चरण की अलग पहचान स्थापित कर दी। इस काल में ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने 'गण देवता'(1942) जैसा अपार लोकप्रियता अर्जित करने वाला उपन्यास भी रचा। आशापूर्णा देवी (अग्नि परीक्षा, प्रथम प्रतिश्रुति, सुवर्णलता, बकुल कथा) शैलजानंद मुखर्जी (कयाला कुटि, दिन मजूर), अचिंत्यकुमार सेन (ऊर्णनाभ, काम ज्योत्स्ना), बुद्धदेव बसु (जदि फुटलो कमल, एकदा तुमि प्रिये, बासरघर), सतीनाथ भादुड़ी (जागरी), बनफूल (जंगम, मानदंड, अग्नीश्वर, हाटे-बाजारे), विमल मित्र (बेगम मेरी विश्वास, साहेब बीबी गुलाम, कड़ि दिये कीनलाम, चलो कलकत्ता), प्रबोधकुमार सान्याल (हासुबानु) आदि ने इस चरण के बाङ्ला उपन्यास साहित्य को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया। इस चरण के मार्क्सवादी चेतना के उपन्यासकारों में माणिक बंद्योपाध्याय (दिबारात्रिर काव्य, पुतुलनाचेर इतिकथा) प्रसिद्ध हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में नए प्रयोगों, आधुनिक मूल्यों को अधिक आलोचनात्मक दृष्टि से परखने, लोकप्रिय चरित्रों को मनोविश्लेषणपरक कसौटी पर रख कर

देखने, आम आदमी के संघर्षों को कथा-नायक के रूप में अपनाने और भाषा के प्रति अधिक सपाटबयानी बरतने वाले उपन्यासकारों ने बाङ्ला उपन्यास को एक नवीन चरण का गवाह बनाया। यह कार्य मुख्य रूप से समरेश बसु (विबर, प्रजापति), शंकर (चौरंगी, कल अजाना रे, सीमाबद्ध), गजेंद्रकुमार मित्र (कलकातार काछेइ, पांचजन्य, पौष फागुनेर मेला), अवधूत (मरुतिथे हिंगलाज) आदि ने किया। बाङ्ला उपन्यास साहित्य में अद्वैतमल्ल बर्मन के सन् 1956 में प्रकाशित उपन्यास, 'तितास एकटि नदीर नाम' उपन्यास से दलित चेतना का प्रारंभ हुआ। इसके पश्चात समरेंद्र वैद्य (पितृगण), ब्रजेन मल्लिका (कलार मंदास), ज्योति प्रकाश (मानुषेर रंग), कपिलकृष्ण ठाकुर (उजानतलीर उपकथा), श्यामल कुमार प्रामाणिक (बसन हारिये जाय) आदि उपन्यासकारों ने इस चेतना को आगे बढ़ाया। इसी प्रकार महाश्वेता देवी बाङ्ला उपन्यास साहित्य में प्राप्त 'आदिवासी-चेतना' की सर्वाधिक सशक्त रचनाकार हैं। उनके 'अरण्येर अधिकार', 'टेरोडेक्टिल', 'हाजार चुराशीर मा' आदिवासी-सच के भीतर से आदिवासी-चेतना की खोज करने वाले कालजयी उपन्यास हैं।

कहानी

काफी समय तक यह माना जाता रहा कि स्वर्ण कुमारी देवी की रचना 'संकल्पना' बाङ्ला की पहली कहानी है। यह सन् 1892 में प्रकाशित हुई थी। लेकिन अब यह स्थापित हो गया है कि रवींद्रनाथ द्वारा लिखी गई कहानी 'भिखारिणी' सन् 1877 में प्रकाशित हो गई थी। उनकी एक दीर्घाकार कहानी 'मुकुट' सन् 1885 में सत्येंद्रनाथ ठाकुर की पत्नी जगदानंदिनी द्वारा प्रारंभ की गई 'बालक' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। उसी काल में रवींद्रनाथ की 'घाटेर कथा' और 'राजपथेर कथा' शीर्षक कहानियाँ भी प्रकाश में आईं। ये सभी भारती और नवजीवन नामक पत्रिकाओं में छपी थीं। सन् 1891 में हितवादी पत्रिका में रवींद्रनाथ की 'देना-पाओना', 'गिन्नी', 'पोस्टमास्टर' आदि छः कहानियाँ प्रकाशित हुईं। सन् 1892 में उनकी 'त्याग' शीर्षक कहानी साधना पत्रिका में छपी। ये कहानियाँ प्रेम के मनोविज्ञान, जातिप्रथा, रूढ़ियों के खंडन, दहेज, राजतंत्र के षड्यंत्र और उन पात्रों के जीवन को भी सामने लाती हैं, जिन्हें रवींद्रनाथ अपनी जमीदारी में निकट से जान गए थे। उनकी प्रारंभिक कहानियों में 'पोस्टमास्टर' जैसी लोकप्रिय रचना है, तो 'काबुलीवाला' भी है, जो विश्व कहानी साहित्य की अमर रचना मानी जाती है। संपादक, शास्ति, अतिथि, प्रायश्चित्त, माल्यदान, अपरिचिता, शेषकथा, शुभ दृष्टि, आदि रवींद्रनाथ की चर्चित कहानियाँ हैं।

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय की कहानियाँ रवींद्रनाथ के काफी बाद प्रकाश में आनी शुरू हुईं। उनकी प्रारंभिक कहानियाँ भारती, जमुना, साहित्य आदि पत्रिकाओं में छपीं। सन् 1913 में

'बिंदुर छेले' का प्रकाशन हुआ। उसके एक वर्ष बाद शरत को कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित करने वाली 'रामेर सुमति' सामने आई।

बीसवीं शताब्दी के पहले चरण के प्रमुख बाङ्ला कहानीकारों में विभूतिभूषण भट्ट, प्रभातकुमार, त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, परशुराम, सुबोध घोष, प्रमथ चौधरी, इंदिरा देवी, निरुपमा देवी, शैलबाला घोषजाया, शांता देवी, शैलजानंद मुखर्जी आदि का नाम लिया जा सकता है। सन् 1923 में 'कल्लोल' पत्रिका के प्रकाशन के साथ जो लेखक-समूह तैयार हुआ था, उसके अनेक सदस्यों ने कहानियाँ लिखीं। इनमें ताराशंकर बंद्योपाध्याय, प्रबोधकुमार सान्याल, भवानी मुखोपाध्याय, प्रेमेंद्र मित्र, बुद्धदेव बसु आदि मुख्य हैं।

द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल में बाङ्ला कहानी तेजी से आगे बढ़ी और उसने कथ्य एवं अभिव्यक्ति की नवीनता से जुडने का प्रयास किया। इस परिवर्तन ने कहानी को स्त्री प्रश्नों, साधारण आदमी के जीवन के सवालों, प्रगतिशील दृष्टिकोण, लोकतंत्र में दबे-कुचले वर्गों के साथ-साथ हाशिये पर धकेल दिए गए गाँवों के यथार्थ से गहराई से जोड़ा। आशापूर्णा देवी के कहानी संग्रह 'जल ओ आगुन'(1940) ने स्त्री को लेकर यह संकेत पहले ही कर दिया था। इसके बाद उनके 'आर एक दिन'(1955), 'सोनाली संध्या'(1962), 'आकाश माटी'(1975), 'एक आकाश अनेक तारा'(1977) कहानी संग्रह आए, जिनमें साधारण जीवन को अतिसाधारण, किंतु अति जटिल सामाजिक परिस्थियों के अंतर्विरोधों के बीच जीने वाले स्त्री-पुरुषों के संघर्षों व मानोदशाओं की कथा मिलती है। इसी दौर में माणिक बंद्योपाध्याय के 'अतसी मामा', 'सरीसृप', 'मिहि' आदि संग्रहों की कहानियों ने पाठकों व समालोचकों का ध्यान आकर्षित किया। समरेश बसु, सैयद मुस्तफा अली, रमापद चौधरी, सुलेखा सान्याल, हरीनारायण चट्टोपाध्याय, सुधीररंजन मुखोपाध्याय आदि कहानीकारों ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की कहानी को समृद्ध किया। महाश्वेता देवी की कहानियाँ उनके उपन्यासों की ही भाँति हाशिये पर पड़े आम लोगों और आदिवासी समुदायों के विरुद्ध खड़ी सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों से जन्मे सवालों से जूझती रहीं। सुनील गंगोपाध्याय, प्रफुल्ल राय, कविता सिंह, आनंद बागची, दिव्येंदु पालित, नवनीता देवसेन, रानी बसु, सुचित्रा भट्टाचार्य, जाया मित्र, कंकावती आदि रचनाकारों ने बाङ्ला कहानी को नई शताब्दी के लिए तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

### 9.3.4.4. निबंध आलोचना एवं अन्य गद्य विधाएँ

बाङ्ला में निबंध लेखन का प्रारंभ करने का श्रेय राजा राममोहन राय को है। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक और आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता को केंद्र में रख कर निबंध लिखना

प्रारंभ किया। इन विषयों के अतिरिक्त साहित्य के विविध पक्षों पर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने निबंध लिखे। विधवा-विवाह के समर्थन में लिखे गए उनके निबंध सन् 1855 में दो खंडों में छपे। आगे चल कर बहुविवाह के विरोध में भी उनके निबंधों की दो संग्रह प्रकाशित हुए। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने समाज और धर्म को केंद्र में रख कर कुछ निबंध लिखे। उनका लिखा 'हिंदू धर्म' निबंध विवाद पैदा करने वाला बना। लेकिन, निबंध विधा को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय रवींद्रनाथ ठाकुर को है। उनका पहला निबंध 'चीने मरणेर व्यवसाय' सन् 1881 में भारती पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। सन 1899 में प्रदीप पत्रिका में रवींद्रनाथ ठाकुर का 'काव्येर उपेक्षिता' प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने कहा, "संस्कृत साहित्य में काव्य-यज्ञशाला के एक किनारे खड़ी जिन कुछेक अनादृताओं से मेरा परिचय हुआ, उनमें मैं उर्मिला को मुख्य स्थान देता हूँ।" आधुनिक हिंदी कविता पर इस निबंध के प्रभाव से साहित्य-प्रेमी अच्छी तरह परिचित हैं। समाज, सभ्यता, साहित्य, सौंदर्यबोध, राष्ट्रीयताबोध आदि असंख्य विषयों पर लिखे रवींद्रनाथ के निबंध 'साहित्य' (1907), 'विचित्र प्रबंध'(1909), 'साहित्येर पथे'(1937), 'कालांतर'(1938) आदि संग्रहों में प्रकाशित हुए। आधुनिक काल में भवानीचरण बंद्योपाध्याय, ललितकुमार बंद्योपाध्याय, प्रमथ चौधरी, सत्येन्द्रनाथ दत्त, सूर्यबाला दासगुप्त, राजशेखर बसु, सुधींद्रनाथ दत्त, अन्नदाशंकर दत्त आदि प्रसिद्ध निबंधकार हुए।

बाङ्ला में आलोचना का प्रारंभ भी सन् 1877 में रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखे गए, 'मेघनाद वध' की आलोचना संबंधी लेख के 'भारती' पत्रिका में प्रकाशन के साथ हुआ। सन् 1901 में रवींद्रनाथ का 'कुमारसंभव ओ शकुंतला' शीर्षक आलोचना-लेख 'बंगदर्शन' पत्रिका में छपा। इससे बाङ्ला में तुलनात्मक आलोचना की शुरुआत मानी जा सकती है। कला विषयक आलोचना प्रारंभ करने का श्रेय बलेंद्रनाथ ठाकुर को है। ऊनका कला-आलोचना का ग्रंथ 'चित्र ओ कथा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। सन् 1927 में नरेशचंद्र सेनगुप्त ने 'साहित्य धर्मेर सीमाना विचार' लिख कर खंडन-मंडन प्रधान आलोचना की नींव रखी। कालांतर में बुद्धदेव बसु, जीवनानंद दास, विष्णु दे आदि ने बाङ्ला आलोचना को आगे बढ़ाया।

बाङ्ला साहित्य में जीवनी लेखन की परंपरा उत्तर मध्य काल में चैतन्य महाप्रभु के जीवनचरित लिखने से प्रारंभ हो गई थी। आधुनिक काल में रामराम बसु, मधुसूदन दत्त, असीम चौधरी, राजगोपाल चट्टोपाध्याय, विमलकुमार घोष आदि ने जीवनी विधा को विकसित किया। सन् 1912 में रवींद्रनाथ ने 'जीबन स्मृति' लिख कर आत्मकथा विधा की शुरुआत की। राश सुंदरी ने पहली स्त्री आत्मकथा 'आमार जीबन' लिखी। प्रसिद्ध है कि शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय के चार

खंडों में लिखे गए उपन्यास 'श्रीकांत' में लेखक की आत्मकथा ही है। सन् 1893 में रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा दूसरी इंग्लैंड यात्रा के दौरान लिखी गई डायरी प्रकाशित हुई थी। बाङ्ला में बुद्धदेव बसु ने 'हठात आलोर झलकानि', 'समुद्रतीर' और अन्नदाशंकर रे ने 'पथे प्रवासे' लिख कर यात्रावृत्त विधा का विकास किया।

## 9.4 : पाठ का सार

बाङ्ला साहित्य के उत्तर मध्यकाल के सीमांत पर भारतचंद्र और रामप्रसाद सेन के काव्य में आधुनिक काल के संकेत मिलने के बाद ईश्वरचंद्र गुप्त के काव्य में युग परिवर्तन के स्वर स्पष्ट सुने जाने लगे थे। अंततः तत्कालीन राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों, शिक्षा पद्धति, पश्चिमी विचार प्रणाली आदि ने समाज और साहित्य में आधुनिक युग आने की घोषणा कर दी। इसी के साथ उपनिवेशवाद से स्वाधीनता तथा सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति पाने के उद्देश्य से बंगाल में नवजागरण का वातावरण निर्मित हुआ। राजा राममोहन राय ने नवजागरण की नींव रखी और रवींद्रनाथ ठाकुर में उसका पूर्ण रूप विकसित हुआ। तरुण बंगाल आंदोलन ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बड़ी संख्या में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने नवजागरण को जन-जन तक पहुँचाया। नवजागरण के परिणामों के साथ ही ईसाई मिशनरियों तथा फोर्ट विलियम कॉलेज और एशियाटिक सोसायटी जैसी संस्थाओं ने बाङ्ला भाषा में गद्य-रचना के प्रादुर्भाव को संभव बनाया।

आधुनिक बाङ्ला काव्य का पहला चरण माइकेल मधुसूदन दत्त से प्रारंभ हुआ। उनका 'मेघनाद वध' बाङ्ला का पहला आधुनिक महाकाव्य है। दूसरे चरण का मूल आधार रवींद्रनाथ ठाकुर का काव्य है। विलक्षण काव्य वैशिष्ट्य के कारण उन्हें 'सर्वाधिक भारतीय और सर्वाधिक सार्वभौम कवि' कहा गया। रवींद्रनाथ को गीतांजलि के लिए नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। रवींद्रोत्तर युग तीव्र गति से परिवर्तित काव्य प्रवृत्तियों, हाशिये के जन-साधारण को काव्य में स्थान देने और विभिन्न काव्यान्दोलनों के लिए जाना जाता है।

आधुनिक बाङ्ला नाटक और रंगमंच का प्रारंभ पश्चिमी प्रभाव से प्रेरित है। बाङ्ला का पहला नाटक पंडित रामनारायण तर्करत्न द्वारा लिखित और सन् 1854 में प्रकाशित कुलीन 'कुलसर्वस्व' है। उसी काल में दीनबंधु मित्र ने 'नीलदर्पण' नामक अति महत्वपूर्ण नाटक लिखा। इसके बाद बाङ्ला नाटक और रंगमंच को गिरीशचंद्र घोष एवं द्विजेंद्रलाल राय ने नया मोड़ दिया। तत्पश्चात रवींद्रनाथ ठाकुर नाट्य-साहित्य में युगांतर लाने वाले नाटककार के रूप में उभरे। रवीन्द्र परवर्ती काल में बादल सरकार ने तीसरा रंगमंच की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसने बाङ्ला में नाटक-लेखन की धारा बदल दी।

कथा साहित्य के अंतर्गत उपन्यास की नींव बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने सन् 1865 में 'दुर्गेशनंदिनी' के माध्यम से रखी, जबकि कहानी का प्रारंभ सन् 1877 में प्रकाशित रवींद्रनाथ

की कहानी 'भिखारिणी' से हुआ। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बाङ्ला कथा साहित्य में दलित और आदिवासी चेतना के आधार पर विपुल साहित्य रचा गया। आधुनिक युग में निबंध और आलोचना सहित गद्य की विविध विधाओं का विकास हुआ।

## 9.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से निम्न लिखित उपलब्धियाँ प्राप्त हुई -

1. आधुनिक कालीन बाङ्ला साहित्य के मूल प्रेरक के रूप में बाङ्ला नवजागरण का गहन अध्ययन किया गया है।
2. काव्य और गद्य के विकास, स्वरूप एवं विविध विधाओं का विवेचन किया गया है।
3. प्रमुख रचनाकारों के कृतित्व की विशेष जानकारी प्रस्तुत की गई है।
4. सामग्री-निर्माण में विद्यार्थियों के भीतर छिपी विवेचन-शक्ति जगाने के अधिकतम अवसर रखे गए हैं।

## 9.6 : शब्द संपदा

1. आगमनी संगीत = उमा अपने पति-गृह, केलास से तीन दिन के लिए मायके आती हैं और अपनी माँ के वात्सल्य को भोगती हैं। बंगाल में इसी प्रसंग में रचे गए गीतों को 'आगमनी संगीत' कहते हैं।
2. आधुनिक = वर्तमान से संबंधित।
3. आभा = चमक, कांति, दीप्ति।
4. कथेतर = कथा के अलावा।
5. कविगान = बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी की कृपा से उदित नव धनाढ्य वर्ग कवियों को आश्रय देकर घोर शृंगारिक कविताएँ रचवा कर सुनता था। इन कविताओं को ही कविगान कहा गया।
6. कुलीन = बंगाल के शासक बल्लाल सेन द्वारा घोषित उच्च सामाजिक वर्ग।
7. चेतना = ज्ञान शक्ति, होश।
8. छड़ा = बाङ्ला काव्य-रचना की एक शैली।
9. तत्कालीन = समय विशेष से संबंधित।
10. नव धनाढ्य = नया-नया धनपति।
11. पीड़ित = सताया हुआ, जिसे पीड़ा दी गई हो।

12. पुरोधा = जिसने कोई कार्य प्रारंभ किया हो, पुरोहित।

13. प्रस्थान = रवानगी, गमन, जाना।

14. प्रादुर्भाव = आना, प्रकट होना, उत्पत्ति।

15. भद्रलोक = बंगाली समाज में आधुनिक काल में बना विशिष्ट और सामाजिक रूप से उच्च माना जाने वाला वर्ग।

16. भासमान = दिखाई देता हुआ, जान पड़ता हुआ।

17. विजया संगीत = उमा के मायके से शिवलोक लौटने के प्रसंग में रचे गए गीतों को 'विजया संगीत' कहा जाता है।

18. संघर्ष = रगड़ खाना, कष्टपूर्वक प्रयास करना।

19. संरक्षण = हानि या नाश से बचाना।

20. समालोचक = गुण-दोष और महत्व का विवेचन करने वाला।

21. सृजन = बनाना, रचना, उत्पन्न करना या होना।

## 9.7: परीक्षार्थ प्रश्न

### खंड (अ)

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिए**

1. राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन ने बंगाल के सामाजिक ढाँचे पर क्या प्रभाव डाला ?
2. आधुनिक कालीन बाङ्ला साहित्य के आगमन में ईश्वरचंद्र गुप्त की भूमिका लिखिए।
3. बाङ्ला नवजागरण में राजा राममोहन राय की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. बाङ्ला काव्य को रवींद्रनाथ ठाकुर की देन पर विचार कीजिए।
5. बाङ्ला नाटक और रंगमंच के विकास में बादल सरकार की भूमिका समझाइए।

### खंड(ब)

**लघूत्तरीय प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में दीजिए**

1. कविगान का आशय लिखिए।
2. नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच संघर्ष का मूल कारण क्या था?
3. रवींद्रनाथ ठाकुर को अस्वीकार करने वाले कवि-समूह की मान्यता लिखिए।
4. नीलदर्पण नाटक की विशेषताएँ लिखिए।
5. बाङ्ला उपन्यास और दलित चेतना पर प्रकाश डालिए।

## खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए :

1. 'अरण्येर अधिकार' किसका उपन्यास है?

(क) आशापूर्णा देवी (ख) महाश्वेता देवी (ग) शंकर

2. समग्र भारतीय नवजागरण का पुरोधा किसे माना जाता है?

(क) बंगाल के नवजागरण को (ख) यूरोप के पुनर्जागरण को (ग) आधुनिक शिक्षा को

3. स्वयं रवींद्रनाथ ने भी एकाधिक बार क्या घोषित किया था ?

(क) 'आमि देशेर कबि' (ख) 'आमि पृथिबीर कबि' (ग) इनमें से कुछ घोषित नहीं किया था

4. कौन स्त्री-मन और स्त्री-अस्मिता को पहचानने वाले सबसे बड़े कथाकार थे?

(क) रवींद्रनाथ ठाकुर (ख) बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (ग)शरच्चंद्र

II. **दिए गए विकल्पों में से चुन कर रिक्त-स्थान भरिए :**

1. रामप्रसाद सेन 'कविरंजन' भी राजा.........के सभाकवि और भारतचंद्र के समकालीन थे। (रामचंद्र/कृष्णचंद्र)
2. बंकिम ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतवासियों को.........में दीक्षित किया। (कर्मयोग/ज्ञानयोग)
3. आधुनिक बाङ्ला साहित्य बाङ्ला...........के गर्भ से उत्पन्न हुआ। (पुनर्जागरण/नवजागरण)
4. बाङ्ला में निबंध लेखन प्रारंभ करने का श्रेय......को है। (राजा राममोहन राय/बंकिमचंद्र)

III. सुमेलित कीजिए

## 9.8 : पठनीय पुस्तकें


1. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश-5, (प्र. संपा. शंभुनाथ),
2. बाङ्ला साहित्य का इतिहास, सुकुमार सेन (अनु. निर्मला जैन),
3. भारतीय साहित्य, (संपा. डॉ. नगेंद्र),
4. भारतीय साहित्य कोश, (संपा. सुरेश गौतम एवं वीणा गौतम)।


--------

# इकाई 10 :  संस्कार : एक तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मूल पाठ: संस्कार उपन्यास: तात्विक विवेचन

10.3.1 यू.आर. अनंतमूर्ति का परिचय

10.3.2 यू.आर. अनंतमूर्ति का उपन्यास साहित्य

10.3.3 संस्कार: उपन्यास का संक्षिप्त कथा

10.3.4 संस्कार के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण

10.3.5 संस्कार: उपन्यास में संवाद

10.3.6 संस्कार: देशकाल और वातावरण

10.3.7 संस्कार: भाषा-शैली

10.3.8 संस्कार: उपन्यास का उद्देश्य और जीवन

10.4 पाठ सार

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

10.6 शब्द संपदा

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

10.8 पठनीय पुस्तकें

## 10.1 : प्रस्तावना

भारतीय समाज में जातिवाद एक ऐसी समस्या है, जिसके विरूद्ध कई महापुरूषों ने लड़ाई लड़ी, परन्तु अंत में जातिवाद की समस्या को हराने में असफल ही रहे। जातिवाद को आज की राजनीतिक व्यवस्था ने मज़बूत बनाने की कोशिश अवश्य की है। परन्तु आज के साहित्य में भी कई ऐसे लेखक अवश्य मिलते हैं जिन्होंने इस व्यवस्था के विरूद्ध संग्राम छेड़ रखा है। ऐसे ही एक लेखक यू.आर. अनन्तमूर्ति रहे हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिये समाज की इस व्यवस्था के विरूद्ध न केवल जागरूक किया है अपितु ये भी समझाया है कि जातिवाद का कुप्रभाव केवल तथाकथित निम्न जाति के लोगों पर ही नहीं होता है बल्कि उच्च जाति के लोगों पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। "संस्कार" उपन्यास कन्नड़ भाषा में लिखा गया है। परन्तु इसका हिन्दी अनुवाद 'चंद्रकान्त कुसनुर' के द्वारा हुआ। "ज्ञान पीठ" पुरस्कार विजेता

'अनन्तमूर्ति' सिर्फ कन्नड़ साहित्य के ही नहीं बल्कि आधुनिक भारतीय साहित्य के भी प्रमुख साहित्यकारों में से एक हैं। ब्राह्मणवाद, अन्धविश्वासों और राढ़िगत संस्कारों पर अप्रत्यक्ष लेकिन इतनी पैनी चोट की गई है कि उसे सहना सनातन मान्यताओं के समर्थकों के लिए कहीं कहीं दूभर होने लगता है। "संस्कार" शब्द से अभिप्राय केवल ब्राह्मणवाद की रूढ़ियों से विद्रोह करने वाले नारणप्पा के दाह-संस्कार से ही नहीं है। अपने लिए सुरक्षित निवास- स्थान, अग्रहार आदि के ब्राह्मणों के विभिन्न संस्कारों पर भी रोशनी डाली गई है- स्वर्णभूषणों और सम्पति- लोलुपता जैसे संस्कारों पर भी। ब्राह्मण-श्रेष्ण और गुरू प्राणेशचार्य तथा चन्द्री बेल्ली और पद्मावती जैसे अलग और विपरीत दिखाई देने वाले पात्रों की आभ्यन्तरिक उथल-पुथल के सारे संसकार अपने असली और खरे-खोटेपन समेत हमारे सामने उधड़ आते हैं।

धर्म क्या है? धर्म शास्त्र क्या है? क्या इनमें निहित आदेशों में मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता के हरण में धर्म है या होना चाहिए? ऐसे अनेक सवालों पर "यू.आर. अनन्तमूर्ति" जैसे लेखक ने सामर्थ्यपूर्ण तथा साहसिकता से विचार किया है। यही कारण है कि वृहद रूप में कन्नड़ विद्वान एम.जी. कृष्णमूर्ति, एस नागराजन, के.बी सुबन्ना तथा शांतिनाथ देसाई तो हैं, ही अनूदित अंग्रेजी संस्करण के आने के बाद तो इस पर लिखने की होड़ सी लग गई। दक्षिण भारतीय भाषा भाषी परिधि के बाहर एक तरज जहां डॉ. नामवर सिंह तथा डॉ. मीनाक्षी मुखर्जी जैसे विचारकों ने उस पर अपनी कलम चलाई तो वहीं दूसरी ओर "इ.एच. इरिक्सन" और वी.एस. जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखकों- आलोचकों ने भी उस पर अपनी राय प्रकट की है। 1970 में जब इस उपन्यास की फिल्म बनाई गई थी तो उसकी नायिका थी "स्नेहलता रेड्डी", जिन्हें इमरजेंसी के दिनों में उन पर किए गए। अत्याचारों के परिणाम स्वरूप प्राण गँवाने पड़े। "संस्कार" उपन्यास सभी अन्य गौरव ग्रन्थों की तरह केवल एक विषय वस्तु ही केन्द्रित नहीं है। बल्कि उपन्यास में हिन्दू धर्म के सामाजिक और आध्यात्मिक पहलूओं की भी विवेचना है।

## 10.2 : उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप -

- इस इकाई के अध्ययन से जातिवाद और नियकीय आघातों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- शैलीगत दृष्टि के संदर्भ में आलोचकों की दृष्टि की चर्चा कर सकेंगे।
- "संस्कार" उपन्यास की सामाजिक दृष्टि से विवेचन तथा विश्लेषण कर सकेंगे।
- "संस्कार" उपन्यास के शिल्प एवं भाव पक्ष के विविध पहलुओं को जान पाऐंगे।
- मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि के द्वारा यू.आर. अनंतमूर्ति के व्यक्तित्व की विवेचना कर सकेंगे।

## 10.3 मूल पाठ : संस्कार उपन्यास : तात्विक विवेचन

भारतीय साहित्य में यू.आर. अनंतमूर्ति का नाम अत्यन्त प्रभावशाली रहा है। उनके द्वारा लिखा गया "संस्कार" उपन्यास ऐसी विशिष्ट कृति है जिसे आधुनिक साहित्य में एक कालाजयी रचना के रूप में सामने आई है। सम्पूर्ण उपन्यास "संस्कार" मुख्यतः तीन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है- 'प्राणेशाचार्य', 'नाराणप्पा' और 'चन्द्री'। उपन्यास का आरंभ नाराणप्पा की मृत्यु के समाचार से प्रारंभ होता है, परन्तु नाराणप्पा आरंभ से अन्त तक उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान रहता है। "संस्कार" उपन्यास की कहानी की शुरूआत 'दुर्वासापुर' नाम स्थान के छोटे से गांव 'अग्रहार' से आरंभ होती है। भागीरथी की सूखी-सिकुड़ी देह को नहलाकर उन्होंने उसे कपड़े पहना दिए। फिर हमेशा की दिनचर्या की तरह पूजा-नैवेद्यादि सम्पन्न करके देवता के प्रसाद का फूल उसके बालों पर लगाया, चरणामृत पिलाया। भागीरथी ने उनके चरण स्पर्श किए और उनसे आशीर्वाद पाया। फिर "प्राणेशाचार्य" रसोई से एक कटोरी-भर दलिया ले आए। प्राणेशाचार्य दुर्वासापुर के महातपस्वी, ज्ञानी, वेदांत शिरोमणि जो काशी से 'संस्कृत' एवं वेदों का अध्ययन लेकर आए है। वे 'कर्म करो फल की इच्छा न करो' के मूल मंत्र में गहरी आस्था रखते हैं। वे मानते हैं "मुक्ति मार्ग के पथिक को ब्राह्मण का जन्म देकर भगवान ने उसकी परीक्षा के लिए ही शायद संसार चक्र में उन्हें बांध दिया है।" इसी मान्यता के आधार पर नाराणप्पा की मृत्यु के तद्परांत कहते हैं "अब हमारे सामने समस्या यह है कि कौन इसका दाह-संस्कार करे? कोई रिश्तेदार न हो तो और कोई ब्राह्मण यह कार्य कर सकता है- ऐसी बात धर्मशास्त्र में है।" धर्म तथा अर्थ की व्याख्या कर अनभिज्ञ ब्राह्मणों को भी ज्ञान प्रदान करना तथा सनातन धर्म की मान्यताओं के अनुसार अपने जीवन और कर्तव्य का निर्वाह करते हुए भक्ति मार्ग से ब्रह्म की प्राप्ति करना ही एक मात्र उद्देश्य मानते थे। धर्म ग्रंथों मनुस्मृति, आदि धर्मग्रंथों में प्राणेशाचार्य का पूर्ण विश्वास होता है। इसी के कारण नाराणप्पा के दाह-संस्कार की समस्या को हल नहीं कर पाए। प्राणेशचार्य जी द्रवित होकर चन्द्री नाराणप्पा की (रखैल) को बैठने के लिए कहा। फिर अपने खाने के कमरे में आए जहां उनकी पत्नी सोई हुई थी। घर के भीतर कमरे में घुसने के बाद वे अपनी पत्नी से कहते हैं "क्या मैंने नाराणप्पा की मां के हृदय में उसके लिए पाश्चाताप की भावना या स्नेह का कारण बना- उसकी माँ को दिया हुआ अपना वचन - तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूँगा। उसे सन्मार्ग पर लाऊँगा। - भरणासन्न बुढ़िया को यह वचन देकर धीरज बधाँया था।" दूसरी ओर नाराणप्पा प्राणेशाचार्य को बिल्कुल विपरीत चरित्र का इंसान है। नाराणप्पा चावकि दरनि के अनुयायियों में से है जो "ऋण कृत्या घृंत पिनते" को मानता अर्थात् जो प्रत्यक्ष प्रमाण में विश्वास रखने वाला। नाराणप्पा ब्राह्मणवाद की कर्मकाँडी मान्यताओं का विरोध करता है।

वह स्वार्थी ब्राह्मण जो अग्रहार में रहते हैं उनकी लालची प्रवृत्तियों से भली-भाँति परिचित था। उसने भगवान शलिग्राम की मूर्ति को नदी में फेंक दिया था। और चतुर्दशी की शाम को अपने मुसलमान दोस्तों के साथ मिलकर गणेश मंदिर के पास की नदी से भगवान की मछलियों को सभी के सामने पकड़कर, मुस्लिम लड़कों के साथ मिलकर पकाया और खाया था। सभी ब्राह्मणों का विश्वास था कि नदी में पलने-खेलने वाली मछलियों को जो पकड़ेगा, वह रक्त की कै करके मर जाऐगा। नाराणप्पा ने इस अन्धविश्वास की उपेक्षा की थी। वह नाटक मंडली का सदस्य था, मद्य-मांस का सेवन करता था, ब्राह्मण युवाओं को हमेशा कर्मकांड त्यागने के लिए उकसाता था तथा उसने "कुंदापुर" की वैश्या चन्द्री को अपनी रखैल बनाकर रखा हुआ था। ब्राह्मण स्त्री को अपनी पत्नी बनाने का त्याग कर कहता है "जो लड़की सुख नहीं देगी, उसके साथ कौन जिंदगी चलाऐगा आचार्य जी, सिर्फ बेकाम ब्राह्मणों के सिवा? रिश्ते की बात बताकर एक पगली को मेरे गले में बांधना चाहते हैं आप ब्राह्मण लोग! अपना धर्म अपने पास ही रहने दीजिए। एक बार ही तो जिंदगी मिलती है। मैं चावकि का वंशज हूँ: ऋण कृत्या घृंत पिवेत"। इसलिए रखैल चन्द्री के साथ रहने के कारण यह प्रश्न उठता है कि क्या वह ब्राह्मण है या नहीं? प्राणेशाचार्य ने इस प्रश्न का हल यह कहकर दिया कि उसे ब्राह्मणत्व से बहिष्कृत नहीं किया गया था। अतः वह ब्राह्मण या और उसका दाह संस्कार किसी ब्राह्मण द्वारा ही किया जाएगा। अब समस्या यह थी कि दाह संस्कार कौन करेगा और संस्कार में होने वाले खर्च को कौन उठाएगा?

इस समस्या का समाधान चंद्री द्वारा अपने सोने के कंगन और गले की माला द्वारा हल किया जाता है। सोने को देखकर लक्ष्मणाचार्य और गरूड़ाचार्य की पत्नियाँ क्रमशः अनुसूया और सीता के मुँह में पानी आ गया। उनकी औरतों ने हिसाब लगाया। दो हजार का तो सोना होगा ही। वे एक दूसरे की ओर देखने लगी। वे सोचने लगी "यदि कोई ब्राह्मण सोने की लालच में कहीं अपना ब्राह्मणत्व तो नष्ट करने के लिए तैयार नहीं हो जाऐगा। लेकिन पल में ही सभी के मन में यह प्रश्न उभर आया था कि यह सोना उनके गले में होगा"। परन्तु प्राणेशाचार्य को सभी ब्राह्मण मिलकर यह भी सुझाव देते हैं कि वह पारिजातपुर के स्मार्त ब्राह्मणों से नाराणप्पा के संस्कार की बात करें। क्योंकि नाराणप्पा उनका मित्र था। परन्तु पारिजातपुर के मंजय्या ने यह कह कर मनाही कर दी कि नाराणप्पा को "मठ ब्राह्मण" स्वीकार करेगा या नहीं। इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। जब कहीं से कोई हल नहीं निकला तो प्राणेशाचार्य हनुमान जी के मंदिर में जाकर उन्हीं से समाधान प्राप्त करने चले गए। उन्होंने हनुमान जी की मूर्ति की पूजा अर्चना करके उनके दोनों कानों में फूल रख देते हैं, और ये धारणा मानते हैं कि दाएँ कान का फूल गिरा तो नाराणप्पा का दाह-संस्कार हो सके। ऐसी कई समस्याओं से प्राणेशाचार्य फंसे हुए थे।

### 10.3.1 यू.आर. अनंतमूर्ति का परिचय

यू.आर. अनन्तमूर्ति हिन्दी के एक प्रतिनिधि लेखक थे। उनकी रचनाओं का अनुवाद हिन्दी, बंगला, मराठी, मलयालम, गुजराती सहित विदेशी भाषाओं में भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। उनकी कई रचनाओं पर बहुचर्चित फिल्में भी बन चुकी है। ऐसे शिक्षाविद् समीक्षक, आलोचक का जन्म- 21 दिसम्बर, 1932 ई. में ''मिलिगे'' नामक गांव, ज़िला शिमोगा, कर्नाटक में हुआ। इनका पूरा नाम उडुपी राजगोपालाचार्य अनंतमूर्ति था।

**शिक्षा:-** डॉ. यू.आर. अनंतमूर्ति की प्रारंभिक शिक्षा 'दरवासापूरा' में एक पारंपरिक संस्कृत स्कूल से होती है। उसके बाद उन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य से एम.ए. किया। पीएच.डी बर्मिंघम विश्वविद्यालय इंग्लैंड से पूर्ण की। इसके बाद आधुनिक कन्नड़ साहित्य से प्रख्यात उपन्यासकार और कथा लेखक बने। साहित्य जगत में सक्रिय भागीदारी निभाते रहे।

**वैवाहिक जीवन:-** यू.आर. अनंतमूर्ति का विवाह सन् 1956 में इस्तर अनंतमूर्ति के साथ हुआ। जिनसे उसकी मुलाकात 1954 में हुई थी। इनकी दो सन्तानें है। पुत्री- अनुराधा व पुत्र शरत।

**कार्य:-** यू.आर. अनंतमूर्ति सही अर्थों में एक पूर्ण लेखक व शिक्षक थे। जो अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को जागरूक करना चाहते थे। जब तक वे जीवित रहे देश तथा विदेश में अपने शिक्षा का योगदान देते रहे।

- अनंतमूर्ति सन् 1975 में आयोवा विश्वविद्यालय, 1978 में तुफत्स विश्वविद्यालय (अमेरिका) में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर कार्य करते रहे।
- वे मैसूर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर बन कई वर्षों तक कार्य करते रहे।
- सन् 1985 में आयोवा विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय लेखक सम्मेलन में भाग लिया तथा वे कोयट्टम में महात्मा गांधी विश्वविद्यालय के कुलपति बने।
- वे नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली के चेयरमैन और साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पद पर भी कार्यरत रहे।

**साहित्यिक जीवन:-** अनंतमूर्ति ने अपना साहित्यिक जीवन कथा संग्रह ''इडेनढ़िगु मुद्यियाड़ा कथे'' से शुरू किया था। सच्चे अर्थों में वे एक आधुनिक लेखक, जो विभिन्न रूढ़ियों को समाप्त करना चाहते थे। यही कारण है कि उनके कथा साहित्य का 'गद्य' और 'पद्य' आसानी से समझा जा सकता है। उनका लेखन सदैव वास्तविक जीवन की प्रक्रिया का एक उदाहरण रहा है। कई बार वे प्रश्नों के घेरे में फंस कर स्वयं को तलाशते थे। ऐसे महान लेखक की प्रमुख रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है।

**रचनाएँ:-**

उपन्यास - संस्कार, अवस्थ और भव;

कहानी - एंदेन्दु मुगिमद कथे और मौनी;

कविता - बावली, मिथुन;

नाटक - सभिवेश, प्रज्ञ मत्तु परिसर, पूर्वापर, आवाहन आदि।

हिन्दी में अनुदित कृतियाँ:-

उपन्यास - संस्कार, अवस्था, भारती पुर, भव

कहानी संग्रह - घटश्राद्ध, आकाश और बिल्ली

निबंध - किस प्रकार की है यह भारतीयता

**सम्मान और पुरस्कार:-** यू.आर. अनंतमूर्ति को कई सम्मान तथा पुरस्कारों से भी नवाजा गया है।

- 1984 में राज्यसभा पुरस्कार।
- 1994 में ''ज्ञानपीठ पुरस्कार'' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा।
- 1998 में ''पद्मभूषण'' सम्मान - भारत सरकार द्वारा दिया गया।
- 2004 में साहित्य अकादमी फेलोशिप।
- 2008 में ''नडोजा पुरस्कार'' कनाड़ा विश्वविद्यालय द्वारा दिया गया।

कन्नड़ साहित्य में योगदान और आम आदमी के लिए लिखने की उनकी सोच के लिए कई पुरस्कार भी दिए गए।

**निधन:-** अनंतमूर्ति की मृत्यु 22 अगस्त 2014 को मणिपाल हॉस्पिटल में बेंगलुरू में 81 वर्ष की आयु में हुई थी। वह कुछ सालों से गुर्दा सम्बंधी बीमारी से पीड़ित थे। उनका डायविटीज और हृदय की समस्या सम्बन्धित रोग का भी उपचार चल रहा था। 13 अगस्त को बुखार के संक्रमण के कारण मनिपाल अस्पताल में भरती करवाया गया। परन्तु उनका उपचार के दौरान स्वास्थ्य में सुधार की सम्भावना कम दिखाई देने लगी। अन्ततः 22 अगस्त को इस महान लेखक ने इस संसार को त्याग दिया।

### 10.3.2 यू.आर. अनंतमूर्ति का उपन्यास साहित्य

अनंतमूर्ति कन्नड़ साहित्य के जाने माने साहित्यकारों में से एक है। हिन्दी में अनुदित भी उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की है। जैसे- भारती पुरा, संस्कार, अवस्था, भाव आदि।

**संस्कार:-** उनका पहला ऐतिहासिक 'संस्कार' जो जाति व्यवस्था, धार्मिक कर्मकांड, संस्कृति और परंपराओं और पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अनिश्चित सम्बंधों पर प्रकाश डालता है। इस उपन्यास पर विवाद भी हुए और इस पर फिल्म भी बनाई गई।

**भारतीपुरा:-** ''भारतीपुरा'' अनंतमूर्ति का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में एक दक्षिण भारतीय बस्ती की कहानी है, लेकिन बस्ती तो एक बहाना है। दरअसल यह समसामयिक

भारतीय जीवन के दहशत पैदा करने वाले अनुभवों और तिलमिला देने वाले यथार्थ का बहुत तीखा दस्तावेज़ है।

**अवस्था:-** अनंतमूर्ति का 'अवस्था' नामक उपन्यास उन सामाजिक रूढ़ियों और मानसिक अवरोधों पर चोट करता है, जो हमारी वर्तमान दुरावस्था के लिए जिम्मेदार है।

**भाव:-** यह एक लघु उपन्यास है। जो मनोवैज्ञानिकता की गहराई का पता लगाता है। अपने सहयोगियों के प्रति प्रतिबद्ध न होते हुए उनके अवैध सम्बंधों की दोहरी मानसिकता पर गहरी चोट करता है।

अनंतमूर्ति के उपन्यासों में सदैव वास्तविकता के यथार्थ को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। उनका सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य पारंपरिक रूढ़ियों से मुक्त मानवतावादी लेखक तक की महान् रचनात्मक यात्रा कही जा सकती है।

### 10.3.3 संस्कार: उपन्यास का संक्षिप्त कथा

यह कहानी दुर्वासापुर नामक एक छोटे से गांव अग्रहार से शुरू होती है। जो उच्च कोटि के ब्राह्मणों का गांव है। नाराणप्पा की मृत्यु के कारण ही दुर्वासापुर में सांस्कृतिक द्वन्द आरंभ हो जाता है। प्राणेशाचार्य जो ब्राह्मणों में महान पण्डित या ध्येता होते हैं, वे समस्त दुर्वासापुर के ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व करते है। नाराणप्पा ब्राह्मण था जो कि शिवभोग्या गांव से 'ज्वार' लेकर आता है तथा चार दिन के उपरांत उसकी मृत्यु हो जाती है। जिसकी खबर उसकी रखैल चन्द्री प्राणेशाचार्य के पास जाकर देती है। पूरे दुर्वासापुर में यह खबर फैल जाती है। समूचे अग्रहार के ब्राह्मण प्राणेशाचार्य के घर चबूतरे पर जमा होती है। वहां पर समस्या यह आती है कि नाराणप्पा का दाह-संस्कार कौन करेगा? प्राणेशाचार्य कहते हैं कि "कोई रिश्तेदार न होने पर कोई ब्राह्मण यह कार्य कर सकता है। ऐसी बात धर्मशास्त्र में है।" परन्तु कोई भी ब्राह्मण उसके शव-संस्कार के लिए पूर्णरूप् से तैयार नहीं होता है। दुर्वासापुर के रहने वाले सम्पूर्ण ब्राह्मण लोभी, स्वार्थी ईष्यालू स्वभाव के है। जब चन्द्री अपने सोने के कंगन व गले की माला नाराणप्पा के दाह-संस्कार को देने के लिए तैयार हो जाती है तो सभी ब्राह्मणों के मुँह में पानी आ जाता है। इनके विपरीत प्राणेशाचार्य सभी ब्राह्मणों को सुझाव देते हैं कि "पारिजात पुर" के स्मार्व ब्राह्मणों से नाराणप्पा के दाह-संस्कार की बात करेंगे। सभी ब्राह्मण असमंजस की स्थिति में है, कि नाराणप्पा का दाह-संस्कार करेगा तो करेगा कौन? क्योंकि वह तो अपने बरामदे में मुसलमानों के साथ बैठकर मांस, मदिरा पीता था। एक अछूत लड़की चन्द्री को अपनी रखैल बनाकर रखा था। यहां तक कि शालिग्राम को नदी में फेंक दिया था। उसने ब्राह्मणत्व के सभी संस्कार छोड़ दिये थे। किन्तु ब्राह्मणत्व ने उसे नहीं छोड़ा था। सभी ब्राह्मणों को बस यही डर सता रहा था कि यदि उनमें से किसी ने उसका दाह-संस्कार किया तो उनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाएगा। दासाचार्य कहते हैं "अब अगर एकदम बिना सोचे-समझे या जल्दी में इसका दाह-

संस्कार करना तय कर लेंगे तो हम ब्राह्मणों को कोई भी किसी योजना एवं भोजन श्राद्ध पर नहीं बुलाऐगा।" प्राणेशाचार्य मानते हैं कि नाराणप्पा शास्त्रों के अनुसार बिना बहिष्कृत हुए मरा है, इसलिए वह ब्राह्मण रहकर ही मरा है। जो ब्राह्मण नहीं, उनको उसके शव को स्पर्श करने का अधिकार नहीं है। जब कहीं से कोई हल नहीं सूझा तो प्राणेशाचार्य हनुमान जी की मूर्ति की पूजा-अर्चना करके उनके दोनों कानों में फूल रख देते और यह धारणा करने लगते हैं यदि दाएं कान का फूल गिरा तो नाराणप्पा का दाह संस्कार अग्रहार के ब्राह्मण करेंगे और बाएँ कान का फूल गिरा तो इंकार है। हनुमान जी के इस आदेश के लिए वह दिन रात तपस्या करते हैं। परन्तु समाधान न मिला। चंद्री प्राणेशाचार्य के पीछे-पीछे हनुमान मंदिर पहुँच जाती है। वहां प्राणेशाचार्य को दुःखी देखती है। वे अपने साथ कुछ केले खाने हेतु प्राणेशाचार्य के लिए ले गई थी। जब प्राणेशाचार्य को हनुमान जी की तरफ से कोई आदेश नहीं मिला तो वह अंधेरे में ही घर की तरफ लौटने लगे। अंधेरे में जब उनकी भेंट चन्द्री से हो जाती है तो आजीवन स्त्री-सुख से वंचित प्राणेशाचार्य चन्द्री का स्पर्श पाकर रोमांचित हो उठे। चन्द्री को भी उनका साथ अच्छा लगा उसको अपनी मां की कही बात याद आ जाती है। हम वेश्या का जीवन तभी सफल हो पाता है जब किसी गुणवान, ओजस्वी ब्राह्मण से संतान प्राप्ति होती है। प्राणेशाचार्य तथा चन्द्री के बीच उस रात प्रणय सम्बंध स्थापित हो जाता है। जब प्राणेशाचार्य की नींद खुली तो उन्होंने चन्द्री को अपने साथ दुर्वासापुर चलने को कहा तथा यह निर्णय किया कि वह सारी धरना ब्राह्मणों को बताकर अपने आचार्यत्व का त्याग कर देंगे। वह चन्द्री के साथ अपना जीवन व्यापन करेंगे। परन्तु चन्द्री प्राणेशाचार्य को इस तरह विवश होता नहीं देख सकती थी। अतः उसने दुर्वासापुर न जाकर कुदापुर वापस जाने का निर्णय लिया। जाते वक्त वह नाराणप्पा के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहती थी। क्योंकि नाराणप्पा ने सदैव उसके सुख दुख का ख्याल रखा था। चन्द्री ने उसी रात्रि को ही एक मुस्लिम व्यापारी अहमद बारी की सहायता से नाराणप्पा का दाह-संस्कार करवा दिया और कई दिनों से नाराणप्पा की सड़ रही देह को मुक्ति दिलवाई। रात के अंधेरे में उसका यह कृत्य किसी ने नहीं देखा।

प्राणेशाचार्य जब अग्रहार पहुँचे तो समस्त ब्राह्मण समुदाय उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने ब्राह्मणों से कहा कि उन्हें धर्मग्रन्थों एवं हनुमान जी ने कोई समाधान नहीं सुझाया, अतः वह संस्कार का निर्णय कर पाने में असमर्थ होते हैं। समय बीतता गया दासाचार्य व प्राणेशाचार्य की पत्नी का देहांत हो जाता है। एक बूढ़ी औरत लक्ष्मी देवम्मा ने पूरे अग्रहार में यह शोर मचा दिया था कि नाराणप्पा भूत बन गया है। इसलिए कोई भी उसके घर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। चारो ओर प्लेग महामारी फैल रही थी। गिद्ध घर की छतों पर आ बैठे थे। परन्तु अन्धविश्वासी ब्राह्मण इसे नाराणप्पा के भूत का कार्य समझते हैं। प्राणेशाचार्य अपनी पत्नी को मृत्यु के बाद अपना घर छोड़ कर अनजानी राह पर चल पड़ते हैं। वे मन से ठान बैठते हैं कि अब घर की तरफ कभी नहीं आऐंगे। वह मार्ग में नाराणप्पा को बहिष्कृत न कर पाने का कारण अपने मन में खोजने लगते हैं। तभी उन्हें अपने मित्र महाबली की स्मृति आ जाती है जो उनके साथ काशी में वेदांत पढ़ता था और उससे कहीं अधिक तेजस्वी और प्रतिभावान था। परन्तु उसने भी

अचानक पढ़ाई छोड़ दी थी। वे वैश्या के साथ रहकर भोगमार्ग अपना लिया था। वह नाराणप्पा की ही तरह था। प्राणेशाचार्य सोचते हैं कि आज परिस्थितियों ने उन्हें नाराणप्पा और महाबली के मार्ग पर लाकर छोड़ दिया है। वे सही या गलत के द्वन्द को समझ नहीं पा रहे थे। वे चन्द्री व अपने विषय में सभी को बताना चाहते थे। परन्तु उनका मन पुनः चन्द्री से मिलने को मचल उठता है। प्राणेशाचार्य "मेलिंगा गाव" की रथ यात्रा में शामिल हो जाते हैं। उन्हें बस यही डर सताता रहता है, कि मेले में उन्हें कोई पहचान न ले। प्राणेशाचार्य और पुट्ट मेले घूमते है। उसके बाद पुट्ट उसे लेकर वेश्या पद्मावती के पास जाता है। वहां प्राणेशाचार्य का मन पुनः काम भाव से भर उठता है।

इस यात्रा में प्राणेशाचार्य का उन तमाम परिस्थितियों का सामना करते है। जो उसके सनातनी आचार्यत्व धर्म के विरूद्ध होते हैं। वे कहीं न कहीं अपने भीतर नाराणप्पा व महाबली की प्रतिछवि को अपने भीतर महसूस करते हैं। अन्त में वह यह निर्णय करते हैं कि वह पहले दुर्वासापुर जाऐंगे और नाराणप्पा का दाह-संस्कार कर तथा ब्राह्मणों को अपनी सच्चाई बताकर सामाजिक बोझ तथा आचार्यत्व के बोझ से मुक्त होना चाहते हैं। उसके पश्चात् कुंदापुर जाऐंगे और आम व्यक्ति के गृहस्थ जीवन की तरह अपना जीवन यापन करेंगे।

इस प्रकार प्राणेशाचार्य दमित भावनाओं से मुक्त होकर एक नए सहज प्राणेशाचार्य की शुरूआत हो पाती है।

### 10.3.4 संस्कार के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण

संस्कार उपन्यास के पात्रों के चरित्र-चित्रण निम्न है। परन्तु मुख्य तीन पात्र है।

**1) प्राणेशाचार्य:-** प्राणेशाचार्य अग्रहार के प्राण पुरूष है। काशी से धर्मशास्त्र का अध्ययन करके आए थे। वेद-वेदांग के पारंगत थे। दुर्वासापुर के संस्कार वान धर्म पालक। प्रारंभ में परंपरा के एकनिष्ठ संपोषक। नाराणप्पा के प्रतिपक्ष थे। नाराणप्पा की रखैल के सम्पर्क में आने के कारण आत्म-संतुष्टि, आत्म हीनता और आत्म-परिवर्तन के प्रति अंतर्द्वंद से सामना करते है। तमाम परिस्थितियों के सामना करने के बाद भी वे नाराणप्पा का दाह-संस्कार कर ब्राह्मणों को अपनी सच्चाई बताकर सामाजिक बोझ तथा आचार्यत्व के बोझ से मुक्त हो जाते हैं।

**2) नाराणप्पा:-** नाराणप्पा अग्रहार का परंपराच्युत ब्राह्मण था। आधुनिकता के प्रतीक पुरूष था। वे चावकि दर्शन के अनुयायियों में से था, जो "ऋण कृत्या धृंत पिनते" को मानता। अर्थात् जो प्रत्यक्ष प्रमाण में विश्वास रखने वाला। नाराणप्पा ब्राह्मणवाद की कर्मकांडी मान्यताओं का विरोध करता है। दुर्वासापुर में ब्रह्मचार विरोधी व्यक्तित्व और उपन्यास में स्मृति स्वरूप् है।

**3) चन्द्री:-** चन्द्री एक अछूत जाति की महिला है। नारायण की रखैल। वह नाराणप्पा की मृत्यु हो जाने पर अपने सोने के कंगन और गले की माला द्वारा इस समस्या का समाधान करना चाहती है। वे अत्यंत सुन्दर व तेजस्वित की धनी स्त्री थी। नाराणप्पा की मृत्यु हो जाने पर सबकी नज़रें उसपर टिकी रहती है। प्राणेशाचार्य का स्पर्श होने पर वे अपने आपको सबसे सौभाग्यशाली मानती है।

इनके अलावा भी पद्मिनी, लक्ष्मणाचार्य, गरूड़ाचार्य, पुट्ट और कई अन्य पात्र हैं जो कथा को आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

### 10.3.5 संस्कार: उपन्यास

संवाद:- संवाद जिसका शाब्दिक अर्थ बातचीत है। अर्थात् दो लोगों के बीच होने वाली बातचीत को संवाद कहा जाता है। "संस्कार" उपन्यास में संवाद-

(I) प्राणेशाचार्य भागते हुए गरूड़ाचार्य के घर गए "गरूड़ा, गरूडा . . . पुकारते हुए उसके रसोईघर में गए। नाराणप्पा और गरूड़ाचार्य में पांच पीढ़ी का सम्बंध था। नाराणप्पा की नानी की नानी और गरूड़ाचार्य की नानी की दोनों बहनें थी। अभी मुंह में कौर रखने ही वाले थे गरूड़ाचार्य कि . . .

नारायण ! गरूड़ा, खाना मत खाओ। नाराणप्पा गुजर गया है, "कहते हुए प्राणेशाचार्य ने दोपहर की गर्मी के कारण पसीने से तर अपने चेहरे को पोछा।"

(II) लक्ष्मणाचार्य ने फिर बोलना शुरू किया "किसी दूसरी स्त्री से जा फँसा . . . मेरी साली पागल होकर मर गई और इसने उसका दाह-संस्कार भी नहीं किया। खैर, यह भी जाने दीजिए, कहेंगे . . . तो . . . अपने मां-बाप का श्राद्ध भी नहीं किया इसने। इसे निकट सम्बंधी मानकर मैं कोई बात छिपाए नहीं रखना चाहता। मेरी पत्नी के मामा का बेटा था वह। जहां तक हो सका, अपनाकर हम उसके किए धरे पर परदा डालते रहे।"

(III) "उस चांडाल का बहिष्कार कर देना चाहिए था। क्या कहते हैं . . .? यह कैसे हो सकता था, गरूड़? बहिष्कार करोगे तो मैं मुसलमान हो जाऊँगा - यह उसकी धमकी थी। पहली एकादशी के दिन मुसलमानों को अग्रहार में बुलाकर उसने भोजन करवाया। कहता था, बहिष्कार करके तो देखो मैं मुसलमान हो जाऊँगा और तुम सबको खंभे में बंधवाकर तुम्हारे मुंह में गो मांस ठूंस दूंगा और देखूँगा कि तुम्हारा ब्राह्मणत्व मिट्टी मिट्टी हो जाए . . .।" पूरे उपन्यास में पात्रों के मध्य संवाद सराहनीय है। तथा एक स्तर के बाद पात्रों द्वारा स्वयं के अन्तर मन से किया गया संवाद कहानी को सराहनीय बनाती है।

### 10.3.6 संस्कार: देशकाल और वातावरण

दुर्वासापुर का अग्रहार गांव हरियाली से हरा-भरा हुआ था। सभी ब्राह्मणों के घरों में तुलसी व निम्न जूल तथा पौधों के पेड़ लगे हुए। भीमाचार्यजी के आंगन में पारिजात का पौधा है, पदमनामाचार्य के आंगन में चमेली का। लक्ष्मणाचार्य के यहां चम्पा, तो गरूड़ाचार्य के घर में एक और प्रकार का फूल। दासाचार्य के घर में मन्दार, वो दुर्गामट्ट के घर शंखपुष्प् और बिल्वपत्र आदि। पूजा के लिए फूल लाने को हर घर से एक ब्राह्मण घर-घर जाता है। सभी का कुशल-क्षेम पूछेगा। परन्तु नाराणप्पा के घर के फूल केवल चन्द्री के जूड़े में ही लगेंगे और बाकी सोने के कमरे

में रखे जूलदान में सज जाएँगे। नाराणप्पा का घर अग्रहार में सबसे बड़ा है। वह नदी के एक किनारे पर बना है। बाजू के घरवालों के पीछे से "तुंगा" नदी बहती है।

नदी तक उतरने के लिए पहले के कुछ दानी पुरूषों ने सीढ़ियाँ बनवाई है। श्रावण में "तुंगा" में बाढ़ आती है तो पानी अग्रहार के घरों में घुस जाता है। परन्तु तीन-चार दिनों में अपना जोश-खरोश और गहरे भँवर दिखलाकर, बच्चों की खुशी का कारण बनकर, फिर उतर जाती है। गर्मी के दिनों में ये नदी तीन धाराओं में बँटकर बहने लगती है।

पूरे उपन्यास में ब्राह्मणवाद रूढ़ियों का बोल बाला है। हालांकि दुर्वासापुर गांव में ब्राह्मण जाति के अलावा अन्य जातियाँ भी रहती है, किन्तु मुख्य रूप से इसे ब्राह्मण गाँव ही कहा गया है। पूरे कथा को ब्राह्मण-गाँव के धस की कथा बताया गया है। इससे दो बातें स्पष्ट होती है पहली हिन्दू धर्म में निहित वर्ण-व्यवस्था की जकड़न इतनी जबर्दस्त है कि इससे मनुष्य ही नहीं गांव भी सिद्धान्ततः ब्राह्मण हो जाता है। दूसरी यह है कि इसमें ब्राह्मण श्रेष्ण प्रणेशाचार्य हैं या ब्राह्मण विरोधी नाराणप्पा लेकिन इस बात को लेकर कोई असमंजस नहीं है कि इसकी क्या वस्तुतः ब्राह्मण गाँव के ह्रास की कथा है।

### 10.3.7 संस्कार: भाषा-शैली

कन्नड़ भाषा में लिखा गया उपन्यास "संस्कार" का कई भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। यू.आर. अनंतमूर्ति अंग्रेज़ी के अध्यापक होने के नाते विश्व साहित्य और विचार को अंग्रेज़ी के माध्यम से आत्मसात करने वाले, भारत में ही नहीं बल्कि दुनियाभर में एक साहित्यिक और विचारक के रूप में पहचाने जाने वाले अनंतमूर्ति ने हमेशा अपनी भाषा कन्नड़ में ही सृजनात्मक लेखन करना जरूरी समझा। उनका मानना था कि, उपनिवेशीकरण की राजनीति में उपजी मानसिकता और रूचि से हमारी वैविध्यपूर्ण बहु-सांस्कृतिक पहचान की रक्षा अपनी भाषा के सृजन में ही संभव है।

प्रतिरोध की प्रामाणिक अभिव्यक्ति जितने पुरजोर ढंग से हम अपनी भाषा व संस्कृति में कर सकते हैं उतनी किसी उपनिवेशित भाषा में नहीं। वैश्विक साहित्यिक राजनीतिक वाली विरादरी में वे निरंतर भारत की सृजन शक्ति की रक्षा का वैचारिक संघर्ष करते दिखते हैं।

शैली:- शैली की दृष्टि से "संस्कार" उपन्यास कहीं अधिक व्यापक अर्थ रखता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रचा यह उपन्यास भौतिक के साथ-साथ अभौतिकता के परिवर्तनों को भी समाहित किए हुए है। चन्द्री के साथ संभोग के बाद प्राणेशाचार्य के मन में जो उथल-पुथल चलता है और उनके सोच और विचार की धारा जिस तरह से बदलती है। ये इसका प्रामाणिक उदाहरण है।

अभौतिकता की दृष्टि में देखें तो - प्राणेशाचार्य अपने भीतर ही एक नयी दुनियां में जन्म लेते है। इसके साथ ही वह उपन्यास के बेरंग केन्द्रीय पात्र की श्रेणी से उठकर केन्द्रीय चेतना की श्रेणी में जा पहुँचते है। जो परेशान तो करती ही है, साथ में अभौतिकता के धरातल पर ला पहुँचाती है।

अतः सम्पूर्ण उपन्यास शैली की दृष्टि से वैयक्तिकता के मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को लेकर आगे बढ़ता है।

### 10.3.8 संस्कार: उपन्यास का उद्देश्य और जीवन

संस्कार उपन्यास मुख्य रूप से ब्राह्मणत्व पर करारा व्यंग्य करता है। यह उपन्यास सनातन मान्यताओं के समर्थकों के लिए एक सीख है। इस उपन्यास को कहीं-कहीं धार्मिक उपन्यास की संज्ञा भी दी गई है। अतः यू.आर. अनंतमूर्ति ने संस्कार में सांस्कृतिक संघर्ष को एक नये स्तर तक पहुँचाया है। नाराणप्पा और दुर्वासापुर के समस्त ब्राह्मणों के बीच का सांस्कृतिक संघर्ष हो चाहे या प्राणेशाचार्य के बीच उत्पन्न एक नयी विचारधारा ही क्यों न हो। अनंतमूर्ति ने एक नए तरीके से तथा उसके द्वारा ब्राह्मणत्व, रूढ़िवादी, अंधविश्वास, ढोंग पर गहरा प्रहार किया है। प्राणेशाचार्य, जो लम्बे समय से पूरी तरह से उद्देश्य और परम्परा के प्रति समर्पित है, परिस्थितियों के कारण उन्हें इसपर सवाल उठाने के लिए मजबूर किया जाता है। हालाँकि रचनाकार बाद में उन्हें कई बोझों से मुक्त कर देते हैं।

अंततः संस्कार एक ऐसा उपन्यास है, जो एक समुदाय जो परम्परा से ग्रस्त है। प्रभावी रूपों से स्पष्ट है। अनंतमूर्ति ने प्राकृतिक आग्रहों और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संघर्ष करते हुए विभिन्न प्रकार के पात्रों का चित्रण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। अतः संस्कार उपन्यास समाज जागरूकता का उपन्यास है।

## 10.4 : पाठ सार

संस्कार उपन्यास कन्नड़ भाषा में ही नहीं बल्कि हिन्दी भाषा का भी बहुचर्चित उपन्यास है। अनंतमूर्ति ने ब्राह्मणवाद, अन्धविश्वासों और रूढ़िगत संस्कारों पर अप्रत्यक्ष लेकिन पैनी चोट की है। जिसे सहना सनातन मान्यताओं के समर्थकों के लिए कहीं-कहीं दूभर होने लगता है। “संस्कार” शब्द से अभिप्राय केवल ब्राह्मणवाद की रूढ़ियों से विद्रोह करने वाले नाराणप्पा के दाह संस्कार से ही नहीं है बल्कि यथार्थ ब्योरों से भरी हुई यह एक प्रतीकात्मक कथा है - दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण-ग्राम के ह्रास की। इसे एक धार्मिक उपन्यास कहकर भी पुकारा गया है। जबकि इसके अनेक प्रमुख पात्र धर्म और उनकी परम्पराओं से जाने-बूझे विद्रोह करते हैं, या उनसे कभी परिचित ही नहीं हुए। प्राणेशाचार्य जो उपन्यास के नायक हैं, और ब्राह्मणों के श्रेष्ठ इसके विपरीत नाराणप्पा ब्राह्मणवादी रूढ़ियों के प्रति विरोधी। ब्राह्मणों के संस्कारों उनका स्वर्णभूषणों और सम्पति लोलुपता जैसे संस्कारों पर रोशनी डाली गई है।

ब्राह्मण श्रेष्ण - प्राणेशाचार्य तथा चन्द्री, नाराणप्पा और पद्मावती जैसे अलग-अलग तथा विपरीत दिखाई देने वाले पात्रों की आभ्यान्तरिक उथल-पुथल के सारे संस्कार अपने असली और खरे-खोटेपन समेत हमारे सामने उधड़ जाते हैं।

## 10.5 : पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

- संस्कार शब्द से परिचित हुए।
- ब्राह्मणत्व तथा अन्य जातियों के महत्व को समझ पाए।
- सामाजिक दृष्टि से "संस्कार" उपन्यास का मूल्यांकन से परिचित हो पाए।
- संस्कार मनोवैज्ञानिक और नियकीय आघातों को समझ पाए।
- शैली तथा भाषागत संदर्भ में चर्चा कर पाऐंगे।
- अनंतमूर्ति के उपन्यासों की कल्पनीयता को विस्तार को समझ पाऐंगे।

## 10.6 : शब्द संपदा

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | परम्परा | - | प्रथा, प्रणाली |
| 2. | प्रतीकात्मक | - | लक्षण की तरह प्रयोग में आने वाला, सांकेतिक |
| 3. | ब्राह्मणवाद | - | वह मत या विचार जिसमें हिन्दू धर्म में प्रचलित वर्णव्यवस्था में विश्वास करते हुए जन्म आधारित वंश |
| 4. | समस्या | - | कठिनाई, मुसीबत |
| 5. | सम्बंध | - | मेल, लगाव |
| 6. | दाह-संस्कार | - | मृत्यु के पश्चात् वेदमंत्रों के उच्चारण द्वारा किए जाने वाला संस्कार |
| 7. | प्रतीक्षा | - | इंतज़ार |
| 8. | आज्ञा | - | अनुमति, आदेश |
| 9. | बहिष्कार | - | बाहर करना, निकालना, त्याग करना |
| 10. | परेशान | - | व्याकुल, हैरान |
| 11. | प्रत्यन | - | प्रयास, कोशिश |
| 12. | आगत | - | आया हुआ, प्राप्त |
| 13. | तपस्या | - | तप, साधना |
| 14. | कर्तव्य | - | वे कार्य जिन्हें करने के लिए व्यक्ति नैतिक रूप से प्रतिबद्ध होता है। |
| 15. | विचार-भेद | - | शब्दों की जानकारी तथा उनका आपस में सहमति न होना। |
| 16. | धर्म | - | धारण करने योग्य, उपासना |
| 17. | स्वभाव | - | प्रकृति, निजी भाव |
| 18. | शिकायत | - | उलाहना, गिला - शिकवा |
| 19. | निंदा | - | बुराई, दोष निकालना |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 20. | दर्शाया | - | प्रदर्शित करना |
| 21. | द्रवित | - | पिघला, पसीजा हुआ |
| 22. | पाश्चाताप | - | पछतावा, दुःख |
| 23. | शुद्र | - | प्राचीन आर्यो के लोक विधान के अनुसार जो अंतिम वर्ण होता है। |
| 24. | अन्धविश्वास | - | बिना किसी आधार के बात पर विश्वास करने वाला |
| 25. | न्याय | - | निबटारा, फैसला |

## 10.7 : परीक्षार्थ प्रश्न

**खण्ड (अ)**

**दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. "संस्कार" उपन्यास में लेखक ने किन समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है?
2. संस्कार उपन्यास की विषय वस्तु का मूल्यांकन कीजिए।
3. प्राणेशाचार्य का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखिए।

**खण्ड (ब)**

**लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

1. संस्कार शीर्षक की प्रासंगिकता या शीर्षक का महत्व समझाइए।
2. नाराणप्पा ब्राह्मणवाद का विरोधी था कैसे। समझाईये।
3. "संस्कार" उपन्यास के मुख्य पात्रों का वर्णन कीजिए।
4. "संस्कार" पतनशील व ब्राह्मणवाद पर आक्रामण हैं। टिप्पणी कीजिए।

**खण्ड (स)**

। सही विकल्प चुनिए

1. "संस्कार" उपन्यास के लेखक कौन हैं?

(क) भोलानाथ तिवारी (ख) यू.आर. अनन्तमूर्ति

(ग) कैटजोई (घ) मैथ्यू आर्नाल्ड

2. किसकी मृत्यु हो जाती है?

(क) प्राणेशाचार्य (ख) चन्द्री (ग) नाराणप्पा (घ) लक्ष्माणाचार्य

3. चन्द्री नाराणप्पा की क्या लगती है?

(क) बहन (ख) रखैल (ग) माँ (घ) दादी

**।। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1. "संस्कार उपन्यास .................................. भाषा का है।

2. नाराणप्पा ने .................................. की मूर्ति को उठाकर नदी में फेंक दिया।

3. ................................ ने अपने सोने के कंगन व गले की माला दाह-संस्कार के लिए निकाल दिए गए।

**।।। सुमेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| (1) ब्राह्मणवाद | (क) संस्कार उपन्यास लिखा गया। |
| (2) 1965 | (ख) नाराणप्पा विरोध करता है। |
| (3) अग्रहार | (ग) प्राणेशाचार्य ने शिक्षा ग्रहण की। |
| (4) काशी | (घ) संस्कार में गांव का वर्णन है। |

## 10.8 पठनीय पुस्तकें

1. "संस्कार" - यू.आर. अनंतमूर्ति, अनुवादक चन्द्रकान्त कुसनुर
2. परम्परा (कविता) - रामधारी सिंह 'दिनकर'
3. 'परम्परा और आधुनिकता' - (निबंध) - हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. भारतीपुर - यू.आर. अनंतमूर्ति

# इकाई 11:  घासीराम कोतवाल : वस्तु और समीक्षा

इकाई की रूपरेखा

11.1  प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूल पाठ : घासीराम कोतवाल : वस्तु और समीक्षा
11.3.1 विजय तेंदुलकर का संक्षिप्त परिचय
11.3.2 घासीराम कोतवाल की कथावस्तु
11.3.3 घासीराम कोतवाल का समीक्षात्मक अनुशीलन
11.3.4 पात्र योजना एवं चरित्र सृष्टि
11.3.5 नाट्य शिल्प एवं भाषा शैली
11.4 पाठ का सार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द संपदा
11.11 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

## 11.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में मराठी नाटक ‘घासीराम कोतवाल’ प्रसिद्ध हैं। इसका कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका हैं। कोतवाल यह महाराष्ट्र के पुणे शहर की पेशवा कालीन के समय की पदवी रही है जो आज के समय इसे पुलिस आयुक्त भी कह सकते हैं। शहर की रक्षा करनेवाले कोतवाल ही होते थे। पेशवा का समय 1714 से1818 तक रहा है। घासीराम कोतवाल पेशवा के समय का बहुत चर्चित विषय रहा है। विजय तेंदुलकर ने घासीराम कोतवाल की घटना अपने नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह एक राजनीतिक एवं सामाजिक नाटक हैं। लेखक ने इसे इतिहासिक नाटक कहने से मना किया है।

## 11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप –

- विजय तेंदुलकर के बारे में जान सकेंगे।
- विजय तेंदुलकर के नाटक के बारे में जान सकेंगे।
- घासीराम कोतवाल नाटक में राजनीतिक सत्ता के बारे में जान सकेंगे।
- इस नाटक के माध्यम से स्त्री जीवन के बारे में जान सकेंगे।
- इस नाटक के माध्यम से जातिभेद को जान सकेंगे।

## 11.3 मूल पाठ : घासीराम कोतवाल : वस्तु और समीक्षा

### 11.3.1 विजय तेंदुलकर का संक्षिप्त परिचय

विजय धोंडोपंत तेंदुलकर का जन्म महाराष्ट्र के कोल्हापुर में भावलविकिर सरस्ववत ब्राह्मण परिवार में 6 जनवरी 1928 ई. को हुआ है। उनकी शिक्षा दसवीं तक हुई और आर्थिक स्थिति बिकट होने के कारण आगे की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए हैं। इन्होंने कम वर्ष में ही अर्थ अर्जन के लिए मुंबई चले गए। तेंदुलकर के पिताजी एक लिपिक की नौकरी करते हुए एक छोटासा प्रकाशन का व्यवसाय भी चलाया इसी कारण तेंदुलकर ने नवभारत, मराठा, लोकसत्ता या दैनिकांत और नवयुग साप्ताहिक पत्र में कार्य किया है। 'वसुधा' पत्रिका का सपांदन के रूप में कार्य किया है। तेंदुलकर ने छह वर्ष के उम्र में ही पहली कहानी लिखी थी। ग्यारह साल के उम्र ही नाटक की भी रचना की है। तेंदुलकर ने पाच्यात्य नाटकों को देखकर ही बड़ा हुआ है। अपने 14 साल के उम्र ही 1942 के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था।

विजय तेंदुलकर उपन्यासकार, नाटककार एवं ललित लेखक माने जाते हैं। इसी की साथ वे सिनेमा और टेलीविज़न में पटकथा लेखक, साहित्यिक निबंधकार, राजनीतिक पत्रकार के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके बहुचर्चित नाटक 'कोर्ट चालू आहे'(1967), 'ढाई पन्ने', 'शांतता!' 'गिधाडे', 'घासीराम कोतवाल'(1972), और 'सखाराम बाइंडर'(1972) आदि हैं। कहा जाता है कि भारत में सबसे ज्यादा मंचन हुआ नाटक 'घासीराम कोतवाल' है। इसलिए इनके नाटकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। विजय तेंदुलकर ने नाटकों के साथ-साथ कहानी और उपन्यास की भी रचना की है।

विजय तेंदुलकर को अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। पद्मभूषण(1984), महाराष्ट्र राज्य सरकार सम्मान (1956, 1969, 1972), संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार(1971), फिल्म फेयर पुरस्कार (1980,1999), संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप, एवं महाराष्ट्र गौरव(1999) आदि कई सम्मानजनक पुरस्कार मिले हैं।

अन्तः घासीराम कोतवाल की मृत्यु 19 मई 2008 को पुणे महाराष्ट्र में हुई।

**बोध प्रश्न –**

- विजय तेंदुलकर के पिताजी का क्या नाम हैं ?

### 11.3.2 'घासीराम' कोतवाल की कथावस्तु

घासीराम कोतवाल नाटक के लेखक विजय तेंदुलकर हैं। इस नाटक को दो भागों में विभाजित हैं पहला भाग पूर्वार्द्ध है तो दूसरा भाग उतरार्द्ध है। इस नाटक की शुरुआत सरस्वती, लक्ष्मी की वंदना से शुरू होता है। यह नाटक संगीतमय है। इसे पहली बार 16 दिसंबर 1972 को पुणे में प्रोग्रेसिव ड्रामा एसोसिएशन द्वारा प्रदर्शित किया गया था। इसका मुख्य पात्र घासीराम कोतवाल है जो निम्न जाति का है। घासीराम कोतवाल ब्राह्मण होने के कारण पेशवा के दरबार में भिक्षा माँगने जाता है तो उस पर चोरी का आरोप लगाकर उसे पेशवा सरकार द्वारा पिटा जाता है और उसे जेल भेज दिया जाता है। घासीराम उसी का बदलना लेना चाहता

है। इसलिए लिए वह पेशवा सरकार में सत्ता हासिल करने के लिए अपनी बेटी को नाना फडनवीस के पास भेज देता है। नाना फडनवीस ने स्त्री के प्रेम में विलीन हो जाता है। फिर उसीका घासीराम कोतवाल फायदा उठाता है। और पुणे की कोतवाल पदवी प्राप्त करता है। यही नाटक का पहला दृश्य समाप्त हो जाता है।

जब दूसरा दृश्य की शुरुआत घासीराम की कोतवाल से शुरू होती है। घासीराम ने अपने अधिकार का फायदा उठाता है। वह ऐसे कानून का फरमान निकालता है कि आम जनता भी परेशान होती है। जबरदस्ती से चोरी का आरोप लगाकर उन्हें शिक्षा देता है। शादी शुदा औरत पर रंडी बाजी का आरोप लगता है यहाँ तक कि लाशों को गाड़ने या जलाने का भी अधिकार आम जनता को नहीं था। पेशवा का राज्य घासीराम की बेटी गौरी के साथ मस्त मौज में रहता है। पुणे के सभी ब्राह्मण एक होकर गौरी का खून कर देते हैं और नाना फडनवीस की शादी कर देते हैं। शादी के बारात में अपनी बेटी न दिखने पर घासीराम ने चिल्लाता है। और अपने कारनामे पर रोता है। अंततः घासीराम को भी आम जनता मार देती है और खुद अपने गलती को महसूस करता है और वह आम जनता को मारने को कहता है।

**बोध प्रश्न –**

- घासीराम कोतवाल नाटक में पेशवा शासन में प्रमुख कौन हैं ?
- घासीराम की बेटी का नाम क्या है ?

### 11.3.3 घासीराम कोतवाल का समीक्षात्मक अनुशीलन

'घासीराम कोतवाल' नाटक में घासीराम का सत्ता तक पहुंचना और उसे बनाए रखने के उनके क्रूर प्रयास सत्ता की भ्रष्ट प्रकृति का उजागर होता है। नाटक में किस प्रकार से सत्ता का दुरूपयोग किया जाता है इसे दिखाया गया है। इससे किस प्रकार से हिंसा का उत्पीडन को जन्म दे सकता है।

नाटक में पेशवा के शासन के समय की जातिव्यवस्था पर आधारित भेदभाव का वर्णन है। घासीराम की निचली जाती की स्थिति उन्हें कोतवाल के पद के लिए एक असंभावित उम्मीदवार बनाती है, और उनके सत्ता में आने को उच्च जाति के ब्राह्मणों द्वारा खतरे के रूप में देखा जाता है। यह नाटक घासीराम कोतवाल भारतीय समाज में जाति के विषय और व्यक्तियों एवं समुदायों पर इसके प्रभाव की पड़ताल करता है।

विजय तेंदुलकर ने अपने 'घासीराम कोतवाल' नाटक में भ्रष्टाचार को भी केन्द्रीय विषय का स्थान दिया है। नाटक एक ऐसे समाज को दर्शाता है जहाँ भ्रष्टाचार व्याप्त है और सत्ता में बैठे लोग इसका इस्तेमाल अपनी स्थिति और दूसरों पर षडयंत्र बनाए रखने के लिए करते हैं। इसमें घासीराम एक भ्रष्टाचार का प्रमुख उदाहरण है। इसमें उच्च जातियों की भ्रष्ट प्रथाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस नाटक के माध्यम से सत्ता में बैठे हुए लोगों की नैतिकता पर भी प्रकाश डाला है। इसमें घासीराम कार्यों को अनैतिक दिखाया है, और पुणे के नागरिकों को उसके उत्पीडन के सामने अपने स्वयं के नैतिक सिद्धांतों से जूझने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भारतीय समाज

में उच्च जातियों, विशेषकर ब्राहमणों की नैतिकता पर भी प्रकाश डाला गया है। उन्हें अपनी शक्ति बनाएं रखने के लिए अपने पद और प्रभाव का उपयोग करते हुए दिखाया गया है।

**बोध प्रश्न –**

- विजय तेंदुलकर ने घासीराम कोतवाल नाटक में केंदीय विषय कौनसा माना है ?
- घासीराम कोतवाल नाटक में जातिभेद को बताइए।

### 11.3.4 पात्र योजना एवं चरित्र सृष्टि

घासीराम कोतवाल नाटक में सूत्रधार के रूप में प्रमुख पात्र हैं जो नाटक के संवाद को आगे बढ़ता है। इसी के साथ घासीराम, नाना फडनवीस और घासीराम की बेटी गौरी यह प्रमुख पात्र माने जाते हैं। गुलाबी और सूत्रधार गौण पात्र माने जाते हैं।

**घासीराम का चरित्र –चित्रण**

घासीराम एक निम्न जाति पात्र हैं उसे एक पुत्री है जो गौरी नाम से जाना जाता है। इस नाटक में निचली जाति की स्थिति उसके और उच्च जाति के ब्राह्मणों के बीच तनाव और संघर्ष का स्त्रोत बन जाती है। घासीराम ने पुणे के कोतवाल के रूप में ब्राह्मणों द्वारा एक खतरे के रूप में देखा जाता है, जो उन्हें एक बाहरी व्यक्ति के रूप में देखते हैं जो इतना महत्वपूर्ण पद संभालने के लिए उपयुक्त नहीं है। पुरे नाटक में, घासीराम ब्राह्मणों से स्वीकृति पाने के लिए संघर्ष करता है, और उसे लगातार अपनी निम्न जाति की स्थिति की याद दिलाई जाती है। यह भेदभाव और हाशियाकरण अंततः घासीराम के पतन का कारण बनता है, क्योंकि वह अपनी शक्ति से तेजी से भ्रष्ट हो जाता है और अपने ही समुदाय से संपर्क खो देता है।

घासीराम की निचली जाति की स्थिति का महत्त्व उस समय भारतीय समाज में मौजूद अन्याय और पूर्वाग्रहों को उजागर करना है, और आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है। यह नाटक जाति आधारित भेदभाव पर टिप्पणी के रूप में कार्य करता है जो अभी भी भारत में प्रचलित है, और यह किस तरह से निचली जातियों के व्यक्तियों के अवसरों और स्वतंत्रता को सीमित करता है। नाटक के केंद्र में घासीराम की निम्न जाति की स्थिति को रखकर, तेंदुलकर ने सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता और दमनकारी सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

**बोध प्रश्न –**

- घासीराम के स्वभाव का वर्णन कीजिए।

### 11.3.5 नाट्य शिल्प एवं भाषा शैली

यह नाटक परंपरा से संबंधित अधुनातन मराठी नाटक है। इस नाटक में इतिहास, कल्पना और रोमांस का अद्भुत चित्रण है। इस नाटक में शिल्प अनेक हैं। आरंभ मराठी नाटककारों ने शैक्सपियरके नाटकों का शिल्प अपनाया। इसके बाद इब्सन के नाटकों का शिल्प को अपनाया है ऐसी ही मौलियर के नाटकों ने मराठी के हास्य प्रधान नाटक को प्रभावित किया। विजय तेंदुलकर ने 'घासीराम कोतवाल' नाटक में एब्सर्ड का शिल्प अपनाया है। ऐसे

नाटक में कठिनता, पात्रों के मन की निविड़ता और कुछ नए नए प्रयोग, विशेषतः प्रतीकात्मकता, बिम्बविधान, असंगत संवादों और एब्सर्ड स्थितियों की योजना के कारण ये नाटक जन सामान्य की समझ से बहार होते हैं। यह नाटक जन सामान्य दर्शक को आकृष्ट नहीं कर सकते हैं। केवल प्रबुद्ध दर्शक एवं पाठक को ही आकृष्ट करते हैं। 'घासीराम कोतवाल' नाटक में इतिहास, पुराण और समकालीन जीवन चक्र को देखने का नया बोध प्रदान करता है। घासीराम कोतवाल नाटक यह एक किसी विशेष लोक शैली नहीं है उसमें दशावतार, भारूड, खेला, तमाशा, पोवाडा, वाध्यामुरली, कीर्तन आदि लोककलाओं का मिश्रित प्रयोग किया गया है।

यह नाटक की भाषा शैली के दृष्टि से सफल नाटक है। इसमें सहज, सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा भावानुकूल, पत्रानुकुल और प्रसंगानुकुल है। मूलतः यह नाटक मराठी भाषा में है। इसमें तुकांत योजना का भी आकर्षण दिखता है। इसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है। हुजुर, जुबान, असमान आदि अरबी फारसी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। कहीं कहीं अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग हुआ है।

## 11.4 पाठ सार

भारतीय साहित्य में रूचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए घासीराम कोतवाल नाटक अवश्य पढ़ना चाहिए। सत्ता, जाति, भ्रष्टाचार और नैतिकता के बारे में तेंदुलकर की खोज आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जीतनी तब थी यह नाटक पहली बार लिखा गया था। यह नाटक पेशवा शासन और उसकी विशेषता वाली हिंसा और उत्पीडन की एक शक्तिशाली आलोचना प्रस्तुत करता है और यह सत्ता से सच बोलने की साहित्य की शक्ति का एक प्रमाण है।

विजय तेंदुलकर का घासीराम कोतवाल एक नाटक है जो सत्ता, राजनीति, जाति और पहचान से संबंधित कई महत्वपूर्ण विचारों की पड़ताल करता है। नाटक में सबसे प्रमुख विषयों में से एक शक्ति और उसके भ्रष्ट प्रभाव का विचार है। नाटक में दिखाया गया है कि घासीराम, एक निचली जाति का व्यक्ति, पुणे के कोतवाल या मुख्य पुलिस अधिकारी के रूप में सत्ता में आता है, लेकिन अपनी स्थिति से भ्रष्ट हो जाता है। और शहर के नागारिकों के प्रति अधिक दमनकारी हो जाता है।

नाटक का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय जाति का विचार और समाज पर इसका प्रभाव है। यह नाटक पेशवा शासन के दौरान प्रचलित जाति-आधारित भेदभाव पर प्रकाश डालता है, और दिखता है कि कैसे घासीराम की निम्न –जाति की स्थिति को उच्च जाति के ब्राह्मणों द्वारा खतरे के रूप में देखा जाता है। पूरे नाटक में इस विषय की गहराई से खोज की गई है, और यह उन सामाजिक मुद्दों पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी है जो आज भी भारत को परेशान कर रहे हैं।

यह नाटक पहचान के विषय को भी छूता है और यह कैसे सामाजिक मानदंडों और अपेक्षा से आकार लेता है। घासीराम का चरित्र एक जटिल है, और उसके कार्य अक्सर अपनी योग्यता साबित करने और उच्च जाति के ब्राह्मणों से स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होते हैं। इस विषय को नाटक में गहराई से खोजा गया है, और यह उन तरीकों पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी है जिसमें सामाजिक अपेक्षाएं किसी व्यक्ति की खुद को पूरी तरह से व्यक्त करने की क्षमता को सीमित कर सकती है।

## 11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई का अध्ययन करने से निम्नलिखित उपलाधियाँ प्राप्त हुई हैं –

- इस अध्याय से हम विजय तेंदुलकर से परिचित हो चुके हैं।
- विजय तेंदुलकर के नाटक के बारे में जान गए हैं।
- घासीराम कोतवाल नाटक से राजनीतिक सत्ता का लालच को जान चुकें हैं।
- सत्ता में रहने वाले कोई अपनी नियती कैसे बदलती है उसे समझ सकें हैं।
- इस नाटक के माध्यम से स्त्री की दशा को जान सकें हैं।
- इस नाटक में जातिभेद को समझ सकें हैं।

## 11. 6 शब्द संपदा

1. कोतवाल - पुलिस अधिकारी
2. लोकसत्ता - जनता की सत्ता या शक्ति, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के द्वारा लोक या जनता को प्राप्त होने वाली सत्ता
3. पटकथा - सिनेमा आदि में प्रयुक्त कथा एवं संवाद, मुख्य कथा
4. प्रोग्रेसिव - प्रगतिशील
5. ड्रामा - नाटक
6. एसोसिएशन - संगठन
7. भिक्षा - अन्न, कपड़ा, पैसा आदि माँगने का काम या वृत्ति
8. पड़ताल - किसी वस्तु या बात आदि के विषय में भली-भांति की जाने वाली छान-बीन या निरिक्षण, जाँच.

9. नैतिकता वाला - नीतिशास्त्र के सिद्धांतों का ज्ञान एवं उसके अनुरूप किया जाने आचरण।

10. हाशिया - अंतिम किनारा, आखिरी छोर,

11. उत्पीडन - दबाना, तकलीफ देना , पीड़ा पहुँचाना, अत्याचार।

12. दमनकारी - वह जो दमन करता हो, उत्पीडन करने वाला व्यक्ति, अत्याचार करने वाला

13. भ्रष्टाचार - दूषित और निंदनीय आचार-विचार, अनैतिक आचरण, भ्रष्ट आचरण

14. फरमान - आज्ञा देना, किसी बड़े या सम्मानित व्यक्ति द्वारा कुछ कहना।

## 11. 7 परिक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।**

1. विजय तेंदुलकर का नाटकार के रूप में परिचय दीजिए।
2. घासीराम कोतवाल नाटक की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
3. घासीराम कोतवाल नाटक की समीक्षात्मक अनुशीलन कीजिए ।

**खंड (ब)**

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए ।**

1. घासीराम का चरित्र-चित्रण कीजिए ।
2. घासीराम कोतवाल नाटक में स्त्री विमर्श पर प्रकाश डालिए।
3. घासीराम कोतवाल नाटक का मूल प्रतिपाद्य क्या है ?
4. माधव का चरित्र चित्रण कीजिए।

# खंड (स)

I. **सही विकल्प चुनिए।**

I. विजय तेंदुलकर की मृत्यु कब हुई ?

(अ) 1925 (ब) 1999 (क) 2000 (ड) 2008

2. विजय तेंदुलकर के पिताजी का नाम क्या है ?

(अ) धोंडोपंत (ब) नाना फडनवीस (क) घासीराम (ड) लक्ष्मुन

3. विजय तेंदुलकर को 'पद्मभूषण' से किस वर्ष सम्मानित किया गया ?

(अ) 2000 (ब) 1999 (क) 2008 (ड) 1984

4. घासीराम कोतवाल कब लिखा गया है ?

(अ) 1972 (ब) 1984 (क) 1920 (ड) 2000

II. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1. पेशवा का समय _________से ________वर्ष तक है ।
2. विजय तेंदुलकर का जन्म __________ वर्ष हुआ ।
3. घासीराम कोतवाल नाटक सबसे पहले ________ द्वारा प्रदर्शित है।
4. 'घासीराम कोतवाल' नाटक का प्रकाशन वर्ष ____________हैं ।

III. **सुमेल कीजिए।**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | घासीराम कोतवाल | (अ) | 1942 |
| 2. | पद्मभूषण | (ब) | 1999 |
| 3. | महाराष्ट्र गौरव | (क) | 1984 |
| 4. | भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन | (ड) | 1972 |

## 11.8 पठनीय पुस्तकें

1. घासीराम कोतवाल – विजय तेंदुलकर
2. भारतीय साहित्य –रामछबीला त्रिपाठी

https://www.myexamsolution.com/2023/04/ghashiram-kotwal-summary-by-vijay-tendulkar.html

## इकाई 12 : तेलुगु उपन्यास : आखिर जो बचा (बुच्चिबाबु)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 मूल पाठ : तेलुगु उपन्यास : आखिर जो बचा (बुच्चिबाबु)

12.3.1 लेखक परिचय

12.3.2 आखिर जो बचा : संक्षिप्त कथावस्तु

12.3.3 पात्र परिकल्पना

12.3.4 परिवेश

12.3.5 संवाद

12.3.6 भाषा

12.3.7 उद्देश्य

12.3.8 नामौचित्य

12.4 पाठ सार

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

12.6 शब्द संपदा

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

12.8 पठनीय पुस्तकें

## 12.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! तेलुगु में उपन्यास साहित्य का उदय पुनर्जागरण के समय हुआ। कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु को आधुनिक साहित्य के प्रथम उपन्यासकार होने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज-सुधार का काम किया। स्त्रियों को सशक्त बनाने के लिए भी उन्होंने साहित्य को माध्यम बनाया। समाज में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार किया। उनका अनुसरण करते हुए आने साहित्यकार सामने आए। तेलुगु साहित्यकारों ने इतिहास, संस्कृति, समाज, राजनीति, दर्शन, मनोविज्ञान, हास्य-व्यंग्य आदि अनेक घटकों के आधार पर उपन्यासों का सृजन किया। इन उपन्यासों के अध्ययन से तेलुगु समाज के संपूर्ण परिदृश्य को समझ अजय

सकता है। इस इकाई में आप बुच्चिबाबु कृत सामाजिक उपन्यास 'चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा) का अध्ययन करेंगे।

## 12.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- तेलुगु साहित्य में बुच्चिबाबु के नाम से प्रसिद्ध शिवराजु वेंकट सुब्बाराव के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- बुच्चिबाबु कृत प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास 'चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा) की संक्षिप्त कथावस्तु को जाना सकेंगे।
- 'आखिर जो बचा' उपन्यास में चित्रित पात्र परिकल्पना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'आखिर जो बचा' उपन्यास के प्रमुख उद्देश्य को जान सकेंगे।
- 'आखिर जो बचा' उपन्यास के नामौचित्य से परिचित हो सकेंगे।
- 'आखिर जो बचा' उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।

## 12.3 मूल पाठ : तेलुगु उपन्यास : आखिर जो बचा (बुच्चिबाबु)

तेलुगु साहित्य में सामाजिक उपन्यासों का प्रचलन है। छात्रो! हम सब भलीभाँति यह जानते हैं कि उपन्यास एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो मानव जीवन के समस्त पहलुओं को पाठकों के समक्ष रखने में समर्थ है। उपन्यासकार अपने परिवेश से जुड़ा हुआ व्यक्ति है। अतः वह अपने समकालीन परिवेश का चित्रण उपन्यास में करता है। यह स्वाभाविक भी है। साहित्यकारों प्रकृति के रम्य रूप से लेकर उसके रौद्र रूप तक तथा विश्व युद्ध के परिणामों से लेकर मनुष्य की मानसिक उद्वेलन, उसकी जिज्ञासा, उसकी आस्था-आकांक्षा, दर्शन, इतिहास आदि अनेक पहलुओं को विषय के रूप में स्वीकार करके उपन्यास साहित्य का सृजन किया है। तेलुगु में उपन्यास को 'नवला' (नॉवेल) कहा जाता है। अंग्रेजी उपन्यासों से प्रभावित होकर तेलुगु साहित्यकार उपन्यास सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। तेलुगु उपन्यासों की कथावस्तु का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि इनमें प्रमुख रूप से जीवन के यथार्थ की झांकी, पात्रों के मनोभावों की विषय व्याख्या और मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है। सामाजिक एवं मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति परक उपन्यासकारों में टी. गोपीचंद प्रमुख हैं तो बुच्चिबाबु, कृष्णा राव, राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री आदि ने इस प्रकार के उपन्यासों की शृंखला को आगे बढ़ाया। छात्रो! आप जिस उपन्यास 'आखिर जो बचा' का अध्ययन करने जा अरहे हैं यह प्रमुख रूप से सामाजिक और मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति परक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने इडीपस ग्रंथि से पीड़ित एक भारतीय युवक की मनोदशा का सम्यक चित्रण किया है। इस उपन्यास के अंत में लेखक ने उस पात्र के माध्यम से जीवन दर्शन को स्पष्ट किया है। आइए! कथावस्तु जानने से पहले उपन्यासकार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

## 12.3.1 लेखक परिचय

तेलुगु साहित्य में शिवराजु वेंकट सुब्बाराव बुच्चिबाबु के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म 14 जून, 1916 को एलुरु में शिवराजसूर्या प्रकाश राव और वेंकयम्मा के घर हुआ था। आंध्र प्रदेश स्थित पलाकोल्लु में दसवीं कक्षा उत्तीर्ण होने के बाद इंटरमीडिएट और बी.ए. उपाधि पाने के लिए गुंटूर आंध्र क्रिश्चियन कॉलेज गए। बाद मद्रास प्रेसिडेंसी कॉलेज से बीए ऑनॉरस किया। नागपूर विश्वविद्यालय से एमए की उपाधि अर्जित की। अंग्रेजी प्रोफेसर के रूप में उन्होंने कार्य किया। 1945 से लेकर मृत्यपर्यंत अर्थात 1967 तक आकाशवाणी में अपने सेवाएँ दी।

बीए करते समय से ही शिवराजु पत्र-पत्रिकाओं के लिए रचनाएँ लिखते थे। अंग्रेजी में कविताएँ लिखते थे और तेलुगु में छोटी-छोटी सामाजिक कहानियाँ। 'अभ्युदय रचयितल संघम' (अरसम - प्रगतिशील लेखक संघ) के रचनाकार के रूप में शिवराजु को जाना जाता है। उनके विचार प्रगतिशील हैं। वे वस्तुतः मार्क्स, लेनिन, फ्रायड आदि के विचारों से प्रभावैत थे। उन्होंने वचन कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना आदि क्षेत्रों में उपस्थिति दर्ज की है। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं - अज्ञानम् (अज्ञान, वचन कविता), आत्मवंचना (नाटक), शेक्सपीयर साहित्य विमर्श (शेक्सपीयर के साहित्य की आलोचना), ना अंतरंग कथनम् (मेरे अंतरंग कथन), आशावादी, चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा) आदि।

शिवराजु वेंकट सुब्बाराव बुच्चिबाबु के नाम से तेलुगु साहित्य जगत में अपना का निजी स्थान प्राप्त कर चुके हैं। भले ही उन्होंने बहुत कम रचनाओं का सृजन किया, लेकिन एक-एक रचना अपने आप में मील के पत्थर हैं। 20 सितंबर, 1967 को वे पंचतत्वों में लीन हुआ।

## 12.3.2 आखिर जो बचा : संक्षिप्त कथावस्तु

चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा) का प्रकाशन 1952 में हुआ था। कहा जाता है कि इस रचना को बुच्चिबाबु ने 30 वर्ष की आयु में अर्थात 1942 में लिखना शुरू किया था। 1946 में 'नवोदया' पत्रिका में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित होने लगा था और 16 महीनों के बाद इसका लेखन संपूर्ण हुआ। इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने स्वयं इस बात की पुष्टि की है।

'आखिर जो बचा' उपन्यास को लेखक ने 11 अध्यायों में विभाजित किया है - (1) गड्डिपोच विलुव एंता? (तिनके का क्या मूल्य है?), (2) अनुभवानिकी हद्दुलु लेवु अनुभव के लिए कोई सीमा नहीं), (3) मून्नाल्ल् मुच्चट (तीन दोनों की बात), (4) चप्पुडु चेयनि संकेल्लु (खामोश किवाड़), (5) सौंदर्य रहितम (असुंदर), (6) स्वयं संस्कारम (स्व संस्कार), (7) चीकटि समस्या (अंधेरी समस्या), (8) राल्लसीमा (प्रस्तर प्रांत), (9) कात्यायनी संतति, (10) आकुलु रालडम (पतझर), (11) चिवरकु मिगिलेदि (आखिर जो बचा)। हर शीर्षक अपने आप में मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को उजागर करने में सक्षम है।

प्रिय छात्रो! अब आइए, हम मुख्य कथा में प्रवेश करेंगे। इस उपन्यास का मुख्य पात्र डॉक्टर दयानिधि। जगन्नाथ के शब्दों में वह मानवता की मूर्ति है। लोगों के मुख वह माँ के कलंकित होने की बात सुनकर विचलित हो जाता है। उसके मन-मस्तिष्क में यह बात घर कर जाते है। इसीलिए वह हमउम्र की लड़कियों के साथ खुलकर बात करने में संकोच करता है। कामाक्षी की छोटी बेटी कोमली के सौंदर्य के प्रति आकर्षित हो जाता है। लेकिन परंपरा, वंश और आभिजात्य भावनाओं को तिलांजलि देकर वह कोमली को अपनाने के लिए साहस नहीं कर पाता। इस स्थिति से पलायन करने के लिए सोचता है लेकिन रास्ता नहीं सूझता। मानसिक द्वंद्व में फंस जाता है। आकर्षण और संस्कार के टकराव में अपने आप से समझौता कर लेता है। लेखक कहते हैं कि अनुभूति चौखटों के भीतर नहीं मिल पाती और सुंदरता को किसी भी प्रकार के चौखटे नहीं घेरे सकते। दूर के रिश्ते की साली अमृतम से उधार लेकर आए पचास रुपए को कोमली के तकिए के नीचे रखकर वह वापस लौट जाता है।

**बोध प्रश्न**

- दयानिधि अपने हमउम्र की लड़कियों से खुलकर बात क्यों नहीं कर पाता?

दयानिधि की माँ की मृत्यु पर मातमपुर्सी के लिए आए दूर के रिश्ते मामा तहसीलदार गोविंद रामय्या की बेटी सुशीला के आभिजात्य गर्व उसे चिढ़ाता हुआ लगता है। इतना यही नहीं पड़ोसी नायुडू की बेटी नागमणि के व्यंग्य से वह तिलमिला उठता है। सुशीला से वह डरता है, इसीलिए उससे बात करने में संकोच करता है। सुशीला के प्रति उसके मन में अजीब अविश्वास घर कर लेता है। नागमणि उसे पसंद है। मन ही मन सुखद अनुभूति का अनुभव भी करता है, लेकिन कहने में साहस नहीं जुटा पाता। लेकिन अमृतम से वह स्वाभाविक रूप से बात कर सकता है। उसका स्वभाव सचमुच उसे अमृत के समान ही लगता है, क्योंकि वह न ही दयानिधि की माँ के चरित्र के बारे में बात करती है और न ही कोमली का प्रसंग बीच में लाती है। कोमली में न ही आभिजात्य का दर्प है और न ही किसी चीज को लेकर अहंकार। उसे तो बस एक सच्चा दोस्त चाहिए था। वह दयानिधि में एक सच्चे साथी को तलाशती है। कोमली के सौंदर्य में विशेष आकर्षण था। दयानिधि उसे शिक्षित और संस्कारित करने के उद्देश्य से रोज़ को शिक्षिका के रूप में नियुक्त करता है।

**बोध प्रश्न**

- सुशीला से दयानिधि किस बात से चिढ़ता था?

सुशीला की माँ दयानिधि को दामाद बनाना चाहती है। उसकी मंशा को ताड़कर सुशीला के पिता कह उठते हैं कि बेटी देते समय कुल और वंश के गौरव को भी देखना चाहिए। दयानिधि की माँ पर बदचलन होने का कलंक है। अतः वह अपनी बेटी को ऐसे परिवार में देने के लिए इच्छुक नहीं थे।

दयानिधि के दूर के रिश्तेदार पुलिस इंस्पेक्टर माधवय्या को दयानिधि के बारे में पता चलता है। उसकी माँ के बारे में जानने के बाद भी वह अपनी बेटी की शादी दयानिधि से करता है। शादी के बाद भी दयानिधि ससुराल में किसी से भी नहीं घुलमिल पाता। मन में अजीब सी शंका कि लोग उसे नीचा दिखाएँगे। इसी डर से वह किसी से बात भी नहीं कर पाता। प्रथम मिलन के समय पत्नी को अँगूठी पहनाकर उससे प्रश्न करता है कि उसके घरवाले दयानिधि के बारे क्या कह रह हैं। इस प्रकार अनेक अवसरों पर मन की शंका को व्यक्त करते रहता है।

आंध्र प्रदेश में संक्रांति त्योहार को विशेष रूप से चार दिनों तक मनाया जाता है - भोगी, मकर संक्रांति, कनुमा और मुक्कनुमा। मकर संक्रांति के दिन वधू पक्ष वाले बेटी और दामाद को न्योता देते हैं। दामाद की आवभगत होती है। वापसी में बेटी और दामाद को उपहार दिए जाते हैं। विवाह के आठ महीने बीत ही चुके। विवाह के बाद प्रथम संक्रांति त्योहार था। ससुर जमाई राजा दयानिधि को बुलाते हैं पर वह ससुराल नहीं जा पाता। परीक्षा की तैयारी आड़े आ जाती है। सो एक पत्र लिख देता है कि पढ़ाई का आखिरी वर्ष है। परीक्षा के लिए काफी मेहनत करने है, सो आने में असमर्थ हैं। त्योहार के एक महीने बाद माधवय्या दामाद के नाम पर 100 रुपए भेजते हैं। उसे यह बात समझ में नहीं आती कि आखिर ससुर जी ने पैसे क्यों भेजे। अतः वह वापस कर देता है। इस पर नाराज होकर माधवय्या दामाद को एक पत्र लिखता है कि उन्होंने अपनी ताकत के अनुसार पैसा भेजा है। पहली संक्रांति में दामाद के लिए जो रस्में निभायी जाती हैं उन्हें सिर्फ पैसों से नहीं आँकी जाती। दिल की भावनाओं को भी देखी जाती है। इसके उत्तर में दयानिधि लिखता है कि आजकल के युवक बेचारे बड़े ही भोले और आर्थिक स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं। गुलामी की आदत पड़ जाने वालों को जरा सी बात पर भी जल्दी गुस्सा आ जाता है। पैसों को स्वीकार करना दयानिधि के लिए मानसिक गुलामी प्रतीत होती है। इस पत्र का आशय माधवय्या नहीं समझ पाते। उसी चिट्ठी में एक दिन माधवय्या पुलिस सूपरइंटेंडेंट को कुछ तंबाकू लपेटकर देता है। उसे पढ़कर वह माधवय्या को सलाह देता है कि जल्दी ही बेटी का गौना करके ससुराल भेज दें ताकि यह स्वतंत्रता का बुखार जल्दी ही उतर जाएगी।

दयानिधि गौने के लिए काकीनाड़ा जाता है। लेकिन वहाँ कांग्रेस कमिटी द्वारा आयोजित सभा में देश की आजादी के बारे में भाषण देकर पुलिस की लाठियों का शिकार हो जाता है और अस्पताल पहुँच जाता है। पति से मिलने अमृतम के साथ इंदिरा अस्पताल जाती है और पति की आज्ञा के लिए बाहर इंतेजार करती रहती है। इतने में उनके पिता आकार उसे घर वापस ले जाते हैं। उसे यह डर था कि स्वतंत्रता सेनानी से मिलने पर उसे नौकरी से हाथ न धोना पड़े। इस बात पर दयानिधि गुस्से में अमृतम से कहता है कि अब उन दोनों के रास्ते अलग हो चुके हैं।

**बोध प्रश्न**

- दयानिधि को पुलिस की लाठियों का शिकार क्यों होना पड़ा?

दयानिधि एलूरू में डॉक्टरी करता है। उसे ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो उसके भीतर निहित उदार भावना और संवेदना को समझ सके। इसी उदार भवन और संवेदना के कारण

दयानिधि श्यामला की सौंदर्यहीनता की बीमारी की चिकित्सा करता है। श्यामला के भाई शंका के कारण बहन की चिकित्सा बंद करवा देता है। दयानिधि रोज़ को कंपाउंडर के रूप में रख लेता है। कोमली दयानिधि से इसी उदारता की अपेक्षा करती है। बहुत पहले किसी जमींदार के साथ चली गई थी। लेकिन अब उसकी स्थिति ठीक नहीं थी। यह सब जानकार दयानिधि उसे दो सौ रुपए मनीऑर्डर भेजता है। इसी बीच पति को देखने चाचा के साथ इंदिरा आती है। वाहन श्यामला और रोज़ को देखकर शंका करती है। ऊपर से कोमली का पत्र आग में घी डालने का काम करता है। गुस्से में वह दयानिधि की माँ के चरित्र को लेकर उस पर कटाक्ष करती है और वाहन से चली जाती है।

**बोध प्रश्न**

- इंदिरा दयानिधि से किस बात पर नाराज हो जाती है।

दयानिधि को यह पता चलता है कि उसका दोस्त राजा सुशीला से प्यार करता है। लेकिन सुशीला उसके एक रोगी कृष्णमूर्ति से विवाह करती है। दयानिधि लाख कोशिश करता है शादी रोकने के लिए लेकिन संभव नहीं पाता। शादी के आठवें महीने के बाद वह एक शिशु को जन्म देकर मर जाती है। उनके दोस्त इस घटना को लेकर भी दयानिधि को ताने कसने लग जाते हैं यह कह कर कि सुशीला और दयानिधि के बीच नाजायज संबंध थे। दयानिधि बेचैन हो उठता है। मन, सुशीला, रोज़, अमृतम, श्यामला - जिन्हें लोगों के अहवाहों ने जकड़ कर रखा था दयानिधि के मस्तिष्क पर छा गए थे। इन्हीं स्थितियों में वह रायलसीमा के कोढ़ की रोगियों के बारे में सुनता है। उसे लगता है कि उन्हें उसकी जरूरत है। निंदा और अवहेलनाओं से पीछा छुड़ाने के लिए वह रायलसीमा चला जाता है। वाहन श्री आचारी उसे आश्रय देते हैं। उनकी बेटी कात्यायनी के प्रति दयानिधि के मन में ममता उभर आती है। इसी बीच अलग आंध्र प्रदेश की माँग के प्रचार में वहाँ आए राजभूषणम् से दयानिधि का आमना-सामना होता है। पुनः वहीं बातें सामने आती हैं, जिनसे भागकर वह इतने दूर आया था।

रायलसीमा क्षेत्र में वर्षा के दौरान के एक दयानिधि को हीरा मिलता है और वह लखपति बन जाता है। हीरों की खोज में उस क्षेत्र में खदानों का काम शुरू होता है। और क्या वहाँ एक अस्पताल खड़ा हो जाता है। उसमें एक सहायक, चार नर्सें, चार कंपाउंडर और तीन मास्टर नियुक्त होते हैं। कोमली भी जमींदार को छोड़कर वहाँ चली आती है और दयानिधि के यहाँ आश्रय पाती है।

दयानिधि के मन में कोमली के प्रति प्रेम है क्योंकि उसके मन में भी संवेदनशीलता है। लेकिन उसके अतीत से उसे घृणा है। प्रेम की भूखी कोमली को यह कहकर दूर कर देता है कि प्रेम पवित्र चीज है। जैसे ही उसे इंदिरा की बीमारी के बारे में पता लगता है तो तुरंत ससुराल जाता है। क्षय रोग से पीड़ित इंदिरा को वह देखने जाता है लेकिन उसका दाह संस्कार करके वापस लौट आता है। लौटते समय वह अमृतम के भाई जगन्नाथम से मिलने जाता है। वहाँ उसे पता

चलता है कि अमृतम को लड़की हुई है। अपने ही अंश को एक बार देख आने की लालसा उसे अमृतम के पास खींच ले जाती है।

बच्ची को देखकर जब दयानिधि रायलसीमा वापस लौटा है तो पाता है कि वहाँ की वस्तुस्थिति पूरी तरह से बदल चुकी है। जिला मेजिस्ट्रेट के पास किसी अज्ञात व्यक्ति ने उसके विरुद्ध अनेक शिकायतें दर्ज की हैं। मजदूरों को उकसाकर हड़ताल कराई जाते है। खदानें पाट दी जाती हैं। उसे आश्रय देने के लिए आचार्युलु के घर को आग की लपटों की आहुति दी जाती है। उनके परिवार को अपने यहाँ बसाकर दयानिधि कोमली को साथ लिए उसी क्षण सब कुछ त्याग कर जीवन की अंतिम यात्रा पर निकल जाता है।

**बोध प्रश्न**

- दयानिधि रायलसीमा क्यों जाता है?
- दयानिधि प्रेम को क्या मानता है?
- आचार्युलु का घर क्यों जलाई जाती है?

जीवन का रहस्य क्या है? उसने कभी अपने आपसे प्रश्न किया तो उसे वैकुंठ मास्टर का खाली पत्र मिलता है। आज एक बार फिर से वही प्रश्न उसके सामने है। उसे लगा कि आखिर जो बचा वह समाधान कदापि समाधान नहीं हो सकता। समाधान पाने के लिए किए गए सभी प्रयत्न, उसकी यादें और अपने आपसे किया समझौता ही उसके जीवन का रहस्य है।

दयानिधि के भीतर अपार संवेदना और करुणा है। और इस करुणा के प्रसार के लिए उसे ऐसे व्यक्तियों की तलाश है जो उसे मान दें तथा उसे उसी रूप में अपनाए जिस रूप में वह है। उसके भीतर एक प्रकार से अहं के पोषण की इच्छा थी। अपेक्षा और अयाचित दान के परिष्कार में ही उसके जीवन का रहस्य निहित है। उसे कदम-कदम पर उपेक्षा, स्वार्थ, संकुचित विचारों से टकराना पड़ता है। उसके पास जो शेष बचा है वह इस टकराहट से उत्पन्न टीस है।

**बोध प्रश्न**

- जीवन का रहस्य क्या है?
- आखिर क्या बचा था?

### 12.3.3 पात्र परिकल्पना

प्रिय छात्रो! ध्यान देने की बात है कि कथा को विकसित करने के लिए तथा उसे चरम तक पहुँचाने के लिए पात्रों का गठन आवश्यक है। उपन्यासकार अपने विचारों एवं भावों को कथा-पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। अपने आस-पास के परिवेश से वह पात्रों का चयन करता है और कथा के अनुरूप उनके स्वभाव का चित्रण करता है। पात्रों को प्रमुख रूप से मुख्य, गौण और सहायक के रूप में विभाजित किया जा सकता है। 'आखिर जो बचा' उपन्यास का प्रमुख पात्र है डॉक्टर दयानिधि। पूरी कथा इसी पात्र के इर्द-गिर्द घूमती है। अन्य सहायक पात्र

हैं कोमली, अमृतम, नारय्या, जगन्नाथम, परंधामय्या। इस उपन्यास में चित्रित कुछ पुरुष एवं स्त्री चरित्रों का विवेचन करेंगे।

**पुरुष पात्र**

**डॉक्टर दयानिधि : अंतर्मुखी व्यक्तित्व**

दयानिधा सुंदर, शिक्षित, कुलीन परिवार से था। उसके जीवन में कोमली, अमृतम, सुशीला, इंदिरा, नागमणि, श्यामला, रोज़, कात्यायिनी आदि स्त्रियाँ आती हैं और चली भी जाती हैं। ये स्त्री पात्र नायक के चरित्र में बड़ा बदलाव लाती हैं। उसके विचारों में परिवर्तन ही वह सत्य है जो उसने अंततः सीखा।

दयानिधि प्रेमहीनता, अधीरता, असहायता और असुरक्षा से भरे अंतर्मुखी व्यक्तित्व हैं। दयानिधि को उपन्यासकार ने एक धीरोदात्त नायक की भाँति चित्रित न करके, एक आम आदमी के रूप में चित्रित किया है। दयानिधि को आजीवन चरित्रहीन माँ के बेटे होने का मानसिक दंश झेलना पड़ता है। अतः वह हमेशा एक अजीब प्रकार की उपेक्षा और तिरस्कार की स्थितियों में ही बड़ा होता है। इन सब का नकारात्मक प्रभाव उस बालक के मन पर पड़ता है। वह इसी आस में रहता है कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो उसे उसी रूप में अपनाएगा! वह समाज की रवैये से परेशान रहते थे। अपने ही हमउम्र की लड़कियों से वह खुलकर बात नहीं कर पाता। यदि करने की कोशिश भी करता तो उसकी माँ के चरित्र के बारे में चर्चा अनायास ही हो जाती थी। अतः वह दूर भागता रहता है। अपने आप में सिमटकर रह जाता है।

अमृतम दयानिधि की मैत्री अनुपम है। अमृतम एक माँ की तरह उस पर ममता लुटाती है। दया दिखाती है। इसीलिए उससे बातचीत करने में दयानिधि संकोच नहीं करता। दयानिधि कि अमृतम का स्वभाव उसके नाम के अनुरूप ही अमृत समान लगता है। वह दयानिधि से बात करते समय 'जीजा जी' कहकर बड़े आत्मीयता से संबोधित करती थी। इसी लिए तो दयानिधि उससे बात करने में नहीं हिचकते। अमृतम के स्वभाव के कारण दयानिधि उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। दोनों में अनायास ही आकर्षण की भावना जाग जाती है। दोनों एक-दूसरे को ताकते हुए रह जाते हैं। दोनों के बीच मौन साम्राज्य करने लग जाता है। "बातों के बिना दोनों एक-दूसरे को पहचान लेने की निस्तब्धता छा गई थी वातावरण में। मौन की भाषा - एक अनुभव था - जो उसे अमृतम के और निकट ले गया। प्रकृति की पुकार के फलस्वरूप पंचेंद्रियों के बन उठने की एक मूक संवेदना भरा विचित्र अनुभव था।" (आखिर जो बचा, पृ.58)

सामाजिक उपेक्षा से त्रस्त दयानिधि स्थितियों से भागने के प्रयास में लगा रहता था। अचानक एक समाचार ने उसके विचारों पर रोक लगा दी। "रायलसीमा में हैजा और प्लेग फैला था। हजारों लोग मर रहे थे। यहाँ आकार रोगियों को दवा देने वाले डॉक्टरों की संख्या बहुत कम थी। नेतागण विज्ञापन दे रहे थे कि चिकित्सा विभाग द्वारा किए जा रहे कार्यक्रमों में देश के डॉक्टरों को साथ देना बहुत जरूरी है। अनंतपुर और कर्नूल जैसे शहरों में तो रोग तीव्र हो चला

था। निधि के मन में समाचार पढ़कर फौरन यहाँ जाने की इच्छा बलवती हो उठी।" (आखिर जो बचा, पृ.145)। समाचार पढ़कर दयानिधि के मन में यह विचार कौंध उठा कि वहीं जाकर बस जाए और कभी वापस न आए। गोदावरी जिले की स्मृतियाँ उन्हें अंदर से झकझोर देती हैं। यहाँ के लोगों के बुरे स्वभाव, झूठी बातें, झूठे स्तर आदि से वह पीछा छुड़ाना चाहता है। रायलसीमा में नया प्रदेश होने के कारण उसके और उसकी माँ के बारे में जानने वाला कोई नहीं रहता। अतः चैन की साँस तो ली जा सकती थी। वह वास्तव में घुटन भरे माहौल से भागना चाहता था। यह उसके लिए एक सुनहरा मौका था।

दयानिधि को दुनिया से कोई लेना-देना ही नहीं था। फिर भी दुनिया पता नहीं उससे किस जन्म का बदला ले रही है। उसे हर वक्त अकेलापन हाँट करता रहता है। 'निधि तेज हवा, उड़ती धूल, उफनते आते अंधकार इन सबके साथ अपने एकाकीपन से काँप उठा। लगा कि उसे अकेला छोड़कर यह पृथ्वी ब्रह्मांड से कहीं दूर भागती जा रही है। दुनिया से उसे कुछ लेना-देना नहीं फिर भी जाने यह दुनिया उससे किस जन्म का बैर साध रही है। वह उसे अपने साथ दौड़ते रहने को ललकार रही है। वह नहीं भागता तो उसे लंगड़े लूले की उपाधि दे रही है। उसके हृदय में निशीथ की भांति एकांत एहसास केंद्रीकृत हो गया जिसे देखकर वह सहम गया। कहाँ भागकर जाए?' (आखिर जो बचा, पृ.149)। उपन्यासकार ने दयानिधि पात्र के माध्यम से अकेलेपन और उपेक्षित भाव से जूझते हुए व्यक्ति किस प्रकार अंतर्मुखी बन जाता है, उसका खुलासा किया है।

कुल मिलाकर कहें तो उपन्यासकार ने नायक दयानिधि को अंतर्मुखी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है।

**बोध प्रश्न**

- दयानिधि हमउम्र की लकड़कियों से बात करने में क्यों डरता था?
- दयानिधि हमेशा किस तरह की स्थितियों से त्रस्त रहते थे?

**जगन्नाथम : आंतरिक गांभीर्य**

अमृतम छोटा भाई था। हैदराबाद में आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की थी। अमृतम और जगन्नाथम दोनों में किसी बात का साम्य नहीं था। दोनों दो विपरीत ध्रुव वाले थे। स्वभाव बिल्कुल अलग थे। वह किसी से बात करते समय उनके चेहरा देखकर बात कर ही नहीं पाता। कहीं और देखकर बात करता था। उसकी दृष्टि में अजीब पैनापन था। बात-बात पर हँसना उसका स्वभाव था। क्षण भर के लिए वह छुप नहीं रह सकता था। वह देखने में जितना नटखट और अल्हड़ दीखता थी, वास्तव में वह उतना अल्हड़ नहीं है। उसके आंतरिक गंभीरता को आंकना मुश्किल है। ऊपर से हिलोरे मचाने वाला अंदर से एकदम गहरा।

**सोमय्या : साधारण व्यक्ति**

सोमय्या एक साधारण व्यक्ति था। उसका अपना कोई अलग व्यक्तित्व नहीं। उपन्यासकार कहते हैं कि वह समाज का एक अणु मात्र था। वह परंपरा के दलदल में फँसा हुआ व्यक्ति था। ये परंपराएँ, ये झूठी बातें पीछा नहीं छोड़तीं। सोमय्या जैसे व्यक्ति सामाजिक साँचों में ढल जाते हैं। किसी और के बनाए गए सिद्धांतों पर चलने लगते हैं। उन सिद्धांतों का खंडन करने की ताकत नहीं रखता। उपन्यासकार कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति खोखले आदर्शों का खंडन करता भी है तो इस समाज में उसके लिए कोई स्थान नहीं रहता। सोमय्या जैसे लोग जब तक जीवित रहते हैं तब तक ही उनके जीवन को कोई मूल्य रहता है। ऐसे लोगों पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं कि 'जाने पर उसके मृत शरीर को बाजार में बेचो तो धेले में भी कोई नहीं लेगा।' सोमय्या जैसे लोगों का कोई ठिकाना नहीं होता। सौ रुपये के लिए भी अपनी आत्मा को बेचने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि ऐसे लोगों को कोई चोर नहीं कहते। 'रायसाहब रायबहादूर' का खिताब देकर आदर सत्कार करते।' यही काम यदि कोई अशक्त आदमी करें तो उसे चोर कहकर उसका जीना हराम किया जाता है।

**बोध प्रश्न**

- सोमय्या जैसे व्यक्तियों के संबंध उपन्यासकार का क्या कहना है?

**अमृतम : जैसा नाम वैसा स्वभाव**

अमृतम दयानिधि के पिताजी के दूर के रिश्ते की भतीजी थी। दयानिधि के भाई के साथ विवाह का तो चलती, पर विवाह संपन्न नहीं होता। बचपन में वह बहुत नटखट थी। बंदर की तरह उछल-खूद करती थी। शैतानी करती थी। सब उसे चिढ़ाते थे। 'सुंदर सुडौल शरीर, हल्के गुलाबी रंग की छाया लिए हुए, गहरी झील सी आँखें, लंबी केश-राशि, सुदृढ़ कंधे।'

अमृतम जैसे-जैसे बड़े होती गई उसका अल्हड़पन भी खत्म होता गया। नटखट अम्मुलु गंभीर अमृतम बन गई। अपने दुख को पीना जानती गाई। चेहरे पर हँसी को गायब नहीं होने देती थी। उसके हँसमुख चेहरे की गहराई में विषाद झलकता थी। उसकी हँसी में गरिमापूर्ण गांभीर्य को देखा जा सकता है।

अमृतम के व्यक्तित्व के संबंध में उपन्यासकार कहते हैं कि "अमृतम का व्यक्तित्व दूर अति दूर हंपी के खंडहरों-भग्नावेशों में छिपा रहने वाला व्यक्तित्व था। मग्न प्रतिमाएँ, एकाकी बचे खड़े स्तंभ - संवेदनशील प्रेम की प्रतीक्षा में पत्थर बन गई राजकुमारी की मूर्तियाँ - सभी कुछ खंडहर बने - कभी-कभी आधी रात को पदचाप और सिसकियाँ सुनते ही मानो जी उठने का आभास देने वाली संवेदनशील वातावरण के बीच बैठकर विषाद की हँसी हँसती, वह, अपने बीते अनुभव वैभव की स्मृतियों के भार से रो रोकर और रोने की शक्ति चुक जाने पर आँसुओं के दुख में ढलकर बूँद-बूँद आंसुओं में रिस कर, आज नदी बनकर बहने लगी है। और वह दुख नदियों का रूप लेकर वह पूरे देश को डुबो रहा है - नहीं, उसे रोना नहीं चाहिए - इसीलिए वह विषाद भरी हँसी हँस रही थी। आज सौंदर्य अपनी यात्रा समाप्त कर उसे शिला में परिवर्तित कर रहा

था। किसी भी प्रकार पत्थर को आहों से व्यथित कर देने की कमाना लिए अमृतम आज स्वप्न में बहाए आंसुओं की भाँति बहती जा रही थी।” (आखिर जो बचा, पृ.67)

**बोध प्रश्न**

- अमृतम का स्वभाव कैसा था?

**कोमली : कोमल भावनाओं से युक्त**

इस उपन्यास में कोमली एक निम्नजाति की स्त्री है। दयानिधि उसे चाहता है और कोमली भी। कोमली की सुंदरता के प्रति दयानिधि अनायास ही आकर्षित हो जाता है। उससे प्रेम करने लगता है। और उससे शादी करना चाहता है। लेकिन जाति की दीवार उन दोनों के बीच खड़ी हो जाती है। अतः कोमली को वह मन की बात कह भी नहीं पाता। ‘उसे लगता था कि कोमली के सौंदर्य को छूआ नहीं जा सकता, उसे पाया नहीं जा सकता।’ (आखिर जो बचा, पृ.9)। वह कोमली को शिक्षित करना चाहता था, अतः उसे पढ़ाने के लिए रोज़ को नियुक्त करता है। पर परिस्थितियों के कारण कोमली जमींदार के साथ रहना पड़ता है। आखिर समाज के ठेकेदारों से अकेली स्त्री कहाँ तक लड़ सकती है? एक तो स्त्री होने का दंश उसे झेलना पड़ता है और दूसरी ओर निम्नजाति में पैदा होने का। जब यह बात दयानिधि को पता चलता है, तो उसे अपार दुख होता है लेकिन वह कुछ भी नहीं कर पाने की स्थिति में था।

दयानिधि जब रायलसीमा जाकर वहाँ प्लेग और हैजे से ग्रस्त रोगियों की इलाज में जुट जाता है एक अस्पताल खोलकर तो जमींदार को छोड़कर कोमली वहाँ आ जाती है और दयानिधि के यहाँ आश्रय पाती हैं। लोग तरह-तरह की बातें करने लग जाते हैं। अतः आचारी जी को निधि से कहते हैं कि बिना विवाह के मिलकर रहना यह समाज स्वीकार नहीं करेगा। कोमली और निधि मानसिक स्तर पर एक-दूसरे के निकट थे। कोमली निधि के मन की बात को बिना कहे ही समझ जाती थी। वह निधि के प्रेम पागल जो ठहरी। निधि और कोमली का प्रेम मांसल न होकर आत्मिक है। वह अपने औदात्य को नहीं छोड़ती क्योंकि उसके मन में हमेशा ही निधि के प्रति कोमल भावनाएँ थीं।

**बोध प्रश्न**

कोमली का स्वभाव कैसा था?

### 12.3.4 परिवेश

1943 में बुच्चिबाबु रायलसीमा क्षेत्र में निवास किया था। वस्तुतः इस उपन्यास में 1930 से लेकर 1950 के बीच का कालखंड है। उस समय की सामाजिक परिस्थितियों को देखा जा सकता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने यह दर्शाया है कि समाज मनुष्य के जीवन को गहरे में प्रभावित करता है। तत्कालीन समाज में प्रेम को तिरस्कार की भावना से देखा जाता है। मनुष्य को अपने इच्छा से प्रेम की स्वतंत्रता नहीं थी। दयानिधि की माँ प्रेम करती है और अपने

मन को न समझाने की स्थिति में वह प्रेमी के साथ चेली जाती है। लेकिन समाज इसे नहीं मानता क्योंकि की सामाजिक दृष्टि से यह घोर निंदनीय अपराध है। अतः बचपन से लेकर अपने जीवन के अंतिम छोर तक दयानिधि को लोगों की बातों का शिकार होना पड़ता है - 'अरे! उसकी माँ भी तो ऐसी ही है,' 'जैसी माँ वैसा बेटा' जैसी उक्तियों का सामना करना पड़ता है। इतना यही नहीं वह एक निम्नजाति की लड़की कोमली से अपने प्रेम का इजहार भी समाज से डरकर नहीं कर पाता।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास में जगह-जगह पर धर्म और दर्शन की बातें कहकर खोखले धार्मिक परिवेश पर प्रहार किया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक परिवेश को लेखकीय टिप्पणी के माध्यम से समझा जा सकता है - "दया को घृणा ने बिगाड़ दिया। धर्म को विज्ञान ने दफनाया दिया। भगवान को मंदिर में बांध दिया लिया। अच्छाई सिंहासन पर चढ़कर दम तोड़ बैठी। मोह ने कमर को बांध लिया। सभ्यता, कार के नीचे, रेलों की पटरियों पर विमानों से नीचे गिरकर कराहने लगी। 'हम' टूटकर 'मैं', 'तुम' के टुकड़ों में बँटकर दो विपरीत दिशाओं में जाने लगी।" (आखिर जो बचा, पृ.233)

इस उपन्यास में फ्रायडीय मनोविश्लेषणात्मक परिवेश को आदि से लेकर अंत तक देखा जा सकता है। माँ की गलती के कारण बच्चे को प्रताड़ित किया जाता है। पग-पग पर उस बच्चे को अनेक तरह से अपमानित किया जाता है। वह बच्चा उसी मानसिक वेदना के साथ पलकर बड़ा होता है। इन सारी घटनाओं के कारण निधि को स्त्रियों के प्रति विश्वास उठ जाता है। वह सभी को एक ही नजर से आँकने लगे। लेकिन कोमली के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हुआ। अंत में वह कोमली के साथ एक नई जिंदगी जीने के लिए सब तरह की रूढ़ियों को त्याग कर आगे बढ़ जाता है।

'कात्यायनी संतति' शीर्षक अध्याय में लेखक ने फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक उक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे - 'Repressions are rendered impotent unless they achieve finality though the unconscious. In this case the balance between the unconscious and conscious plans of activity moral and physical has been disturbed to the detriment of general psychosis.' इससे यह स्पष्ट है कि लेखक के मन को फ्रायड के सिद्धांतों ने काफी प्रभावित किया है।

**बोध प्रश्न**

- इस उपन्यास में किस प्रकार का परिवेश चित्रित है?

### 12.3.5 संवाद

प्रिय छात्रो! कथा को आगे बढ़ाना के लिए उपन्यासकार अपने पात्रों के बीच संवादों का गठन करता है। इन्हीं संवादों के माध्यम से कथा चरम तक पहुँचती है। लेखक जो जो कुछ कहना

चाहता है वह अपने पात्रों के माध्यम से कहता है। लेखकीय टिप्पणियों के माध्यम से कहता है। छोटे, मझोले और लंबे संवादों का प्रयोग करते हुए लेखक कथासूत्र को बुनता है और समसामयिक स्थितियों को उजागर करता है।

उपन्यासकार निधि और कोमली के संवादों के माध्यम से सच्चे प्यार की परिभाषा करते हैं। जब कोमली पूछती हैं कि क्यों न हो शारीरिक संबंध? तो निधि जवाब देता है कि 'सच्चे प्यार में मनुष्य द्वारा निर्मित सीमाएँ नहीं होतीं। अगर हों तो प्यार नहीं कहलाएगा।' (आखिर जो बचा, पृ.223)। सच्चा प्यार किसी बंधन को नहीं स्वीकारती। शरीर तो केवल मांसलता है। सिर्फ देह के प्रति आकर्षण को प्यार नहीं कहा जा सकता। प्रेम एक ऐसी दिव्य भवन है जो तन से परे है। आत्मिक स्तर पर जब दो व्यक्ति एक-दूसरे के निकट हो जाते हैं तो वह प्रेम दिव्यत्व को पा जाता है। इसी बात को उपन्यासकार ने निधि के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

दयानिधि बरसों समाज से डरकर जिंदगी से भागता रहा, लेकिन लोगों की निंदा भरी बातें पीछा नहीं छोड़ीं। लेकिन वह उसे परिपक्व स्थिति में पहुँच गया जहाँ पहुँचने के बाद मनुष्य को किसी से डर नहीं लगता। यह कोमली और उसके बीच के संवादों से स्पष्ट होता है। देखिए -

निधि : आज मैं श्मशान में ज्योति देखी है।

कोमली : कैसी बातें करते हो? मुझे डर लग रहा है।

निधि : विश्वास करोगी, मैंने खोज लिया है कि मनुष्य के हृदय में घृणा क्यों उठती है?

कोमली : बता दो कारण भी।

निधि : जब वह खुद नहीं जानता कि उसे क्या चाहिए तो उसके मन में दूसरे के प्रति द्वेष होने लगता है।

कोमली : मतलब मैं नहीं समझी।

निधि : अगर वह जान ले कि उसे क्या चाहिए तो उस वस्तु को प्यार कर उसे पाने की कोशिश करता है। चाह ही अगर मालूम न हो, हृदय में केवल द्वेष ही बचा रहता है।

कोमली : मैं जानती हूँ कि मुझे क्या चाहिए और तुम्हें जो चीज चाहिए वह भी मैं जानती हूँ। संदेह के लिए हमारे बीच कोई स्थान नहीं है।

उपन्यासकार ने छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से जीवन रहस्य को उजागर किया है। उन्होंने दयानिधि के माध्यम से अनेक दार्शनिक तत्वों को उजागर किया है। कुछ उदाहरण मात्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

- मनुष्य संस्थाएँ और देश सभी से टकराया जा सकता है, पर अकारण द्वेष को कोई नहीं रोक सकता। (पृ.224)

- सौ फीसदी अच्छाई कहीं नहीं होती। हाँ, किसी दूसरे की तुलना में जरा अच्छा होना कह सकते हैं।' (पृ.224)
- जो अपने से प्यार नहीं कर पाता उसे दूसरों से भी प्यार करने का अधिकार नहीं। (पृ.224)
- सृष्टि में असंतृप्त होना ही नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन होता है। इस असंतोष के कारणों का समूल नाश करने का मार्ग ही आध्यात्मिक साधन है। अधिक संख्या में लोग इस रास्ते को अपनाते हैं तो वह धर्म बन जाता है। धर्म द्वारा निदेशित अनेक मार्गों में मोक्ष साधन परामात्मा भी एक है। (पृ.89)
- नई रोशनी के लोग धर्म और भगवान के थान पर प्रकृति और कला की आराधना करने लगे हैं और कुछ प्रजा सेवा कर संतुष्ट हो लेते हैं पर ये सभी आध्यात्मिक दृष्टि से भगवान के प्रतिस्थापन से नहीं होने चाहिए। (पृ.89)
- धर्म, ईश्वर और मनुष्य को धकेल कर आनंद देने वाली आध्यात्मिक, मानसिकता का उद्भव ही मानव जीवन के अंतिम छोर का यथार्थ है। (पृ.233)

**बोध प्रश्न**

- उपन्यासों में संवादों का क्या महत्व है?

### 12.3.6 भाषा

कथा, पात्र और परिवेश के अनुरूप लेखक भाषा का प्रयोग करता है। रालसीमा क्षेत्र के परिवेश और भाषा शैली को इस उपन्यास में प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। साथ ही गोदावरी जिले की भाषा-शैली और परिवेश। इस उपन्यास में तत्सम प्रधान भाषा के साथ साथ क्षेत्रीय बोलीगत प्रयोग को भी देखा जाता देखा जा सकता है। उपन्यासकार ने पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं मनोभावाओं को अभिव्यक्त करने में भी भाषा सक्षम है। दयानिधि के नौकर नारय्या के माध्यम से उपन्यासकार ने क्षेत्रीय बोली का प्रयोग किया है उस परिवेश को व्यक्त करने के लिए। नौकर अपने जजमान से बात करते समय रायलसीमा में 'दोरा' (पुरुष) और 'दोरसानी' (स्त्री) शब्दों का प्रयोग करते हैं। गोदावरी जिले में उर्दू की तरह नफासत भाषा का प्रयोग किया जाता है। जैसे  पुरुष के लिए 'अय्यगारु' और स्त्री के लिए 'अम्मगारु'। 'गारु' शब्द वस्तुतः गौरववाचक शब्द है। इस तरह अनेक प्रयोगों को देखा जा सकता है। अशिक्षित पात्रों के मुख से उपन्यासकार ने तद्भवीकृत और आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए अँधेरे के लिए तेलुगु में 'चीकटि' शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन नौकर नारय्या 'सीकटि' का प्रयोग करता है। जल्दी के लिए 'त्वरगा' कहा जाता है। लेकिन यहाँ 'बेगी' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो सीमांचल विशेष है। पूरे उपन्यास में स्वगत शैली का प्रयोग करते हुए उपन्यासकार ने दयानिधि के व्यथा-कथा को उजागर किया है और यह दर्शाया है कि तिरस्कार के दंश को मनुष्य कहाँ तक सहन कर सकता है।

**बोध प्रश्न**

- उपन्यासों में भाषा का क्या महत्व है?
- प्रस्तुत उपन्यास 'आखिर जो बचा' में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है?

### 12.3.7 उद्देश्य

जीवन हमेशा न ही काँटों का ताज होता है और न ही खुशियों का सेज। वास्तव में यह जीवन दुख-सुख का सम्मिश्रण है। समाज में अनेक तरह के लोगों और अनेक तरह की स्थितियों का सामना करना पड़ता है। परिस्थितियों के कारण मनुष्य अंतर्मुखी बन जाता है तो कभी बहिर्मुखी। उपन्यासकार ने इस मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास के माध्यम से यह दर्शाया है कि सामाजिक प्रताड़ना के कारण किस प्रकार दयानिधि जैसे पात्र बचपन से मानसिक घुटन का शिकार हो जाते हैं। बचपन से जो बालक तिरस्कार और उपेक्षा का दंश झेलता है वह समय से पहले बड़ा हो जाता है, दुनिया देख लेता है। दयानिधि भी दुनिया देखकर सहम गया था। समाज में चारों ओर गंदगी, बर्बरता, बीमारी, अज्ञान, पशुता आदि को वह सह नहीं पाया और इनसे जूझ नहीं पाया। 'इस अभागी दुनिया में संतोष भरा जीवन व्यतीत कारण के लिए उन्होंने एक दूसरे प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया, एक प्रशांत दृष्टि अपनाई और जीते रहने की स्थिति से समझौता कर लिया।' (आखिर जो बचा, पृ.86)।

उपन्यासकार इस उपन्यास में मुख्य रूप से इस तथ्य को दर्शाया है कि किसी से घृणा करना या घृणा का पात्र होना त्रासद स्थिति नहीं। इस बात पर दुखी होनी की जरूरत भी नहीं है। लेकिन जीवन में वास्तविक दुख यह है कि किसी से भी प्रेम न करने की स्थिति में होना। प्रेम एक ऐसी अनुभूति है जो मनुष्य के जीवन में अपार सुख-शांति ले आता है। इसी ढाई आखर में संपूर्ण जीवन रहस्य निहित है।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य आनंद की अपेक्षा करता है जो उसका जन्मजात स्वभाव है। वह उस आनंद को की तरह से की स्रोतों से पाने की कोशिश करता है। 'कुछ लोग पीते हैं, तो कुछ व्यभिचारी बनते हैं, कुछ कविता करते हैं, कुछ संगीत की साधना करते हैं। तो कुछ देशभक्ति में पड़कर सर्वस्व त्याग देते हैं। चित्र खींचते हैं चित्रकार। प्रकृति के आराधक, सौंदर्य के उपासक सभी अपनी परिस्थिति, स्वभाव और प्राप्त संस्कार के अनुसार आनंद की साधना करते हैं। आध्यात्मिक जीवन के द्वारा आनंद की प्राप्ति करते हैं।' (आखिर जो बचा, पृ.86)

निधि समाज से डर-डरकर आजीवन भागता रहा। उसके डर के कारण ही उसे हर वक्त लोगों की उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ा। माँ की एक गलती उसके जीवन को झकझोर दी। जब तक वह लोगों से भागता रहा तब तक उसे तरह-तरह की बातें झेलनी पड़ी। पर अंत में वह जान ही गया कि उसे क्या चाहिए। कोमली के साथ उसने एक नई जिंदगी जीने का निर्णय लिया। जब उसे मुड़कर देखा तो आखिर उसके पास क्या बचा? उसकी स्मृतियाँ, संस्मरण और समझौते!

अंततः यह कहा जा सकता है कि देश, काल और समय की सीमाओं को बेधकर मानव मन की गहन परतें खोलकर दिखाना इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है।

**बोध प्रश्न**

- 'आखिर जो बचा' उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार क्या बताना चाहते हैं?

### 12.3.8 नामौचित्य

बुच्चिबाबु द्वारा रचित उपन्यास 'चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा) पूरी तरह से समाज-मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। सामाजिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों के करण एक व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों को इस उपन्यास में देखा जा सकता है। लेखक द्वारा रचा गया कल्पना का यह संसार वस्तुतः गहरा है। इस संसार में कुछ भी पूर्ण नहीं होता। पीछे मुड़कर देखेंगे तो पता चलता है कि क्या बचा हुआ है। मनुष्य की स्मृतियाँ तथा बीता हुआ कल के अलावा कुछ भी तो नहीं। मनुष्य को अपनी जिंदगी अपने शर्तों पर जीना होगा, न कि समाज के शर्तों पर। उपन्यासकार ने इस दार्शनिक तथ्य को निरूपित करने के उद्देश्य से ही उपन्यास का नामकरण किया है 'चिवरकु मिगिलेदि' (आखिर जो बचा)। यह शीर्षक अपने आप में एक संपूर्ण दर्शन है, जीवन सत्य है। अतः इस उपन्यास का नाम औचित्य अपने आप सिद्ध हो जाता है।

**बोध प्रश्न**

- आपके अनुसार क्या इस उपन्यास का नामकरण उचित है? यदि इस उपन्यास का कोई अन्य नाम होता तो क्या होता?

## 12.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि 'आखिर जो बचा' सामाजिक-मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। मानसिक ग्रंथि से पीड़ित एक युवक की कहानी है 'आखिर जो बच'। इस उपन्यास में लेखक ने 11 अध्यायों में मानव की मानसिक परतों को उधेड़ कर रखा है। माता-पिता की गलतियों के लिए बच्चों की निंदा करना समाज में आम बात है। ऐसा करते समय कभी भी यह नहीं सोचा नहीं जाता कि उस नन्हे बच्चे की स्थिति क्या होगी, जिसे उपेक्षा और तिरस्कार का दंश झेलना पड़ रहा है। उपन्यास का नायक दयानिधि एक ऐसा ही पात्र है अपनी माँ की एक गलती के लिए जीवन भर परीक्षा देता है, लोगों के निंदा रस का सामना करता है। लेखक ने यह निरूपित किया है कि मनुष्य जब तक समाज से डरता रहेगा, तब तक यह समाज उस पर तरह-तरह ले लांछन लगाकर डराता ही रहेगा। यदि वह निर्णय करेगा कि उसे क्या चाहिए और उसके अनुरूप आगे बढ़ेगा तो यह समाज कुछ नहीं कर सकता। उसकी जिंदगी आराम से कटेगी। अंत में दयानिधि कोमली के अपना जीवन जीने के लिए निर्णय लेता है।

## 12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. 'आखिर जो बचा' उपन्यास में यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यर्थता और सफलता दोनों भी केवल मानव मस्तिष्क की कल्पनाएँ हैं।
2. सामाजिक उपेक्षा और अवहेलना के कारण मनुष्य की मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है। इतना बिगड़ जाती है कि वह आनंद की प्राप्ति से भी डरने लग जाता है। यही स्थिति इस उपन्यास के नायक दयानिधि की है। वह इतना त्रस्त हो जाता है कि सब स्त्रियों को शंका की नजर से ही देखने लगता है।
3. उपन्यास का नायक दयानिधि अपनी कथा-व्यथा को व्यक्त करता है। स्वगत शैली का प्रयोग करते हुए उपन्यासकार ने पूरी कथा-सूत्र को आगे बढ़ाया। जहाँ कोमली, इंदिरा, सुशीला, कात्यायनी की बात आती वहाँ उन्होंने छोटे-छोटे संवादों का प्रयोग करते हुए बात को आगे बढ़ाया।
4. बचपन से समाज से घृणा करने वाला नायक दयानिधि अंत में कोमली के साथ स्वेच्छा से जीवन यापन करने का निर्णय लेता है। उपन्यासकार ने यह निरूपित किया है कि दूसरे क्या कहेंगे इसे सोचकर डरने वाले, जीवन में कभी सुखी नहीं हो सकते। हमें बस इतना ध्यान रखना चाहिए कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसे हमारा अपना मन न धिक्कारे।

## 12.6 शब्द संपदा

1. अंतर्मुखी = जो लोगों से खुलकर मिलता-जुलता न हो
2. अवहेलना = अनादर करना
3. असंतृप्त = जो पूरी तरह तृप्त न हो
4. आभिजात्य = रईस
5. इडीपस ग्रंथि = पुत्र की अपनी माता के प्रति कामवासना की ग्रंथि/ एक प्रकार का मानसिक रोग
6. उपेक्षा = तिरस्कार
7. औदात्य = उदात्त भावना
8. तिलांजलि = सदा के लिए त्याग देना
9. दंश = लांछन
10. दिव्यत्व = अलौकिकता
11. निशीथ = रात
12. परमात्मा = भगवान
13. मांसलता = मांस से भरे होने की अवस्था

14. मातमपुर्सी = शोक

## 12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

**(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. 'आखिर जो बचा' उपन्यास की कथावस्तु को अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'आखिर जो बचा' उपन्यास में चित्रित पात्रों के बारे में चर्चा कीजिए।
3. 'आखिर जो बचा' उपन्यास के नायक दयानिधि का व्यक्तित्व अंतर्मुखी है - इस उक्ति की निरूपण कीजिए।
4. 'आखिर जो बचा' उपन्यास के स्त्री पात्रों का विवेचन कीजिए।

**खंड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

1. 'आखिर जो बचा' के उपन्यासकार बुच्चिबाबु संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. 'आखिर जो बचा' उपन्यास की कोमली के व्यक्तित्व पर टिप्पणी लिखिए।
3. 'आखिर जो बचा' उपन्यास के संवादों के माध्यम से उपन्यासकार ने क्या निरूपित किया है?
4. 'आखिर जो बचा' उपन्यास के उद्देश्य और नामौचित्य पर प्रकाश डालिए।

**खंड (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए**

1. 'आखिर जो बचा' उपन्यास में मानसिक द्वंद्व में कौन फँसा है? ( )
   (अ) इंदिरा (आ) सुशीला (इ) आचारी (ई) दयानिधि
2. दयानिधि रायलसीमा क्यों जाता है? ( )
   (अ) प्रेम हेतु (आ) इलाज हेतु (इ) विद्रोह हेतु (ई) बदला लेने हेतु
3. दयानिधि किसे शिक्षित और संस्कारित करने के उद्देश्य से रोज़ की नियुक्ति करता है? ( )
   (अ) इंदिरा (आ) कोमली (इ) अमृतम (ई) सुशीला
4. 'आखिर जो बचा' उपन्यास में किस शैली का प्रयोग करते हुए उपन्यासकार ने पूरी कथा-सूत्र को आगे बढ़ाया? ( )
   (अ) संवाद (आ) स्वगत (इ) विवरण (ई) डायरी

5. ‘आखिर जो बचा’ उपन्यास को लेखक ने कितने अध्यायों में विभाजित किया है? (   )
   (अ) 10   (आ) 11   (इ) 15   (ई) 18

**II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

1. पैसों को स्वीकार करना दयानिधि के लिए ...... गुलामी प्रतीत होती है।
2. दयानिधि को आजीवन चरित्रहीन माँ के बेटे होने का ............ झेलना पड़ता है।
3. ‘आखिर जो बचा’ ............ उपन्यास है।
4. ‘आखिर जो बचा’ के रचनाकार ............ हैं।
5. दयानिधि के हृदय में निशीथ की भांति ............ एहसास केंद्रीकृत हो गया था।

**III. सुमेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| 1. दयानिधि | (अ) अमृतम का छोटा भाई |
| 2. नारय्या | (आ) निधि की पत्नी |
| 3. कोमली | (इ) नायक |
| 4. इंदिरा | (ई) निधि का नौकर |
| 5. जगन्नाथम | (उ) निम्नजाति की स्त्री |

## 12.8 पठनीय पुस्तकें

1. चिवरकु मीगिलेदि : बुच्चिबाबु (विशालांध्रा पब्लिशिंग हाउस)
2. आखिर जो बचा : बुच्चिबाबु : हिंदी अनुवाद दयावंती (नेशनल बुक ट्रस्ट)

## इकाई 13: पंजाबी कवि पाश की निर्धारित कविताओं का विवेचन

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मूल पाठ : पंजाबी कवि पाश की निर्धारित कविताओं का विवेचन

13.3.1 पाश : जीवन परिचय

13.3.2 काव्य संग्रह : बीच का रास्ता नहीं होता

13.3.3 'मेरी माँ की आँखें' कविता

13.3.4 'भारत' कविता

13.3.5 'हम लड़ेंगे साथी' कविता

13.3.6 'रिहाई : एक प्रभाव' कविता

13.3.7 'घास' कविता

13.4 पाठ सार

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

13.6 शब्द संपदा

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

13.8 पठनीय पुस्तकें

### 13.1 : प्रस्तावना

पाश उन चुनिंदा कवियों में हैं जिन्होंने कविता पंजाबी भाषा में लिखी लेकिन उनकी स्वीकार्यता और प्रसिद्धि उन सभी भाषाओं में एक जैसी ही रही, जिनमें उनकी कविताओं का अनुवाद हुआ। पाश ने एक ऐसे समाज, एक ऐसे देश की कल्पना की जहाँ समानता हो, जहाँ इज्जत से जीने का हक़ मिले, लेकिन जब इन बुनियादी जरूरतों से सत्ता ने किनारा कर लिया तब उनकी कविता में आक्रोश का स्वर आया। पाश की कविता के लिए प्रसिद्ध कवि नागार्जुन ने लिखा 'पाश की पंक्तियों को यदि मूल पंजाब में सुनने का सुअवसर मिलता तो हम पाश की आंतरिक ऊर्जा से अपने अंदर मृत संजीवनी की बूंदों का अहसास भरते। रचनाओं के माध्यम से पाश को समझने की कोशिश करते समय बार-बार मेरे सामने परम प्रखर कवि धूमिल आ जाते हैं। "अमृता प्रीतम ने लिखा "जैसा अकसर होता है-कोई इल्हामी पंक्ति कई शायरों के अक्षरों में

उतर आती है, वही बात पाश की कविता के साथ भी घटी थी, पाश की अपनी जिंदगी के हश्र की बात उसकी अपनी कलम से लिखी गई थी, किंतु इस कविता की पीड़ा सिर्फ पाश के जीवन से नहीं जुड़ी हुई, वह असंख्य लोगों के जीवन से जुड़ी है। कत्ल के श्रवण वीर जिन ऊँटों को चराते थे, वे ऊँट आज के श्रवण वीरों को चर रहे हैं। पाश की कविता का यह संकेत जिस खूनी इतिहास की ओर है, वह इतिहास कितना लंबा होगा? खुदा रहम करे।"

इस इकाई में हम पाश के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय प्राप्त करेंगे, 'बीच का रास्ता नहीं होता' काव्य संग्रह की बात करते हुए इस संग्रह से पाश की चुनिंदा पाँच कविताओं का विवेचन करेंगे।

## 13.2 : उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- पाश की जीवनी से परिचित हो सकेंगे।
- पाश की मृत्यु के बाद प्रकाशित काव्य-संग्रह 'बीच का रास्ता नहीं होता' किताब के बारे में जान सकेंगे।
- पाश की प्रसिद्ध कविता 'हम लड़ेंगे साथी' के माध्यम से, शोषित वर्ग के प्रति पाश की संवेदना से परिचित हो सकेंगे।
- 'भारत' कविता के माध्यम से पाश के देश प्रेम और देश से उनके तात्पर्य को समझ सकेंगे।
- 'रिहाई :एक प्रभाव' कविता के माध्यम से तमाम मुश्किलों के बाद भी संघर्ष के प्रति अपनी प्रतिबद्धता से न डिगने की पाश की भावना से परिचित हो सकेंगे।
- 'पाश' की प्रसिद्ध कविता 'घास' से परिचित हो सकेंगे और पाश तथा अन्य कवियों द्वारा शोषित वर्ग की आवाज के लिए 'घास' को प्रतीक के तौर पर प्रयोग किए जाने का उदाहरण देखेंगे।
- 'मेरी माँ की आँखें' कविता के माध्यम से जानेंगे कि किस तरह पाश ने समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया।

## 13.3 : मूल पाठ : पंजाबी कवि पाश की निर्धारित कविताओं का विवेचन

### 13.3.1 पाश : जीवन परिचय

पाश को पंजाबी कवि सिर्फ इस मायने में कहा जा सकता है कि उन्होंने पंजाबी भाषा में कविताएं लिखीं लेकिन उनकी कविताओं का व्यापक प्रभाव, राष्ट्रीय स्तर पर हुआ और इस तरह उन्हें राष्ट्रीय कवि कहे जाने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। पाश का जन्म 9 सितंबर 1950 को पंजाब के जालंधर जिले की नकोदर तहसील के गाँव तलवंडी सलेम में हुआ। पाश का नाम

अवतार सिंह संधू रखा गया और घर में उन्हें सभी 'अवतार' या 'तार' कहकर बुलाते थे। 'पाश' उनका साहित्यिक नाम था। रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की का उपन्यास 'माँ' पाश की प्रिय किताब थी और इस उपन्यास के ही पात्र पॉवेल उर्फ़ पाशा से प्रभावित होकर उन्होंने अपना नाम 'पाश' रखा।

पाश के पिता सोहन सिंह संधू सेना में थे और कविताएं भी लिखते थे। हालांकि उनकी कोई कविता प्रकाशित नहीं हुई। पिता के परिवार से बाहर रहने का असर बच्चों की पढ़ाई पर पड़ा। पाश के बड़े भाई ने मैट्रिक के बाद पढ़ाई छोड़ दी और पाश ने भी मैट्रिक की परीक्षा पास नहीं की। लेकिन पाश की बुद्धि तेज थी और वे बहुत संवेदनशील थे। सिर्फ 15 वर्ष की उम्र में उन्होंने कविता लिखनी शुरू की। यही समय था जब पाश कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रभाव में भी आए। उनकी कविताएं कम्युनिस्ट विचारधारा वाली पत्रिकाओं में छपी जिससे उन्हें प्रसिद्धि मिली। 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी गाँव से किसान आंदोलन शुरू हुआ और धीरे-धीरे पूरे देश में फैल गया। पंजाब में इसे विशेष समर्थन मिला। पाश भी इस आंदोलन से प्रभावित हुए और जुड़े।

पाश ने भले ही मैट्रिक की परीक्षा भी न दी हो, लेकिन पंजाबी, हिंदी और अंग्रेजी की कई किताबों का उन्होंने अध्ययन किया जिससे उनकी विचारधारा परिपक्व हुई। उनके अध्ययन में कला, राजनीति, दर्शन, विज्ञान आदि शामिल रहे। पाश नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित रहे लेकिन इसमें उनकी कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी। लेकिन पाश को 1969 में एक झूठे मुकदमे में फंसाकर जेल में डाल दिया गया। जेल में उन्हें शारीरिक यातनाएं दी गईं लेकिन पाश नहीं टूटे। जेल में ही पाश  कविता लिखते रहे। दोस्तों के माध्यम से जेल से उसकी कविताएँ बाहर आती रहीं और ये कविताएँ अमरजीत चंदन द्वारा संपादित 'दस्तावेज', मोहन जीत द्वारा संपादित 'आरंभ' में छपीं। जेल से रिहा होने के बाद पाश का पहला काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ जिसका नाम था 'लौह कथा'।  यही समय था जब बलराज साहनी को भाषा विभाग का कोई पुरस्कार मिला था। बलराज साहनी ने इस पुरस्कार की राशि पंजाबी के नाटककार गुरशरण सिंह को देते हुए कहा कि इसे किसी अच्छे काम में लगाना। इस राशि से ही पाश का पहला कविता-संग्रह 'लौह कथा' प्रकाशित हो सका।

1971 में पाश की रिहाई हुई। जेल से रिहा होने के बाद पाश साहित्यिक रूप से बहुत सक्रिय रहे। इस बीच लगातार उन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ी। उन्होंने अपने गाँव से 'सिआड़' नामक पत्रिका भी निकाली। 1974 में पाश का दूसरा काव्य संग्रह 'उड्डदे बाजां मगर' प्रकाशित हुआ। आपातकाल में भी पाश को जम्मू-कश्मीर से गिरफ्तार किया गया।

अपने कम पढे-लिखे होने की वजह से रोजी-रोटी की समस्या को हल करने के लिए पाश ने फिर से पढ़ाई शुरू की। उन्होंने मैट्रिक पास कर, जे.बी.टी. का कोर्स किया। उन्होंने ईवनिंग कालेज, जालंधर में बी.ए. में भी दाखिला लिया लेकिन बी.ए. नहीं कर पाए। 1978 में पाश का तीसरा संग्रह 'साडे समियां विच' प्रकाशित हुआ।

आपातकाल खत्म होने के बाद लंदन के पंजाबी साप्ताहिक 'देस परदेस' ने उन्हें अपना भारतीय प्रतिनिधि बनाया, लेकिन कुछ समय बाद ही विचारधारा में टकराव की वजह से उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी। पाश ने 1978 में राजवंत कौर उर्फ़ राणी के साथ विवाह किया। विवाह के बाद उन्होंने तलवंडी सलेम के पास 'उगी' में गुरुनानक नेशनल स्कूल खोल लिया। वह यहाँ पढ़ाने के साथ-साथ आंदोलन का काम भी करते रहे। लेकिन स्कूल ज़्यादा दिन नहीं चला। 1980 में पाश एक बच्ची के पिता बने। 1983 में पाश ने हस्त-लिखित पत्रिका 'हाँक' में खालिस्तानी आंदोलन के खिलाफ कविताएं लिखीं। 1985 में पाश को अमेरिका जाकर काम करने का प्रस्ताव मिला और 1986 में पाश अपनी पत्नी और बच्ची के साथ अमेरिका चले गए। अमेरिका में भी पाश ने 'एंटी-47' पत्रिका का एक अंक निकाला जिसमें धार्मिक उन्माद पर प्रहार किया गया था। अपनी कविताओं की वजह से पाश, खालिस्तानी आंदोलन समर्थकों के निशाने पर रहे। दो साल अमेरिका रहकर पाश 1988 में भारत वापस आए। पाश को वापस 24 मार्च 1988 को अमेरिका लौटना था, लेकिन ख़ालिस्तानियों ने 23 मार्च 1988 को पाश और उसके दोस्त हंसराज की गोली मार कर हत्या कर दी। भगत सिंह, पाश के आदर्श थे। भगत सिंह को 23 मार्च 1931 को फांसी दी गई और 23 मार्च को ही 1988 में पाश को गोली मार दी गई। उनकी मृत्यु के बाद 'लड़ेगें साथी' शीर्षक से चौथा संग्रह आया जिसमें प्रकाशित व अप्रकाशित कविताएं संकलित हैं। पाश की अंतिम प्रकाशित कविता थी 'सबसे खतरनाक'।

**बोध प्रश्न**

- पाश का जन्म कब और कहाँ हुआ?
- पाश का मूल नाम क्या है?
- पाश ने कविता लिखनी कब शुरू की?
- पाश के पहले प्रकाशित काव्य-संग्रह का नाम क्या है?
- पाश ने अपने गाँव से किस नाम से पत्रिका निकाली?
- पाश की अंतिम प्रकाशित कविता कौन सी है?

### 13.3.2 काव्य संग्रह : बीच का रास्ता नहीं होता

'बीच का रास्ता नहीं होता' संग्रह के लिए सम्पादन और अनुवाद का कार्य प्रो. चमनलाल ने किया है। प्रो. चमनलाल की हिंदी, पंजाबी और अंग्रेजी भाषाओं में 40 से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसके अलावा इन तीनों ही भाषाओं में उनके पाँच सौ से भी अधिक शोध-पत्र और लेख, समीक्षाएं और अनुवाद प्रकाशित हैं। 'बीच का रास्ता नहीं होता' संग्रह 1989 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। पाश की अब तक उपलब्ध लगभग एक सौ तीस कविताओं में से इस संग्रह में उनकी चुनी हुई 81 कविताएँ शामिल की गई हैं। इस चयन में उनके रचनाकाल को तीन खंडों में रखा गया है। 1967 से लेकर 1974 में छपे उनके दूसरे कविता-संग्रह 'उड्डदे बाजाँ मगर' तक के रचनाकाल से 55 कविताएँ चुनी गई हैं। इनमें से 20 कविताएँ उनके प्रथम कविता-संग्रह 'लौह कथा' व 25 कविता दूसरे कविता-संग्रह 'उड्डदे बाजाँ मगर' से चुनी गई हैं। 10 अन्य कविताएँ इस बीच पत्र-पत्रिकाओं में छपी कविताओं से चुनी गई हैं, जो उनकी शहादत के बाद प्रकाशित 'लड़ांगे साथी' नामक संकलन में शामिल की गई हैं। 1974 से 78 के बीच लिखी कविताएँ 'साडे समियाँ विच' संकलन में संकलित हैं, जिससे 22 कविताएँ चुनी गई हैं। 1978-88 के बीच पाश ने बहुत कम लिखा, लेकिन समकालीन पंजाब की स्थिति पर उनके द्वारा लिखी गई चार कविताएं जिनमें उनकी प्रसिद्ध कविता 'सबसे खतरनाक' भी शामिल है, इस संग्रह में संकलित है। आतंकवादियों ने 23 मार्च, 1988 को पाश की हत्या कर दी। उनकी मृत्यु के एक वर्ष से भी कम समय में प्रो. चमनलाल ने इस संग्रह की परिकल्पना को अमली जामा पहनाया जिससे राष्ट्रीय स्तर पर लोग पाश की कविताओं के परिचित हो सकें।

प्रसिद्ध साहित्यकार और आलोचक नामवर सिंह ने पाश को 'पंजाबी का लोर्का' कहा। फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का, स्पेन के जनकवि थे जिनके बारे में कहा जाता है कि जब उसकी कविता 'एक बुलफाइटर की मौत पर शोकगीत' का टेप जनरल फ्रैंको को सुनाया गया, तो जनरल ने आदेश दिया था कि यह आवाज़ बंद होनी चाहिए। जनरल फ्रैंको स्पेन के तानाशाह थे। उनके आदेश पर लोर्का को गिरफ्तार कर लिया गया। 19 अगस्त 1936 को सैनिक लोर्का को एक कब्रिस्तान के पास ले गए। सिपाहियों ने बन्दूकों की बटों से मार कर उन्हें नीचे गिरा दिया और इसके बाद उनके शरीर को गोलियों से भून दिया गया। उसकी सारी किताबें ग्रानादा के सार्वजनिक चौक पर जला दी गईं और स्पेन में उनकी किताबें पढ़ने या अपने पास रखने पर बैन लगा दिया गया। मृत्यु के समय लोर्का की उम्र महज 38 वर्ष की थी। फासिस्ट ताकतों के खिलाफ़ उठती कोई आवाज़ न तब बर्दाश्त की गई और न ही पाश के समय। नामवर सिंह पूछते

हैं क्या पाश के हत्यारों ने भी लोर्का की कोई कविता पढ़ी थी ? खासतौर से वह कविता जिसका शीर्षक है 'धर्म दीक्षा के लिए विनयपत्र', जिसमें एक माँ धर्मगुरु से प्रार्थना के स्वर में कहती है:
मेरा एक ही बेटा है धर्म गुरु
मर्द बेचारा सिर पर नहीं रहा!

यह धर्मभीरु माँ स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करती है "किसी भी उम्र में तेरी तलवार से मैं कम ही सुंदर रही हूँ" और शपथ लेती है कि "मैं तेरी आस्तिक गोली की पूजा करूँगी" और प्रार्थना इस तरह स्वीकार होती है कि वह "आस्तिक गोली" बेटे को जल्द ही स्वर्ग भेज देती है! फासिज़्म के पास हर चीज का जवाब सिर्फ एक है-गोली ! वह चीज शोकगीत हो या प्रार्थना ! पाश ने भी माना कि शोषितों के हक़ में आवाज़ उठाना खतरनाक है। उन्होंने लिखा –
यह वक़्त बहुत अधिक खतरनाक है साथी.
हम सब खतरा हैं उनके लिए
जिन्हें दुनिया में बस ख़तरा-ही-खतरा है।

और कविता के अंत में पुलिस से पूछते हैं –
अरे पुलसिए बता, मैं तुझे भी
इतना खतरनाक दिखता हूँ?

और सत्ता द्वारा संचालित पुलिस को तो पाश खतरनाक लगने ही थे जिन्होंने लिखा
कविता बहुत ही शक्तिहीन हो गई है
जबकि हथियारों के नाखून बुरी तरह बढ़ आए हैं
और अब हर तरह की कविता से पहले
हथियारों से युद्ध करना बहुत जरूरी हो गया है।

संघर्ष की बात करते हुए एक कविता में पाश ने लिखा –
लोहे ने बड़ी देर इतंज़ार किया है
कि लोहे पर निर्भर लोग
लोहे की पत्तियाँ खाकर
ख़ुदकुशी करना छोड़ दें

मशीनों में फँसकर फूस की तरह उड़ने वाले

लावारिसों की बीवियाँ
लोहे की कुर्सियों पर बैठे वारिसों के पास
कपड़े तक ख़ुद उतारने के लिए मजबूर न हों

लेकिन आख़िर लोहे को
पिस्तौलों, बंदूक़ों और बमों की
शक्ल लेनी पड़ी है

आप लोहे की चमक में चुंधियाकर
अपनी बेटी को बीवी समझ सकते हैं,
(लेकिन) मैं लोहे की आँख से
दोस्तों के मुखौटे पहने दुश्मन
भी पहचान सकता हूँ
क्योंकि मैंने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो।

पाश को अहसास था कि उनकी कविताओं का असर क्या होगा। उन्होंने एक कविता में लिखा "और सुना है मेरा कत्ल भी इतिहास के आने वाले पन्ने पर अंकित है।" पाश की भी उम्मीदें थीं, पाश ने भी किसी आम युवक की तरह सपने सँजोए थे, लेकिन हकीकत से रूबरू होने के बाद, उन सपनों को जीना संभव नहीं हो सका। पाश ने लिखा –

मैं-जो सिर्फ एक आदमी बनना चाहता था
ये क्या बना दिया गया हूँ।

पाश कुछ ऐसा नहीं मांग रहे थे जो, अतार्किक हो। उनकी अपेक्षाएं बस इतनी थीं कि जो भी मिले वह सच में मिले न कि कोरे वायदों में या बस कागजों में। पाश ने लिखा –

हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
जिस तरह हमारे बाजुओं में मछलियाँ हैं,
जिस तरह बैलों की पीठ पर उभरे
सोटियों के निशान हैं,
जिस तरह कर्ज़ के काग़ज़ों में

हमारा सहमा और सिकुड़ा भविष्य है
हम ज़िन्दगी, बराबरी या कुछ भी और
इसी तरह सचमुच का चाहते हैं
हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
और हम सब कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं
ज़िन्दगी, समाजवाद, या कुछ भी और..

जब इतनी सी भी चाह पूरी न हो सके और आवाज़ उठाने तक की भी आज़ादी न हो, तब पाश ने लिखा –

सबसे ख़तरनाक होता है मुर्दा शांति से भर जाना
तड़प का न होना
सब कुछ सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर आना
सबसे ख़तरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना
सबसे ख़तरनाक वो घड़ी होती है
आपकी कलाई पर चलती हुई भी जो
आपकी नज़र में रुकी होती है

पाश आवाज़ उठाने की कीमत जानते थे। अपनी कविता 'अब विदा लेता हूँ' में उन्होंने लिखा "अब विदा लेता हूँ/ मेरी दोस्त, मैं अब विदा लेता हूँ/ मैंने एक कविता लिखनी चाही थी/ सारी उम्र जिसे तुम पढ़ती रह सकतीं"। और इस कविता के अंत में उन्होंने लिखा "तू यह सभी भूल जाना मेरी दोस्त/ सिवा इसके कि मुझे जीने की बहुत इच्छा थी/ कि मैं गले तक ज़िन्दगी में डूबना चाहता था/ मेरे भी हिस्से का जी लेना/ मेरी दोस्त मेरे भी हिस्से का जी लेना"। मात्र 38 वर्ष की उम्र में आतंकवादियों ने पाश को गोली मारकर यह साबित कर दिया कि पाश की आवाज उनके कानों में किस तरह चुभ रही थी।

इस इकाई में हम 'बीच का रास्ता नहीं होता' संग्रह से, पाश की चुनी हुई पाँच कविताओं का विवेचन करेंगे जिनसे हम समझ सकेंगे कि पाश की पंजाबी कविताओं में मजदूरों के प्रति जो संवेदना है, सामंतों के प्रति जो गुस्सा है वह हिंदी में इन्हीं विषयों पर लिखी जाने वाली

कविताओं से भिन्न नहीं है और यही पाश को 'पंजाबी कवि' की बजाय 'राष्ट्रीय कवि' या 'वैश्विक कवि' बनाती है।

**बोध प्रश्न**

- 'बीच का रास्ता नहीं होता' के संपादक-अनुवादक कौन हैं?
- 'बीच का रास्ता नहीं होता' संग्रह में पाश की कितनी कविताएं संकलित हैं?
- आलोचक नामवर सिंह ने पाश को किस संबोधन से याद किया?
- पाश की मृत्यु कब और कैसे हुई?
- फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का और पाश में क्या समानता है?

### 13.3.3 'मेरी माँ की आँखें' कविता

जब एक लड़की ने मुझसे कहा –
मैं बहुत सुंदर हूँ
तो मुझे उसकी आँखों में दोष लगा था

मेरी जानिब तो वे सुंदर थे
जो मेरे गाँव में वोट मांगने
या उद्घाटन की रस्म के लिए आते हैं

एक दिन
जट्टू की दुकान से मुझे सूँघ मिली
कि उनके सिर का सुनहरी ताज चोरी का है
मैंने उसी दिन गाँव छोड़ दिया
मेरा विश्वास था कि यदि ताजों वाले चोर हैं
तो फिर सुंदर कोई और है....

शहरों में जगह-जगह मैंने असुंदरता देखी
प्रकाशन-गृहों में, कॉफी हाऊसों में
दफ़्तरों और थानों में –
और मैंने देखा, असुंदरता की यह नदी
दिल्ली के गोल पर्वत से रिसती है
और उस गोल पर्वत में सुराख करने के लिए

मैं असुंदरता में घुसा
असुंदरता के साथ लड़ा
और कई लहू-लुहान वर्षों में से गुजरा
और अब मैं चेहरे पर युद्ध के निशान लेकर
दो पल के लिए गाँव आया हूँ
और वही चालीस वर्ष की लड़की
अपने लाल को बदसूरत कहती है
और मुझे फिर उसकी आँखों में दोष लगता है।

पाश अपनी कविताओं में मजदूर वर्ग के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं के लिए जाने जाते हैं। 'मेरी माँ की आँखें' कविता राजनीति और समाज के गिरते स्तर पर कटाक्ष है। होना तो यह था कि राजनीति देश सेवा के लिए की जानी थी इसलिए कवि कहता है कि 'मेरी जानिब तो वे सुंदर थे / जो मेरे गाँव में वोट मांगने /या उद्घाटन की रस्म के लिए आते हैं"। यहाँ सुंदरता से अभिप्राय सुचिता से है, अच्छे कर्म से है, परोपकार से है। लेकिन जब यह भ्रम टूटता है, तब तकलीफ होती है। पाश लिखते हैं "एक दिन / जट्टू की दुकान से मुझे सूँघ मिली / कि उनके सिर का सुनहरी ताज चोरी का है / मैंने उसी दिन गाँव छोड़ दिया / मेरा विश्वास था कि यदि ताजों वाले चोर हैं / तो फिर सुंदर कोई और है...."।

पाश की कविताओं में एक विशेषता बिंब चयन भी है। कठिन समय में सच कहना और सच के पक्ष में खड़े नज़र आना आसान नहीं होता। पाश इस कविता में ईमानदार और भ्रष्टाचारी कहने से बचते हैं, इसके लिए उन्होंने सुंदर और असुंदर शब्दों का प्रयोग किया। दुष्यंत ने भी जब आपातकाल के दौरान एक ग़ज़ल में 'गुड़िया' और 'बूढ़ा आदमी' जैसे प्रतीक इस्तेमाल किए तब उन्हें भी सरकारी सवालों का सामना करना पड़ा। "एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है/ आज शायर यह तमाशा देखकर हैरान है/एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो/ इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है/ कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए/ मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है/ मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं/ हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।"

पाश अपनी कविता में कहते हैं कि गाँव में जिस भ्रष्टाचार की बात सुन कर मैं भागा था, शहर में मुझे उसकी व्यापकता का अनुभव हुआ – "शहरों में जगह-जगह मैंने असुंदरता देखी / प्रकाशन-गृहों में, कॉफी हाऊसों में / दफ़्तरों और थानों में"। संसद के लिए 'गोल पर्वत' शब्द का इस्तेमाल

करते हुए पाश कहते हैं कि तमाम भ्रष्टाचारों का गढ़ यही 'गोल पर्वत' है – "और मैंने देखा, असुंदरता की यह नदी / दिल्ली के गोल पर्वत से रिसती है / और उस गोल पर्वत में सुराख करने के लिए / मैं असुंदरता में घुसा / असुंदरता के साथ लड़ा / और कई लहू-लुहान वर्षों में से गुजरा"। अव्यवस्था के खिलाफ़ तमाम जद्दोजहद के बाद जब एक लड़की अपने गरीब बेटे को 'असुंदर' कहती है तब पाश को उनकी आँखों में दोष नज़र आता है क्योंकि हमारा समाज अभी भी इस 'सुंदर' और 'असुंदर' की पहचान नहीं कर पाया है। हमारा समाज आज भी उसी छलावे में जी रहा है जिसकी बात करते हुए पाश ने लिखा "मेरी जानिब तो वे सुंदर थे / जो मेरे गाँव में वोट मांगने / या उद्घाटन की रस्म के लिए आते हैं"।

**बोध प्रश्न**

- पाश की कविता 'मेरी माँ की आँखें' के अनुसार सुंदर कौन हैं?
- कविता में किनके सिर का सुनहरी ताज चोरी का है?
- पाश की कविता 'मेरी माँ की आँखें' में असुंदरता से क्या अभिप्राय है?
- कविता में 'दिल्ली के गोल पर्वत' से क्या अभिप्राय है?

### 13.3.4 'भारत' कविता

भारत --
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाक़ी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते है

इस शब्द के अर्थ
खेतों के उन बेटों में है
जो आज भी वृक्षों की परछाइओं से
वक़्त मापते हैं
उनके पास, सिवाय पेट के, कोई समस्या नहीं
और वह भूख लगने पर
अपने अंग भी चबा सकते हैं
उनके लिए ज़िन्दगी एक परम्परा है
और मौत का अर्थ है मुक्ति
जब भी कोई समूचे भारत की
'राष्ट्रीय एकता' की बात करता है

तो मेरा दिल चाहता है --
उसकी टोपी हवा में उछाल दूँ
उसे बताऊँ
के भारत के अर्थ
किसी दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं
वरन खेत में दायर है
जहाँ अन्न उगता है

जहाँ सेंध लगती है
अपनी असुरक्षा से
देश की सुरक्षा यही होती है
कि बिना जमीर होना ज़िन्दगी के लिए शर्त बन जाए
आँख की पुतली में हाँ के सिवाय कोई भी शब्द
अश्लील हो
और मन बदकार पलों के सामने दण्डवत झुका रहे
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है ।

हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़
जिसमें उमस नहीं होती
आदमी बरसते मेंह की गूँज की तरह गलियों में बहता है
गेहूँ की बालियों की तरह खेतों में झूमता है
और आसमान की विशालता को अर्थ देता है

हम तो देश को समझे थे आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम
हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा
हम तो देश को समझते थे कुरबानी-सी वफ़ा

लेकिन गर देश
आत्मा की बेगार का कोई कारख़ाना है
गर देश उल्लू बनने की प्रयोगशाला है
तो हमें उससे ख़तरा है

गर देश का अमन ऐसा होता है
कि कर्ज़ के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह
टूटता रहे अस्तित्व हमारा
और तनख़्वाहों के मुँह पर थूकती रहे
क़ीमतों की बेशर्म हँसी
कि अपने रक्त में नहाना ही तीर्थ का पुण्य हो
तो हमें अमन से ख़तरा है

गर देश की सुरक्षा को कुचल कर अमन को रंग चढ़ेगा
कि वीरता बस सरहदों पर मर कर परवान चढ़ेगी
कला का फूल बस राजा की खिड़की में ही खिलेगा
अक़्ल, हुक्म के कुएँ पर रहट की तरह ही धरती सींचेगी
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है

'भारत' कविता पाश के प्रथम काव्य संग्रह 'लौह कथा' की पहली कविता है। यह कविता पाश की 'विचारधारा' और 'देश का उनके लिए अर्थ' को प्रभावी ढंग से चित्रित करती है। स्वतंत्रता से पहले जितनी भी  कविताएं देशभक्ति की भावना के साथ लिखी गईं, उनमें आज़ादी की कामना प्रमुख रही। लेकिन आज़ादी मिल जाने के बाद, देश प्रेम के अर्थ बदले। देश का अर्थ सिर्फ भौगोलिक सीमा तक सीमित नहीं रह गया। देश का अर्थ, उसमें रहने वाले लोग, उनकी सामाजिक/आर्थिक स्थिति और देश की प्रगति में उनकी सहभागिता को समेटे बिना पूरा नहीं हो सकता। आज़ादी के बाद राष्ट्रीय स्तर पर कई कवियों ने अपनी कविताओं में इस बात पर निराशा जताई है कि जिस आज़ादी की कल्पना उन्होंने की थी, यह वो आज़ादी नहीं है। आज़ादी का अर्थ सिर्फ सत्ता परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि शासन बदले, लेकिन आम जनता की समस्याएं वैसी ही रहें, तो ऐसी आज़ादी पर सवाल उठना लाज़िम है। पाश की यह कविता दर्शाती है कि हिंदी में जिस तरह की सोच कवियों की 'नये भारत' के लिए थी, पंजाबी में कविता लिख रहे 'पाश' भी बहुजन समाज के साथ उसी सोच के साथ खड़े थे।

"भारत --/ मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द/ जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए/ बाक़ी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते है" लिख कर पाश, देश से अपने प्रेम को स्पष्ट कर देते हैं। लेकिन साथ ही पाश भारत के लिए यह भी स्पष्ट करते हैं कि "इस शब्द के अर्थ / खेतों के उन बेटों में है/ जो आज भी वृक्षों की परछाइयों से /वक़्त मापते हैं/ उनके पास, सिवाय पेट के, कोई समस्या

नहीं/ और वह भूख लगने पर/ अपने अंग भी चबा सकते हैं/ उनके लिए ज़िन्दगी एक परम्परा है/ और मौत का अर्थ है मुक्ति।" पाश भारत की एकता को सिर्फ इसलिए महत्वपूर्ण मानने से इनकार करते हैं कि यह नाम दुष्यंत के बेटे भरत के नाम पर रखा गया। पाश के लिए राष्ट्रीय एकता इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहाँ के किसान, मजदूर, शोषित वर्ग एक सी समस्याओं से जूझ रहे हैं और उनकी आवाज़ एक है। 'लौह कथा' की ही एक और कविता 'अब मेरा हक़ बनता है' में पाश लिखते हैं 'मैंने टिकट खरीदकर / आपके लोकतंत्र का नाटक देखा है/ अब तो मेरा प्रेक्षागृह में बैठकर / हाय-हाय करने और चीखें मारने का/ हक़ बनता है।' पाश सत्ता में खानदान और परिवारवाद के खिलाफ़ मुखर रहे। यही वजह है कि न तो उन्हें दुष्यंत के पुत्र होने की वजह से 'भारत' कहा जाना पसंद आया और न ही वर्तमान व्यवस्था में परिवार केंद्रित राजनीति। 1984 के सिख विरोधी दंगों के बाद पाश ने 'बेदखली के लिए विनयपत्र' कविता लिखी, जिसमें उन्होंने राजनीति के गिरते स्तर की वजह से इस देश की नागरिकता से बेदखल किए जाने की बात की। "मैंने उम्रभर उसके खिलाफ सोचा और लिखा है /अगर उसके अफसोस में पूरा देश ही शामिल है /तो इस देश से मेरा नाम खारिज कर दें .../ ... इसका जो भी नाम है – गुंडों की सल्तनत का/ मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूं/ मैं उस पायलट की चालाक आंखों में/ चुभता हुआ भारत हूं/ हां, मैं भारत हूं चुभता हुआ उसकी आंखों में/ अगर उसका अपना कोई खानदानी भारत है/ तो मेरा नाम उसमें से अभी खारिज कर दो।"

देश का अर्थ पाश के लिए क्या है, 'भारत' कविता की इन पंक्तियों से समझ जा सकता है "हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़/ जिसमें उमस नहीं होती/ हम तो देश को समझे थे आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम/ हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा/ हम तो देश को समझते थे कुरबानी-सी वफ़ा"। लेकिन यदि देश ऐसा बन जाए जहाँ 'बिना जमीर होना ज़िन्दगी के लिए शर्त बन जाए', जहाँ 'आँख की पुतली में हाँ के सिवाय कोई भी शब्द अश्लील हो', जहाँ 'मन बदकार पलों के सामने दण्डवत झुका रहे', जहाँ देश 'आत्मा की बेगार का कारख़ाना' बन जाए, जहाँ देश में अमन बनाए रखने के लिए 'कर्ज़ के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह टूटता रहे अस्तित्व हमारा', जहाँ 'तनख़्वाहों के मुँह पर थूकती रहे क़ीमतों की बेशर्म हँसी' तो ऐसे देश पर सवाल उठाना लाज़िम है।

पाश 'लौह कथा' संग्रह की ही एक कविता 'देशभक्त' में इस देश से अपने प्यार का इजहार कुछ यूँ करते हैं। 'चाँद जब गोवा के रंगीन तटों पर / या कश्मीर की जीवत वादी में /

चारों तरफ सुस्ताया पड़ा होता है/ तब वे पल होते हैं/ जब मैं ऊँचे हिमालय वाली / अपनी पितृभूमि पर बहुत मान करता हूँ/ जिसने हम पहाड़ी पत्थरों जैसे अगणित लोगों को पैदा किया/ और पत्थरों की तरह ही जीने के लिए छोड़ दिया/ और तब मुझे वह ढिठाई / जिसका नाम जिंदगी है/ रूठी हुई प्रेमिका की तरह लगती है/ और मुझे लाज आती है/ कि मैं घोंघे की तरह बंद हूँ/ जबकि मुझे अमीबा की तरह फैलना चाहिए।" इस कविताओं के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पाश को अपने देश से प्रेम है लेकिन देश में राजनीति की संकीर्णता, गरीबों की उपेक्षा, अमीरी-गरीबी के बीच बढ़ती खाई आदि ऐसे विषय हैं जहाँ पाश की कविता में विद्रोह का स्वर मुखर होता है और यही वजह है कि पाश पंजाबी में कविता लिखते हुए भी, भारत वर्ष के सभी मजदूरों, वंचितों, शोषितों की आवाज बन जाते हैं और उनकी कविताओं को राष्ट्रीय स्वीकार्यता मिलती है।

**बोध प्रश्न**

- किस शब्द के प्रयोग के आगे बाकी सारे शब्द अर्थहीन हो जाते हैं?
- पाश क्यों कहते हैं 'भारत के अर्थ किसी दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं'?
- पाश के अनुसार किस सूरत में 'हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है'?
- पाश के अनुसार हमें किस तरह के देश से खतरा है?

### 13.3.5 'हम लड़ेंगे साथी' कविता

हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए
हम लड़ेंगे साथी, ग़ुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी, ज़िन्दगी के टुकड़े

हथौड़ा अब भी चलता है, उदास निहाई पर
हल की लीकें अब भी बनती हैं, चीख़ती धरती पर
यह काम हमारा नहीं बनता, सवाल नाचता है
सवाल के कन्धों पर चढ़कर
हम लड़ेंगे साथी

क़त्ल हुए जज़्बों की क़सम खाकर
बुझी हुई नज़रों की क़सम खाकर

हाथों पर पड़ी गाँठों की क़सम खाकर
हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे तब तक
जब तक वीरू बकरिहा
बकरियों का पेशाब पीता है
खिले हुए सरसों के फूल को
जब तक बोने वाले ख़ुद नहीं सूँघते
कि सूजी आँखों वाली
गाँव की अध्यापिका का पति जब तक
युद्ध से लौट नहीं आता

जब तक पुलिस के सिपाही
अपने भाइयों का गला घोंटने को मज़बूर हैं
कि दफ़्तरों के बाबू
जब तक लिखते हैं लहू से अक्षर
हम लड़ेंगे जब तक
दुनिया में लड़ने की ज़रूरत बाक़ी है

जब बन्दूक न हुई, तब तलवार होगी
जब तलवार न हुई, लड़ने की लगन होगी
लड़ने का ढंग न हुआ, लड़ने की ज़रूरत होगी
और हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे
कि लड़े बग़ैर कुछ नहीं मिलता
हम लड़ेंगे
कि अब तक लड़े क्यों नहीं
हम लड़ेंगे
अपनी सज़ा कबूलने के लिए
लड़ते हुए मर जाने वाले की
याद ज़िन्दा रखने के लिए
हम लड़ेंगे

पाश की सबसे प्रसिद्ध कविताओं में से एक है 'हम लड़ेंगे साथी'। इस कविता में पाश हर स्थिति में तब तक संघर्ष करने का प्रण लेते हैं, जब तक दुनिया में लड़ने की जरूरत शेष है। पाश की इस कविता का न जाने कितनी ही भाषाओं में अनुवाद हुआ और हर भाषा में इस कविता को न केवल सराहा गया बल्कि पाश इस कविता के माध्यम से एक ऐसे कवि बन गए जिन्हें पंजाबी से इतर भाषा बोलने वालों ने भी बराबर प्यार दिया। पाश की शहादत के बाद प्रकाशित हुए उनके काव्य संग्रह का नाम भी इसी कविता के शीर्षक से लिया गया। संग्रह का नाम था 'लड़ाँगे साथी' (पंजाबी), लड़ेंगे साथी (हिंदी)।

पाश मार्क्सवाद से प्रभावित रहे। नक्सल आंदोलन ने भी उन्हें प्रभावित किया। भगत सिंह उनके आदर्श रहे, और लेनिन, भगत सिंह के। ऐसे में पाश की कविताओं में आम जन की पीड़ा और अपने हक़ के लिए आवाज उठाने की भावना को जगह मिलना ही था। पाश उन कवियों में नहीं रहे जिन्होंने बस अपनी भावनाओं को अपनी कविता में जगह दी। पाश गिरफ्तार हुए, दो सालों तक जेल में अमानवीय यातनाएं झेलीं, खालिस्तानी आंदोलन का विरोध अमेरिका और भारत से करते रहे और अंततः खालिस्तानी आंदोलन का विरोध करने की वजह से उन्हें जान से हाथ धोना पड़ा।

इस कविता में 'हम चुनेंगे साथी, ज़िन्दगी के टुकड़े' लिख कर पाश यह जता देते हैं कि यह लड़ाई सकारात्मक है। यह लड़ाई अपनी अस्मिता के लिए है। जब तक किसी मजदूर को अपनी इज्जत पाने या बचाने लिए जद्दोजहद करने की जरूरत है, तब तक लड़ने की जरूरत भी रहेगी। जब तक खेती करने वाले किसान को खेत का मालिकाना हक़ नहीं मिलता, लड़ने की आवश्यकता बनी रहेगी। जब तक अमीर देशों द्वारा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए युद्ध थोपे जाते रहेंगे, जिनमें न जाने कितने मासूमों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी, लड़ाई टाली नहीं जा सकती। जब शासन अपनी सत्ता बचाए रखने के लिए, अपने ही नागरिकों को एक दूसरे से लड़वाए तो ऐसे शासन के खिलाफ़ लड़ाई होनी ही चाहिए।

जब सामने एक मजबूत और दमनकारी तंत्र हो तब शोषितों द्वारा लड़ाई जारी रख पाना आसान नहीं होता। लेकिन यदि लड़ाई का हौसला हो तब आवाज़ दबाई नहीं जा सकती। पाश लिखते हैं "जब बन्दूक न हुई, तब तलवार होगी / जब तलवार न हुई, लड़ने की लगन होगी / लड़ने का ढंग न हुआ, लड़ने की ज़रूरत होगी /और हम लड़ेंगे साथी"। इस कविता की अंतिम कुछ पंक्तियों में लड़ाई की आवश्यकता, अब तक अपनी आवाज़ नहीं उठा पाने का क्षोभ और लड़ाई का मकसद; सब कुछ है। पाश लिखते हैं "हम लड़ेंगे/ कि लड़े बग़ैर कुछ नहीं मिलता/ हम

लड़ेंगे/ कि अब तक लड़े क्यों नहीं/ हम लड़ेंगे/ अपनी सज़ा कबूलने के लिए/ लड़ते हुए मर जाने वाले की/ याद ज़िन्दा रखने के लिए/ हम लड़ेंगे"।

**बोध प्रश्न**

- पाश के अनुसार लड़ने की आवश्यकता क्यों है?
- "खिले हुए सरसों के फूल को /जब तक बोने वाले खुद नहीं सूँघते" से पाश का क्या अभिप्राय है?
- "हम लड़ेंगे जब तक/ दुनिया में लड़ने की ज़रूरत बाक़ी है" लड़ाई के लिए पाश किस तरह की जरूरत की बात करते हैं?

### 13.3.6 'रिहाई : एक प्रभाव' कविता

आप जब बाहर आते हैं
तब पुनः घुटनों चलना तो सीखना नहीं पड़ता
जबान तोतली नहीं होती
न माँ के दूध की ही तलब होती है

आप आसमान पर लिखे नामों में
अपना नाम ढूंढते हैं
हवा तसदीक करती है
और पौधे जश्न मनाते हैं –
ऐसे शुरू होता है, जिंदगी का अमल फिर से...
फिर वही संघर्ष की कथा, आत्मा को बहलाने के लिए
फिर वही जनता का जंगल, खो जाने के लिए
फिर वही जीत की उम्मीद....
ऐसे शुरू होता है
जिंदगी का अमल फिर से

पाश ने बचपन से ही कविता लिखने की शुरुआत कर दी थी, 1967 में उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई। पंजाब में उन दिनों क्रांतिकारी संघर्ष चरम पर था। अमरजीत चंदन के संपादन में एक पत्रिका 'दस्तावेज' का प्रकाशन चोरी-छुपे किया जा रहा था। इस पत्रिका के चौथे अंक में पाश के परिचय के साथ उनकी कविता छपी और देखते ही देखते पाश प्रसिद्ध हो गए। इसके बाद क्रांति और संघर्ष से जुड़ी कई कविताएं पाश ने लिखीं। नतीजा यह रहा कि पाश

गिरफ़्तार कर लिए गए। उन्हें दो साल की सजा हुई। उन्हें इस दौरान कई तरह की शारीरिक यातनाएं दी गईं। लेकिन इन सबसे पाश का मनोबल नहीं टूटा। जेल में भी उन्होंने कई कविताएं लिखीं। जेल में रहते ही उनका पहला काव्य संग्रह 'लौह कथा' प्रकाशित हुआ और जेल से छूटने के बाद 1974 में उनका दूसरा कविता संग्रह 'उडडदे बाजा मगर'।

'उडडदे बाजा मगर' संग्रह में ही उनकी कविता 'रिहाई :एक प्रभाव' शामिल है जो जेल से छूटने के बाद की स्थिति का वर्णन करती है। शारीरिक यातनाओं के बाद भी पाश अपनी विचारधारा से समझौता नहीं करते। पाश लिखते हैं 'आप जब बाहर आते हैं / तब पुनः घुटनों चलना तो सीखना नहीं पड़ता / जबान तोतली नहीं होती / न माँ के दूध की ही तलब होती है"। यानी बाहर आने के बाद आप एक नई शुरुआत नहीं करते बल्कि उस काम को आगे बढ़ाते हैं जिसे आपने शुरू किया था। पाश के लिए संघर्ष का साथ देना स्वांतः सुखाय है इसलिए वह किसी और से इसके लिए समर्थन की उम्मीद भी नहीं करते। 'आप आसमान पर लिखे नामों में / अपना नाम ढूंढते हैं / हवा तसदीक करती है /और पौधे जश्न मनाते हैं – / ऐसे शुरू होता है, जिंदगी का अमल फिर से...'।

इस कविता के अंत में पाश स्पष्ट कर देते हैं कि उनके लिए विचारधारा में बदलाव संभव नहीं। संघर्ष उनके लिए 'जिंदगी का अमल' है जिससे छुटकारा पाना संभव नहीं। 'फिर वही संघर्ष की कथा, आत्मा को बहलाने के लिए / फिर वही जनता का जंगल, खो जाने के लिए / फिर वही जीत की उम्मीद..../ ऐसे शुरू होता है / जिंदगी का अमल फिर से'।

**बोध प्रश्न**

- पाश की पहली कविता किस वर्ष प्रकाशित हुई?
- अमरजीत चंदन के संपादन में पंजाब से किस पत्रिका का सम्पादन चोरी-छुपे किया जा रहा था?
- 'उडडदे बाजा मगर' काव्य संग्रह किस वर्ष प्रकाशित हुआ?
- "आप जब बाहर आते हैं / तब पुनः घुटनों चलना तो सीखना नहीं पड़ता" पाश ने किस संदर्भ में यह पंक्ति लिखी है?

### 13.3.7 'घास' कविता

मैं घास हूँ
मैं आपके हर किए-धरे पर उग आऊँगा

बम फेंक दो चाहे विश्‍वविद्यालय पर

बना दो होस्टल को मलबे का ढेर
सुहागा फिरा दो भले ही हमारी झोपड़ियों पर

मेरा क्या करोगे
मैं तो घास हूँ हर चीज़ पर उग आऊँगा

बंगे को ढेर कर दो
संगरूर मिटा डालो
धूल में मिला दो लुधियाना ज़िला
मेरी हरियाली अपना काम करेगी...
दो साल... दस साल बाद
सवारियाँ फिर किसी कंडक्टर से पूछेंगी
यह कौन-सी जगह है
मुझे बरनाला उतार देना
जहाँ हरे घास का जंगल है

मैं घास हूँ, मैं अपना काम करूँगा
मैं आपके हर किए-धरे पर उग आऊँगा ।

पाश ने जब कविता लिखनी शुरू की उस समय देश नक्सलवाद और आतंकवाद से जूझ रहा था। पंजाब में खालिस्तान आंदोलन भी जोर पकड़ रहा था। पाश भी वामपंथ विचारधारा से प्रभावित हुए लेकिन उनका विश्वास जन-आंदोलन चलाने में था न कि हिंसात्मक आंदोलन में। सरकार समर्थित हिंसा हो या नक्सलियों द्वारा निर्दोष नागरिकों की हत्या, पाश इन दोनों के खिलाफ रहे। 'घास' उनकी बहुत ही प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कविता है जिसमें पाश ने आम जनता की आवाज उठाई है। कविता में पाश लिखते हैं कि दमन की कार्रवाई से कुछ देर तक तो जनता की आवाज़ दबाई जा सकती है लेकिन यदि उन्हें न्याय नहीं मिला तो एक घास की तरह वे फिर अपना सर उठाएंगे, उन्हें दबाने की तमाम कोशिशें बेकार साबित होंगी।

कविता में पाश पंजाब के अलग-अलग शहरों जैसे बंगे, संगरूर, लुधियाना, बरनाला आदि का जिक्र करते हुए इन स्थानों पर हुई हिंसा का विरोध करते हैं। यह कविता आम आदमी को साहस देती है, उनमें उत्साह जगाती है, दमन के खिलाफ़ हार न मानने का आह्वान करती है और शासन को चेतावनी देती है कि आम आदमी की आवाज ज्यादा देर तक दबाई नहीं जा सकती।

आम आदमी की बात करते हुए 'घास' का बिंब के रूप में प्रयोग हिंदी में भी होता रहा है। 'घास' शीर्षक से ही कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं "आदमी के जनतंत्र में/ घास के सवाल पर/ होनी चाहिए लंबी एक अखंड बहस/ पर जब तक वह न हो/ शुरुआत के तौर पर मैं घोषित करता हूं/ कि अगले चुनाव में/ मैं घास के पक्ष में/ मतदान करूंगा/ कोई चुने या न चुने/ एक छोटी सी पत्ती का बैनर उठाए हुए/ वह तो हमेशा मैदान में है।/ कभी भी.../ कहीं से भी उग आने की/ एक जिद है वह"। 'घास' शीर्षक से ही कवि नरेश सक्सेना ने लिखा "सारी दुनिया को था जिनके कब्ज़े का अहसास/ उनके पते ठिकानों तक पर फैल चुकी है घास/ धरती भर भूगोल घास का तिनके भर इतिहास/ घास से पहले, घास यहाँ थी, बाद में होगी घास"।

पाश की कविताओं की विशेषता है कि पंजाबी भाषा में लिखे जाने के बाद भी उनके विषय व्यापक हैं। न सिर्फ भारत, बल्कि विश्व में कहीं भी दमन का दंश झेलता हुआ आदमी उनकी कविताओं में अपनत्व पा सकता है। मिट्टी कहीं की भी हो, घास की प्रकृति, उसका स्वभाव और उसकी ज़िद एक जैसी ही होती है।

**बोध प्रश्न**

- पाश ने इस कविता में घास का प्रयोग किसके लिए किया है?
- केदारनाथ सिंह द्वारा लिखी कविता 'घास' में वह चुनाव में किसके पक्ष में मतदान की बात करते हैं?
- नरेश सक्सेना की पंक्ति 'धरती भर भूगोल घास का तिनके भर इतिहास' से क्या अभिप्राय है?

## 13.4 पाठ सार

पाश ने अपनी कविताओं के माध्यम से देश-विदेश के उन सभी लोगों के मन में जगह बनाई जो मानवता के पक्षधर हैं। पाश की कविताओं में रुई सी कोमलता है, बर्फ़ सा ठंढापन है, आग सी गर्मी है और लोहे सी कठोरता। एक ऐसी जिंदगी जो हर मनुष्य का हक़ होना चाहिए, के लिए पाश आवाज़ उठाते रहे और इस की कीमत उन्हें मात्र 38 वर्ष की आयु में जीवन दे कर चुकानी पड़ी। प्रसिद्ध आलोचक शिव कुमार मिश्र ने पाश के लिए जो कहा उसे इस इकाई के सार रूप में लिया जा सकता है "पाश जिस फासिस्ट आतंकवादी जुनून तथा अंध धार्मिक उन्माद के शिकार हुए, उससे जाहिर होता है कि पाश की सोच का यह हिस्सा तथा उसके रचना कर्म का यह अंश अंध धार्मिक उन्मादियों को जरूर अखरा और चुभा होगा। पाश के मन में आज की जटिल राजनीतिक व्यवस्था तथा शासन-तंत्र की बदनीयती तथा धूर्तता, आक्रामकता तथा छद्म

के प्रति जो गुस्सा था, साधारण जन के हित में व्यवस्था के बदलाव की जो ख्वाहिश थी, व्यवस्था के अमानवीय ताम-झाम को छिन्न-भिन्न करने की चेष्टा थी, यह सब उसके रचना-कर्म का सकारात्मक पहलू है। आतंकवादी जुनून के चलते पाश की रचनात्मक संभावनाएँ आगे का समय नहीं देख पाईं, यह त्रासद एहसास हमें हमेशा रहेगा। उन्माद तथा अंधता की जिन शक्तियों ने पाश की हत्या की, सफदर की हत्या की, वे हमारे बीच अभी हैं-एक चुनौती के रूप में-और हमें उनसे टकराना-जूझना है-एक लंबी लड़ाई लड़नी है-यह सब हमारे संकल्प का हिस्सा है और रहेगा। पाश की अमानुषिक हत्या ने यह ज़रूर स्पष्ट कर दिया है कि अंधकार तथा उन्माद की ताकतों से युद्ध एक अनिवार्यता है और उसे जारी रहना चाहिए।“

## 13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. पाश ने 15 वर्ष की आयु से ही कविता लिखना शुरू किया और मार्क्सवाद की तरफ आकर्षित हुए।
2. पाश की कविताओं में मजदूर और शोषित वर्ग के लोगों को अपने हक़ के लिए आवाज उठाने और संघर्ष करने का आह्वान शामिल है।
3. पाश की रुचि विधिवत शिक्षा में भले ही कम रही हो लेकिन पाश ने हिंदी, अंग्रेजी और पंजाबी में कई किताबें पढ़ी। मार्क्सवाद से संबंधित कई किताबों का उन्होंने अध्ययन किया और इसका प्रभाव उनकी रचनाओं में दिखता है।
4. पाश की अधिकांश कविताएं ‘बीच का रास्ता नहीं होता’ संग्रह में संकलित हैं और यह संग्रह पाश के विचारों में विविधता, अपनी विचारधारा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और कविता में शिल्प/बिंब के अप्रतिम प्रयोग को दर्शाता है।
5. पाश खालिस्तान आंदोलन के खिलाफ़ मुखर रहे। अमेरिका जाकर भी लगातार इस आंदोलन के खिलाफ़ लिखते रहे और इसकी कीमत उन्हें अपना जीवन दे कर चुकानी पड़ी।

## 13.6 शब्द संपदा

1. चुनिंदा = चुना हुआ, उत्तम
2. स्वीकार्यता = वह बिंदु जिस तक किसी बात पर समाज के अधिकांश लोग सहमत या अनुमोदित होते हैं ।
3. बुनियादी = असली, मूलभूत

4. इल्हाम = दिव्य ज्ञान
5. हश्र = अंजाम, अंत
6. विसंगति = विरोधाभास
7. अतिशयोक्ति = किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना
8. परिपक्व = जिम्मेदार तरीके से व्यवहार करना
9. धर्मभीरु = धर्म से डरनेवाला।
10. अतार्किक = तर्कहीन।
11. प्रतिबद्धताओं = किसी विशेष कार्य या किसी वचन से बंधा होना
12. सुचिता = सुंदर, पवित्र, शुभ
13. प्रेक्षागृह = रंगशाला, थियेटर में वह स्थान जहाँ दर्शक लोग बैठकर अभिनय देखते हैं

## 13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

(1) **दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए**

1. प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने पाश को 'पंजाबी का लोर्का' क्यों कहा?
2. पाश के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3. पाश की कविता 'भारत' के संदर्भ में पाश के लिए देश का अर्थ क्या है?
4. 'हम लड़ेंगे साथी' कविता में पाश लड़ने का आह्वान क्यों करते हैं?
5. 'घास' कविता में पाश ने घास का प्रयोग किन अर्थों में किया है?
6. 'मेरी माँ की कविता' के संदर्भ में पाश के लिए 'सुंदरता' और 'असुंदरता' क्या है?

**खंड (ब)**

(2) **लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए**

1. 'रिहाई : एक प्रभाव' कविता का भावार्थ लिखें।
2. 'मेरी माँ की आँखें' कविता में पाश द्वारा लिखी गई पंक्ति 'और मैंने देखा, असुंदरता की यह नदी / दिल्ली के गोल पर्वत से रिसती है' की व्याख्या करें।
3. 'बीच का रास्ता नहीं होता' संग्रह की विशेषता बताएं।

4. 'भारत' कविता की पंक्ति 'भारत के अर्थ/ किसी दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं/ वरन खेत में दायर है/ जहाँ अन्न उगता है' की व्याख्या करें।
5. 'हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते' लिखते हुए पाश सच में क्या पाना चाहते हैं?

**खंड (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए -**

1. फ़ेदेरिको गार्सिया लोर्का किस देश के कवि थे

   (अ) फ्रांस (आ) स्पेन (इ) इटली (ई) जर्मनी

2. लंदन के पंजाबी साप्ताहिक _______________ के लिए पाश ने कुछ समय तक भारतीय प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया।

   (अ) देस परदेस (आ) यंग इंडिया (इ) भारत (ई) साडा मुल्क

3. किस प्रतीक का उपयोग करते हुए पाश ने लिखा 'मैं आपके हर किए-धरे पर उग आऊँगा'।

   (अ) दूब (आ) काँटा (इ) फूल (ई) घास

4. पाश की कविता संग्रह 'लौह कथा' की पहली कविता _____________ है।

   (अ) आँखें (आ) मेरी माँ की आँखें (इ) भारत (ई) देशभक्त

**II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -**

1. पाश का मूल नाम _____________________________ है।
2. पाश में अपना नाम ________________ के उपन्यास __________ के पात्र से प्रभावित हो कर रखा।
3. पाश के पहले प्रकाशित काव्य संग्रह का नाम ____________ है।
4. बीच का रास्ता नहीं होता संग्रह के संपादक और अनुवादक _______________ हैं।
5. पाश ने अमेरिका में हस्तलिखित पत्रिका ____________ का सम्पादन किया।
6. पाश की अंतिम प्रकाशित कविता ___________________________ है।
7. पाश की मृत्यु वर्ष ____________ में हुई।

**III. सुमेल कीजिए -**

| | | |
|---|---|---|
| 1. उड्ड्दे बाजाँ मगर | (अ). | वर्ष 1978 |
| 2. लड़ांगे साथी | (आ). | वर्ष 1988 |
| 3. लौह् कथा | (इ). | वर्ष 1989 |
| 4. बीच का रास्ता नहीं होता | (ई). | वर्ष 1970 |
| 5. साडे समियाँ विच | (उ). | वर्ष 1974 |

## 13.8 पठनीय पुस्तकें

1. बीच का रास्ता नहीं होता : पाश (अनुवाद – चमन लाल)
2. समय ओ भाई समय : पाश (अनुवाद : चमन लाल)
3. वर्तमान के रू-ब-रू पाश : सम्पादन चमन लाल
4. बिखरे हुआ पन्ने : पाश (अनुवाद – डॉ. वेद प्रकाश 'वटूक')

## इकाई 14 : ओडिया कवि सीताकान्त महापात्र की निर्धारित कविताओं का विवेचन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14 .2 उद्देश्य
14 .3 मूल पाठ : ओडिया कवि सीताकान्त महापात्र की निर्धारित कविताओं का विवेचन
14.3 .1 कवि परिचय
14 . 3.2 कविता एक : अधेड़
14 .3.3 कविता दो: मृत्यु
14 .3.4 कविता तीन: शब्द अब शब्द नहीं
14.3.5 कविता चार : वर्षा की सुबह
14.3.6 कविता पाँच : हर सिंगार का स्वप्न
14. 4 पाठ सार
14.5 पाठ की उपलब्धियां
14.6 शब्द संपदा
14.7 परीक्षार्थ प्रश्न
14.8 पठनीय पुस्तकें

### 14.1 : प्रस्तावना

'समय और शब्द के कवि' सीताकांत महापात्र ओडिया और अंग्रेजी के उत्कृष्ट भारतीय कवि और साहित्यिक समालोचक हैं।आधुनिक भारतीय साहित्य में कवि महापात्र ने अपनी जगह बना ली है। इनकी कुछ कविताओं के हिंदी पाठ के विवेचन से आप अदब और इल्म के खजाने की कुंजी को पाने वाले हैं। यह इकाई आपसे कुछ खास ध्यान चाहती है। महापात्र की कविताएं भारतीय और विदेशी मिथकों से भरी पड़ी हैं। डॉ महापात्र ने जो वैदुष्य अपनी कविताओं में चित्रित किया है उससे उन्हें आधुनिक भारतीय कवियों के बीच खास जगह मिली है। इनकी नजर भारतीय जनजाति साहित्य पर भी रही है।आदिवासियों की मौखिक कविताओं के संग्रह, संरक्षण और अनुवाद के लिये आप अपने आईएएस की नौकरी के जीवन में इतना समय किस तरह दे पाए,यह जानकर आपको ताज्जुब होगा। कवि की पचास सालों से चली आ रही साहित्यिक यात्रा बहुत लंबी है। अनेक किताबें,अनेक पुरस्कार,गहन अनुभव और बहुत सा ज्ञान पिछले पचास सालों के भीतर कवि को प्राप्त हुआ है। यहाँ जो पाँच कविताएं आप पढ़ने जा रहें हैं, वे निर्धारित कविताएं हैं। इनके अलावा भी आप इन्हें जानने के लिए आजाद और स्वतंत्र हैं। तभी आपका पढ़ना कामयाब माना जाएगा। तभी आप 'भारतीय साहित्य' की अवधारणा के भीतर 'भारतीय साहित्यकार' के योगदान का ठीक-ठीक विवेचन भी कर

सकेंगे;जब आप किसी साहित्यकार को भरपूर निगाह से पूरी तरह देखेंगे। यहाँ जो है, वह बानगी है, उदाहरण है।

## 14.2 : उद्देश्य

इस इकाई के पाठ से आप:

- ओडिया कवि सीताकांत महापात्र का साहित्यिक परिचय प्राप्त करेंगे।
- महापात्र की चुनी हुई पाँच कविताओं को पढ़ेंगे।
- इन पाँच कविताओं का विवेचन और विश्लेषण करना सीखेंगे।
- इन कविताओं के आधार पर कवि के भारतीय साहित्य में योगदान का विवेचन कर सकेंगे।

## 14.3 मूल पाठ : ओडिया कवि सीताकान्त महापात्र की निर्धारित कविताओं का विवेचन

### 14.3.1 सीताकान्त महापात्र: कवि परिचय

ऑडिया कविता के प्रमुख कवि सीता कांत महापात्र का जन्म 17 सितंबर 1937 में हुआ। शुरुआती शिक्षा के बाद विश्वविद्यालयी शिक्षा उत्कल,इलाहाबाद, और कैंब्रिज विश्व विद्यालयों में हुई। सामाजिक नृविज्ञान में डॉक्टरेट (पी एच डी) हासिल की। फिर दो साल प्रोफेसरी की। 1961 में भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए चुन लिए गए। भारत सरकार में कई पदों पर रहे। पर यह तो इनका अकादमिक जीवन का खाका है। हमें डॉ महापात्र के कवि रूप से ज्यादा सरोकार है। डॉ महापात्र के 2 दर्जन कविता संकलन और कई निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। भारतीय जनजाति कविता के 10 संकलनों का आपने संपादन किया है। 1974 में आपके कविता संग्रह 'शब्दर आकाश' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला और 1993 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। 2003 में पद्म भूषण और 2010 में पद्म विभूषण से भी नवाजे गए। डॉ महापात्र एकमात्र ऐसे भारतीय कवि हैं जिनके कविता-संग्रहों के अनुवाद पर पाँच अनुवादकों को साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार मिला है। इसका मतलब है कि इनकी कविताओं के अनुवाद खूब हुए हैं और बहुत सी भाषाओं में हुए हैं।

छात्रो ! डॉ महापात्र की कविताओं को आप पढ़ने वाले हैं और खुद जानने वाले हैं कि क्यों इनको इतनी शोहरत मिली है। एक वजह तो यह दिखाई देती है कि इनकी कविताएं उत्कृष्ट आध्यात्मिक सिद्धांतों और अटल सत्य को बहुत आम-फ़हम जबान में पेश करते हैं। इनकी बात किसी को भी आसानी से समझ में आ जाती है। आपकी एक अंग्रेजी कविता है 'रिफलेक्शन' । इसकी ये चार लाइनें देखें। हिंदी में अनुवाद कर लिया गया है, आप गौर फरमाएं।

यथार्थ और प्रतिबिंब
दर्पण के दो पार्श्व हैं
एक का आलोक अश्रु लाता है
तथा दूसरे की परछाई दर्द

यहाँ इस इकाई में आपको यह बात भी खास तौर से ध्यान रखनी होगी कि जिस प्रकार से मलयालम के कवि राघवन अट्टोली की कविता का मुख्य स्वर और सरोकार दलित चेतना की तरफ इशारा करता है, उसी तरह महापात्र की नजर भारतीय जन जाति समुदाय पर टिकी है। ये पहले ऐसे भारतीय विचारक हैं जिन्होंने जन जातीय साहित्य के साहित्यिक मूल्य को समझा। महापात्र द्वारा जन जातीय समुदायों पर किये गए कार्य प्राचीन रिवाजों को तो दिखलाते ही हैं, ये भी बताते हैं कि क्यों इनके विकास के लिए किये जा रहे सरकारी प्रयास सफल नहीं हो पाते। आपकी कविताओं की एक प्रमुख विशेषता यह है कि मिथकों से लिए गए तथ्यों को आपने अपनी कल्पना के रंग में रंग कर पेश किया है। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है कि व्यक्ति, समय, मृत्यु, और उनसे परे जाना आपकी कविताओं की जीवन-रेखा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि डॉ महापात्र की कविताओं में दर्शायी गई समस्त खोजों,सांसारिक सीमाओं से परे जाने के प्रयासों में हमें नया तथा ओजपूर्ण स्वर एवं अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

बोध प्रश्न

- सीताकान्त महापात्र के कवि रूप का परिचय कम से कम शब्दों में दें।
- महापात्र की कविताओं की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

### 14.3.2 कविताओं का विवेचन : कविता 1. अधेड़

### 1. अधेड़

जल की स्वच्छ करुणा
हवा का सरल आनंद
छोड़ आया है वह
स्कूल की किताबों में
कामना का कंटकित प्रस्फुटित गमकता वन
उन्माद का तीव्र उल्लास और दंभ
छोड़ आया है वह
प्रथम प्रेम की गली के मोड में ।

अब है महज धूल , पसीना, खीझ
जेठ की गर्मी हवा में
कराता है इंतजार वह
आषाढ़ का, बादलों का।
कभी-कभी मानों कोई रोता है भीतर
शायद कुछ याद कर- करके
बच्चे नहीं हैं , गृहिणी गई है पड़ोस में

चारों ओर सूनेपन का अखंड राज है
लंबी दुपहर पड़ी है
साँझ होने में अभी देर है ।।
आम के पेड़ पर बैठी रो-रोकर
बुला रही है एक कबूतरी
सेर भर गया, माण भर गया , उठ रे पूता
किन्तु सब अपूर्ण रहता है।
कोई भी शून्यता नहीं भरती ।
स्कूल से कॉलेज से लौटने में
अब भी देर है बच्चों के
अर्थात, धूल-धूसरित रास्ते में किसी से मारपीट
किसी पर पत्थर से सिर फटा होगा
उसके भीतर की अलसायी हिंस्रता
हमेशा उभरी है
उनके चेहरे पर , भाव –भंगिमाओं में ॥
फिर एक बार देखता है वह घड़ी
सूर्य को थोड़ी भी जल्दी नहीं लौट जाने की ।
उसी तरह मारी मछली के पेट से लटका है
निष्करुण पश्चिम आकाश में
गोधूलि की लालिमा में काफी देर है
रात और अंधेरे का आश्वासन है काफी दूर ।
सुनाई पड़ता है रह-रहकर अब भी
कोयल का आखिरी गीत
खुशी से पहले की तरह
रो नहीं पा रहा अब
खुद-ब-खुद नहीं भर आती आखें।
सीढ़ी –दर -सीढ़ी
दृढ़ विश्वासी हो पग बढ़ाता है
नीले आकाश शीर्ष को ताकता
सीढ़ियाँ चढ़ना खत्म हो जाने पर
है अब खीझ का शून्य समतल ।
बैठा रहता है वह घड़ी पर आँखें टिकाए
परित्यक्त मंदिर की कौतुक भरी
वजनदार मूर्ति सा

जो अबोध शिशु सा
ताकता रहता है शून्य को
पर न हँस पाता है
न रो पाता है ।

**'अधेड़' कविता का विवेचन**

'अधेड़' कविता कवि महापात्र की प्रतिनिधि कविता है। प्रतिनिधि कविता उसे कहते हैं जिसमें कवि की विचारधारा साफ साफ दिखाई दे। कवि को नामवर सिंह ने 'शब्द और समय का कवि' कहा है। वे 'समय' के कवि हैं। कवि का मानना है कि समय या वक्त के बहुत से नाम हैं। 'अकेलापन' या 'निर्जनता' वक्त का अंतिम परिचय होता है। "समय के अनेकानेक नाम हैं, निर्जनता उसका अंतिम परिचय होती है। सभी मनुष्यों को निर्जनता खा जाती है। पारिवारिक जीवन और सांसारिक कोलाहल के भीतर रहते समय मनुष्य उस निर्जनता के द्वीप का निर्वासित जीवन जीता है। संसार, जीवन, लोभ, मोह, माया जैसे अनेकानेक अनुभवों से दूर, छोटे बच्चे के रूप में शुरू कर स्वयं भगवान के जीवन में निर्जनता का प्रभाव देखने को मिलता है। "कवि के शब्दों में, " सभी मनुष्यों को निर्जनता खा जाती है। पारिवारिक जीवन और सांसारिक कोलाहल के भीतर रहते समय आदमी उस निर्जनता के द्वीप का निर्वासित जीवन जीता है। संसार, जीवन, लोभ, मोह, माया जैसे अनेकानेक अनुभवों से दूर छोटे बच्चे के रूप में शुरू कर स्वयं भगवान के जीवन में निर्जनता का प्रभाव देखने को मिलता है। निर्जनता भिन्न-भिन्न रूप बदल कर आती है, चली जाती है। घर में रह रहे एकाकी बुजुर्ग लोग, मध्यम-वर्गीय परिवार में बच्चों की स्कूल और पति के बाहर जाने पर घर की अकेली महिला एक विचित्र शून्यता के भीतर कुछ समय के लिये जिस असहायता का अनुभव करती है, उसी का नाम है निर्जनता। प्रेमी जोड़ों के मिलने के पथ पर जिन किन्हीं बाधाओं को लेकर निर्जनता के शीतल द्वीप को ले जाती है, निर्जनता के वे क्षण उन्हें इस तरह लगते हैं जैसे उनके चारों तरफ दुनिया उजड़ी हुई नजर आती है। जीर्ण-शीर्ण हो जाती है। जिस तरह एक छोटे बच्चे के खिलौने टूटने का दुख उसे निर्जनता के भीतर खींच ले जाता है, वास्तव में "यह है या यह नहीं है" की बीच की स्थिति मनुष्य के लिये उसकी निर्जनता होती है।"

कवि के इन विचारों को ध्यान में रखकर जब आप इस कविता को पढ़ते हैं तो समझ में आ जाता है कि इस कविता का 'अधेड़' व्यक्ति एक ऐसा आम इंसान है जो हारा थका और अकेला है। जीवन का आधा भाग खत्म हो गया है और आधे की कोई आस नहीं है। वह केवल शून्य में ताकता भर है पर कुछ कर नहीं पाता। निराशा और हताशा उसका नसीब है। वह अपने नसीब पर न हँस पाता है और न रो पाता है। बस अपने जीवन में आते जा रहे ठहराव को देख

देख जी रहा है। इसी को कवि निर्जनता के रूप में देखता और अधेड़ आदमी के रूप में पेश करता है।

**बोध प्रश्न**

- अधेड़ के जीवन की तुलना दुपहरी से क्यों की गई है?
- इस कविता में प्रस्तुत अधेड़ की रोजमर्रा की जिंदगी कैसी है?

### 14.3.3 . कविता दो : मृत्यु

आना हो तो आओ
क्या मालूम नहीं तुम्हें
तुम्हारे उस आकाश की ओर
उन्मुख हूँ मैं हमेशा से
आओ, आकर बैठो मेरे पास ।
धूल में धूसर आत्मा सिर्फ रोती है
रोती है दिन-रात वही विमुग्धा पुतली
आनंद से, आँसुओं से, है राधा-सी
सदा वह पगली।
पहाड़ के मचान पर, सुदूर उपत्यका में
बेमौसम बरसात में
करुण साँझ की किस उदास बाँसुरी की पुकार से
अप्रतिभ पवन में, बावली सुबह में
उड़ा है चिड़िया बन यह हृदय
है आकाश तो बहुत दूर।
घास बन, धूल-अंगार को नए
सपनों की हरियाली से ढाँप
फूल खिलने से पहले
धूप का गुस्सा सह
हुआ है यह हृदय चिरकाल दग्ध
घोर तूसानल से
चर्म-घिरे चौरासी अन्नमय पिंड लिए
हाट-बाजार की क्षुधा तमाम अंगार राख
पीठ पर लादे कछुआ-सा
नीरवता-वामन के तृतीय डग से हाय
घुसी है पाताल में चिरकाल।

आना हो तो आओ
मोतियाबिंद से घिरी आँखों से
पोंछकर सारी धूल और अंगार
मेरी आत्मा से
क्या तुम्हें नहीं मालूम
मैं हूँ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में
आँखें खुली हैं जिस दिन से ?
दबे पाँव चले आओ,
पास बैठो ज़रा।

शब्दार्थ:

उन्मुख- ऊपर मुँह किए, ऊपर ताकता हुआ · उत्कंठा से देखता हुआ · उत्कंठित, उत्सुक.

धूसर- धूल के रंग का, भूरे या मटमैले रंग का, खाकी · जिसमें धूल लगी या लिपटी हो, धूल से भरा

विमुग्ध- · मोहित, आसक्त, भ्रम में पड़ा हुआ, ,उन्मत्त,मतवाला

उपत्यका- पर्वत के पास की भूमि'

अप्रतिभ- जिसमें प्रतिभा न हो; प्रतिभाशून्य, उदास; चेष्टाहीन, सुस्त, मंद, स्फूर्तिरहित

क्षुधा- भोजन करने की इच्छा, भूख

**मृत्यु कविता का विवेचन**

कवि ने पूरी निष्ठा के साथ अपने जीवन को कविता में जीने और उसे अपना हिस्सा बनाने का निरंतर प्रयास किया है। अंग्रेजी कवि सीमस हिने ने एक बार कहा था कि हम मृत्यु के बाद जीवन की बात करते हैं, महापात्र अपने जीवन में ही मृत्यु के लिए सजग रहते रहे हैं। अपनी जीवन यात्रा में वे जीवन में ही मृत्यु का अनुभव लेते रहे हैं। इस कविता में कवि ने मृत्यु का मानवीकरण किया है। वे उसे ऐसे बुलाते हैं जैसे मौत कोई डराने वाली चीज न हो, बल्कि कोई पुराना दोस्त हो। 'आना है तो आओ' कहकर कवि मृत्यु को कुछ थोड़ा बहुत सम्मान देते हैं, पर वे यह भी कह देते हैं कि उन्हें मौत से कोई डर नहीं । जिस दिन वे पैदा हुए थे, उसी दिन से वे इसके आने के बारे में जानते थे। अब जब उनका शरीर थक गया है, पुराना हो गया है और आँखों से दिखाई नहीं देता तो उनको मौत का डर क्यों होगा। कवि नहीं जानता कि मरने के बाद उसे किस आसमान की तरफ जाना होगा। मरने के बाद उसको कहाँ जाना होगा, उसे नहीं मालूम। पर उसे यह मालूम है कि उसका मन चिड़िया की तरह खूब दूर तक उड़ना चाहता रहा है। कवि चाहता है कि मौत उसके पास आहिस्ता से आकर बैठ जाए तो उसे अच्छा लगेगा।

कवि  भारतीय मिथकों के प्रयोग से अपनी कविता को अनूठा रंग-रूप देता है। 'मृत्यु' कविता में भी भारतीय मिथकों का इस्तेमाल करके कवि ने मौत के इंतजार की चर्चा की है।

बोध प्रश्न

- कविता का 'मैं' जन्म से किसका इंतजार कर रहा है?
- बताओ कि उस 'मैं' की क्या उम्र होगी?
- 'वामन के तीन डग' के पीछे की कहानी क्या है? यहाँ क्यों इसका उल्लेख है?

**14.3. 4 कविता तीन : शब्द अब शब्द नहीं**

उस वक़्त कितनी रात थी?
सहसा नींद से जगकर
तुम्हें बिस्तर पर न देख
समझ गया बरामदे में बैठी
पुनः खो गई होगी तुम नभ मंडल के
उसी नक्षत्र मेले में
नीरवता-बाँसुरी के सुमधुर गूंजते स्वर में।
रसोई घर की आग, नमक तेल के तमाम झमेलों में
बच्चों के कपड़े लत्तों, खाता-बही, लाखों दावाभरी जिदों में
रोग-शोक यातनाओं की सीढ़ी दर सीढ़ी
गुस्से रोष के मुरझाए लग्न में
जानता हूँ काफी दिनों से तुम सुनने लगी हो
वह भिन्न स्वर
जो गुनगुनाते हुए गूंज रहा है
दिन-रात चारों ओर।
नदी की बाढ़ ज्यों डुबोए रखती है
मेढ़-घेरा, गड्ढे-खेत, तमाम बाड़।
शब्द अब शब्द नहीं
दुःख नहीं अब महज दुःख
किस जादुई स्पर्श से उतर जाती है अब
शब्द से, दुःख से, मुरझायी केंचुली
बच्चों के सुलेख में तारे टिमटिमाते हैं
मैली कमीज़ में देता है सुनाई तारे का स्पंदन
क्या इसीलिए थी तपस्या, प्रतीक्षा सारी
तो क्या यही है असली जीवन।

क्या घटित होता है जीवन में ऐसा कि
बदल जाते हैं सहसा
जीवन के तमाम परिचित रूप रंग
सुन पड़ता है बाँसुरी का
वही अनभूला स्वर
पानी के मटके में समुद्र नाचता है
और टकराता है टूट जाती है रट्-राट्
सारी पुरानी गाँठे और डोर बंधन की।

प्रियतमा, तुम खो गई थीं आकाश में
पश्चिमी आकाश के तारे की रोशनी में
लगा तुम हो एक छायामूर्ति
और इस तरह मैं मिला तुमसे
कितने जन्म जन्मांतरों के बाद।
अब तुम्हें सौंपता हूँ फिर एक बार
तारे की रोशनी और
मेघहीन रात्रि आकाश
रात्रि तट पर घोंघे हैं हम दो,
सुन रही है विमोहित हो स्मृति-संगीत
शून्यता में नभचारी नक्षत्र से,
रोशनी की आँच।

**शब्दार्थ**

घोंघा - शंख के आकार का एक कीड़ा, बेकार की चीज

शून्यता-खालीपन

नभचारी- आसमान में चलने वाला, परिंदा, बादल,हवा

**कविता का विवेचन**

कवि सीता कांत महापात्र का एक कविता संग्रह है – तीस कविता वर्ष। इस कविता संग्रह की पहली लाइन में शब्द के बहुत से दूसरे नाम और अर्थ दिए गए हैं। आसमान से लेकर जमीन तक 'शब्द' का फैलाव है। कवि को मौन या चुप्पी में भी सुनाई देता है। इसलिए उसे वे परिंदे बहुत अच्छे लगते हैं जिन्हें बोलने के लिए शब्दों की जरूरत नहीं होती। कवि को बार बार 'समय और शब्द का कवि' कहा जाता है। उनके एक कविता संग्रह का नाम है 'शब्दर आकाश' (1971) और एक दूसरे कविता संग्रह का नाम है 'समयर शेषनाम' ।

यहाँ पेश की गई कविता में कवि कम से कम शब्दों में उस रात का जिक्र छेड़ता है जब उसकी प्रियतमा (पत्नी) उसे रात के पिछले पहर में  बिस्तर पर सोती हुई नहीं मिली थी। (यहाँ आपको यह ध्यान रखना है कि कवि ने खुद को और अपनी प्रियतमा को दो किरदारों की तरह पेश किया है।)

कवि अपनी पत्नी को बिस्तर पर लेटे हुए न देखकर यह समझ जाता है कि वे शायद पहली कई रातों की तरह उस रात भी बिस्तर से उठकर बाहर बरामदे में जा बैठी हैं। और हर बार की तरह वे आसमान के तारों-सितारों को निहार रही हैं। गौर से टकटकी लगाकर देख रही हैं, जैसे आसमान में कोई मेला लगा हो। वहाँ कोई लगातार बाँसुरी बजा रहा हो। बाँसुरी ऐसी कि दिल भर आए। दुनिया की खटपट भुला दे। उसकी निराली तान जिंदगी के शोर-शराबे से कुछ देर के लिए निजात दिलाती है। सुकून देती है। तमाम दिन चूल्हे के सामने बैठे रहने से यह कितना बेहतर है। घर के न जाने कितने कामों में लगातार खटना पड़ता है। खाना बनाना, बच्चों का ख्याल रखना, कपड़े धोना, हिसाब-किताब देखना, सबका ख्याल रखना वगैरा न जाने कितने काम होते हैं। दिन भर की तना-तनी से कुछ पल के लिए ही सही, रात  में इस तरह आसमान की तरफ देखना बहुत अच्छा लगता है। उस दूसरी आवाज को सुनने की कोशिश करना जो खुले आसमान के नीचे खेत-खलियानों से गुजरती है। वो आवाज जो सुनाई नहीं देती, पर उसे महसूस किया जा सकता है।

सुनाई देने की बजाय उसे महसूस करना इसलिए जरूरी है क्योंकि शब्द अब शब्द नहीं रहे। उस आसमानी दुनिया में लफ़्ज़ बेमानी हो जाते हैं। चीजों के मायने बदल जाते हैं। जैसे अहसासात की ऊपरी सतह उतर गई हो। जब जिंदगी के तमाम अनुभवों की केंचुली उतार जाती है या ऊपरी सतह हट जाती है तो कुछ दूसरी चीज दिखाई देती है। दूसरी तस्वीर नजर आती है।जब ऐसा होता है तब एक सवाल उठकर खड़ा हो जाता है। क्या यही असली जिंदगी है?

ऐसे कई सवाल आकर जवाब मांगते हैं। जब जिंदगी में कुछ ऐसा मकाम आता है कि रोजमर्रा की जिंदगी में कुछ अनजाना सा हो जाता है। सब कुछ बदला बदला सा लगने लगता है। लगने लगता है जैसे कोई बाँसुरी बजा रहा हो। जैसे सारी कायनात सामने आ खड़ी हुई हो। सब पुराने अहसासात यकायक  बदल जाते हैं।

यह बात भी गौरतलब है कि कवि जब अपनी पत्नी को इस तरह आसमान में देखते हुए देखता है तो उसे खुद भी महसूस  कि जैसे उसकी पत्नी और प्रियतमा भी एक छाया मूर्ति है। एक एहसास है। उसे लगता है कि जैसे वे भी बहुत वर्षों और जन्मों के बाद मिल रहें हैं। वे दोनों जैसे आम इंसान हो। इस कायनात में सांस लेने वाले दो मामूली परिंदे या कीड़े हों। समंदर के किनारे पाए दोनों इस बड़ी सी दुनिया में इस दुनियावी समंदर का संगीत सुन रहें हैं। इस संगीत में सुर नहीं, तान है। इस संगीत में लफ़्ज़ नहीं, लहरें हैं जो मदहोश करती चली जाती हैं ।

कवि अपनी इस कविता के पाठक से यह उम्मीद करता है कि वह भी जीवन के इस संगीत को सुने। यह संगीत नीरव है। इसमें शब्द नहीं होते, लहर होती है। पर इसका सुनना तभी मुमकिन है जब जिंदगी की उठापटक और कोलाहल से बचते हुए किसी रात में खुले

आसमान के नीचे बैठकर ऊपर की तरफ देखा जाए। उस ऊपर वाले की बनाई दुनिया को भरपूर निहारा जाए। शब्दों से नहीं एहसास से महसूस किया जाए। शब्द जब शब्द नहीं रहते, निःशब्द हो जाते हैं तो उनका अपना कोई नया अर्थ होता है।

**बोध प्रश्न**

- कवि ने एक रात अपनी पत्नी को क्या करते देखा?
- इस भरी दुनिया में हमारा वजूद क्या है?

**4. वर्षा की सुबह**

आया है वर्षा-काल
घन बरसता लगातार
बज रही दुंदुभि बादलों की
काँप उठी है सुबह।
लग-लगकर कोमल अंगुलियाँ
बारंबार वर्षा की
मिट चुके हैं सफेद अक्षर कई
फाटक की नीले नामपट्ट से।
भीगा हुआ जाता है स्कूल बालक एकाकी,
पर बंद हैं किवाड़ खिड़कियाँ सारी
राह किनारे सभी घरों की
मानो नहीं है कोई
उस गाँव में अनंतकाल से
हो गए हों तितर-बितर सभी
भय से वर्षा के
सुन पड़ता है प्रहार वज्र का
घुप्प काले बादलों के लोहारखाने से।
सोया है घर में कौन ?
उदास माँ-बाप? निश्चिंत समय?
गाढ़ी काली मृत्यु का भय ?
देख घटा मोर की तरह हैं अधीर
मृत्यु और बालक के मन।
खत्म हुई छुट्टियाँ बालक की
आ पहुँची घड़ी यह समझने की
चुक जाते हैं सुख सारे कभी न कभी
आई है वर्षा अब
मृत्यु है लंबी छुट्टी पर

दूर परदेस में,
विरही जीवन चाहता है खो जाना चुपके से
बादलों के शुभ्र मल्हार करुण राग में।
आ जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न
राह भूली तितली-सा,
एकाकी बदरारी लग्न में
कुछ सोच उठ खड़ी होती हो तुम
करती हो इस्त्री पोशाक मेरी
टाँग देती हो उसे
(मानो अगले जन्म के लिए)
वहाँ अरघनी पर
लगती है जो
किसी धुले-उजले कंकाल-सी।

शब्दार्थ
घन- बादल
दुंदुभि- एक तरह का नगाड़ा, बड़ा ढोल
अरघनी- खूंटी
कंकाल- हड्डी का ढांचा

**कविता का विवेचन**

बारिश का मौसम और वर्षा की सुबह बड़ी सुंदर होती है। जब बादल लगातार गरजकर बरसता है और सुबह डर-डर कर काँपती है, तब दिल धड़कता है और मन का पंछी नाचने को करता है। इतनी घनघोर बारिश होती है कि घर के बाहर लगी नेम-प्लेट के कई शब्द धूल जाते हैं। बालक अब भी स्कूल जाते हैं। माता पिता घर में दुबके होते हैं। वे घबराए होते हैं। शायद उन्हे मौत का डर होता है। घर में ही नहीं गाँव में ही सन्नाटा होता है। पर बालक का मन मयूर नाचता है।

वक्त बदलता है। बरसों बाद भी बालक जब युवक हो जाता है तब उसे बारिश अच्छी लगती है। पर अब उसे समझ आती है कि जिंदगी में उतारचढ़ाव जरूर आते हैं। दाम्पत्य जीवन में सरसता, प्रेम और उम्मीद का अनुभव होता है।

सीता कांत महापात्र की इस भाव पूर्ण कविता को पढ़कर प्रकृति और इंसान के बीच के संबंध का पता चलता है। बारिश या वर्षा होने पर सारी कायनात में जान आ जाती है। चारो तरफ एक नई ताकत आ  जाती है। सब पशु –पक्षी खुश  हो जाते हैं। सुबह की बारिश से दिल में तमन्नाओं का तूफान उमड़ आता है। कवि खुद  भी इससे बहुत खुश हो जाता है। वह अपने सपनों को सच होते महसूस करता है। वह इस बात पर भरोसा करता है कि वर्षा उसकी जिंदगी में एक नई शुरुआत लेकर आई है। कविता की मूल संवेदना आशावादी है। यह कविता भरोसा रखने का

संदेश देती है। यह कविता हमें यह भी सिखाती है कि प्रकृति के साथ हमें तालमेल बिठाना चाहिए और प्रकृति का सम्मान करना चाहिए। कवि यह संदेश देता है कि जीवन में कभी हार नहीं माननी चाहिए। चाहे कितनी भी मुश्किलें आयें फिर भी उम्मीद का दामन कभी छोड़ना नहीं चाहिए। जैसे बारिश  के बाद सूरज निकलता है वैसे ही हमारी जिंदगी में भी परेशानी के बादल छँटने के बाद उम्मीद का सूरज जरूर निकलता है।

बोध प्रश्न

- 'वर्षा की सुबह' काव्य संग्रह किस रचना का अनूदित रूप है?
- कविता का मूल संदेश क्या है?

**5. हरसिंगार का स्वप्न**

न होती है चिन्ता न परवाह
हाथ की पहुँच वाली टहनी पर मुस्कराता है
खिलखिलाकर चाँद-सा
खेलता रहता है
हवा, भोंरे, चिड़िया सब के साथ ।
खेलता तो रहता है
पर ध्यान से देखें तो लगेगा
खोया हुआ है वह किसी और दुनिया में
किसी अज्ञात स्वप्न की मादकता
जैसे छायी हो उस पर।
क्या है वह स्वप्न ?
नक्षत्र ? निर्वाण ?
काली रात, काला भौंरा, काला चाँद ?
रात बीत जाने पर
पूरी रात पकड़कर लाये
नन्ही चिड़िया की तरह रोते-रोते
सुबह मुक्त हो जाता है वह
टहनी के आश्रय से।
रात बीत जाने पर
उसके स्वप्न का,
उसकी अन्यमनस्कता का
इतिवृत्त समझ में आ जाता है
नक्षत्र नहीं निर्वाण,
क्यों ताकता रहता है वह

धूल की सेज की ओर
खिलता है जिस दिन से।
स्वप्न नहीं उसका सुदूर आकाश
स्वप्न नहीं ज़िद्दी चिड़िया या
पागल भौरे की प्रीत
अधीर हवा की पुकार, अन्तहीन रास;
स्वप्न है उसका सारा प्रेम,
सारी हँसी-खुशी पीछे छोड़
टहनी से विदा ले
धूल की सेज पर झड़ जाना
बिन बोले एक शब्द तक।

**शब्दार्थ-**

इतिवृत-इतिहास, कहानी

अन्यमनस्कता- जिसका जी कहीं न लगता हो, उदास, चिंतित, अनमना

**कविता का विवेचन-**

हरसिंगार, जिसे आमतौर पर रात में खिलने वाली चमेली या पारिजात के नाम से भी जाना जाता है, एक फूल वाला पेड़ है, जो अपने सुगंधित फूलों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। फूल में सफेद रंग की पंखुड़ियां और एक नारंगी तना होता है और ये फूल हर सुबह पेड़ से गिरते हैं। कवि इस कविता में इसी फूल के बहाने एक संदेश देता है? क्या है वह संदेश?

हरसिंगार का फूल मस्त रहता है। वह छोटी बड़ी टहनियों पर खिलता मुस्काता रहता है। हवा, भोरों और चिड़ियों के साथ खेलता रहता है। पर आपने उसे मस्त मौला ही देखा होगा। यदि हरसिंगार के फूल को ध्यान से देखा जाए तो पता चलेगा कि वह कोई सपना देख रहा है। सपना तो देख ही रहा है। उसकी मस्ती में खोया हुआ भी है। वह सपना क्या है? क्या वह सितारों का सपना देखता है ? या वह अपने सपनों में काली रात, काला भौंरा या काला चाँद देखता है?

पता नहीं सच क्या है? सच यह है कि हरसिंगार का फूल सुबह होते ही टहनी से छूट जाता है, जैसे रात को पकड़ कर लाई गई चिड़िया रोते रोते निकल जाती है। रात बीत जाने पर हरसिंगार के फूल के जीवन की सच्चाई पता चलती है। उसके सपने और उसकी बेचैनी का ज्ञान होता है। वह नक्षत्र नहीं निर्वाण चाहता है। उसे मुक्ति चाहिए होती है।

पता चल जाता है कि वह क्यों अपने खिलने के दिन से लेकर धरती की धूल की तरफ देखता रहता है।पता चल जाता है कि हरसिंगार का सपना सुदूर आकाश में विचरण करना नहीं है। उसका सपना जिद्दी चिड़िया या पगलाए भौरे की प्रीत भी नहीं है। न ही वह बेचैन हवा की पुकार के प्रेम में मस्त हुए रहता है। उसका सपना , उसका सारा प्रेम उसकी सारी इच्छा केवल

एक थी। उसकी इच्छा थी कि वह अपने पीछे सारी हँसी –खुशी छोड़कर बिना एक शब्द बोले आसानी से उस पेड़ की टहनी से विदा ले जिस टहनी ने उसे आसरा दिया था। हरसिंगार का सपना था कि वह अपने चारो ओर फैली खुशी को छोड़कर धीरे से चुपचाप विदा ले –चल बसे। हरसिंगार का स्वप्न कविता में इस फूल का यही ख्वाब है कि वह अपनी छोटी सी जिंदगी में हँसी खुशी बिखेकर चुपचाप चल बसे। कवि इस कविता के द्वारा हम सबको भी यह सीख देता है कि इस चार दिन की जिंदगी में हमें इस अदने से फूल से जिंदगी के मायने सीखने चाहिए।

बोध प्रश्न

- हरसिंगार के फूल की जिंदगी कितनी और कैसी होती है?
- हरसिंगार का सपना क्या है?

## 14.4 : पाठ सार

डिया कवि सीताकांत महापात्र भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी कविताओं के अनुवाद भारत की कई भाषाओं में मिलते हैं। इस इकाई में डॉ महापात्र की पाँच अनूदित कविताओं का विवेचन और व्याख्या की गई है। महापात्र की कविताओं में नीरवता और मृत्यु आवश्यक तत्व हैं। महापात्र की कविता में भारतीय परंपरा के मिथकों का खूब इस्तेमाल होता है। महाभारत के बहुत से किरदार और वाकये इनकी कविता में बार बार आते हैं। कवि को अपने देश पर पूरा भरोसा है। उन्हें 'मैं' के बजाय ' हम' कहना अच्छा लगता है। कवि की एक दूसरी विशेषता और उनकी कविता का गुण उनकी सहजता है। वे अपनी कविता में चमत्कार लाने की कोई कोशिश नहीं करते। वे अपनी विद्वत्ता का बिगुल नहीं बजाना चाहते। सहजता और सरलता इनकी कविता की दो प्रमुख विशेषताएं हैं।

## 14.5 : पाठ की उपलब्धियां

इस इकाई के पाठ से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-

1. भारतीय साहित्य के प्रमुख कवि और साहित्यकार सीताकांत महापात्र की कविताएं पढ़ना अपने आप में अनूठा अनुभव है।
2. ओड़िया भाषा में लिखित और हिंदी में अनूदित इन कविताओं का स्वर आशावादी है।
3. जीवन की सुंदरता का बखान करती ये कविताएं जीवन, मृत्यु, अकेलापन, शांति, नश्वरता, नीरवता आदि के सही मायने पेश करती हैं।
4. कवि की कविताओं में भारतीय मिथक और रूपकों का अच्छा उपयोग किया गया है।
5. सहजता और सरलता इनकी कविता की दो प्रमुख विशेषताएं हैं।
6. सीताकांत महापात्र की ओडिया कविताएं अंग्रेजी सहित अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से पढ़ी जा सकती हैं।
7. इन कविताओं को पढ़ने से यह पता भी चलता है कि भाषा कोई भी हो, हमारे भाव एक से हैं।

## 14.6 शब्द संपदा

1. वैदुष्य- पांडित्य, चतुरता, पांडित्य, हाज़िरजवाबी, दक्षता, रसिकता ।
2. इस्त्री-स्त्री = इस्तरी वह उपकरण है जिससे कपड़ों को 'प्रेस' किया जाता है।स्त्री का अर्थ है महिला या औरत।
3. अधेड़ - आधी उम्र का, उतरती अवस्था का, ढलती जवानी का, बुढ़ापे और जवानी के बीच का आदमी
4. कंकाल- हड्डियों का ढांचा, ठठरी
5. मल्हार- भारतीय संगीत में प्रयुक्त एक राग, वर्षा का दाता
6. नीरवता- शांति, शोरगुल का न होना
7. प्रतिपाद्य- प्रतिपादन के योग्य, कहने के योग्य, समझाने के योग्य, मतलब
8. मानवीकरण- (किसी चीज़ को) मानव के रूप में प्रस्तुत करना: (किसी चीज़ को) मानवीय गुणों का श्रेय देना। मानवीकरण एक अलंकार है।
9. वामन के तीन पग- धर्म ग्रंथों के अनुसार महान दानी के रूप में राजा बलि प्रसिद्ध थे। उन्हें दान का अहंकार होने लगा। तब विष्णु ने वामन अवतार लेकर बलि से तीन पग भूमि दान में मांगी। वामन ने दो पग में स्वर्ग और पृथ्वी लोक को नाप लिया। तीसरा पग रखने को जगह नहीं बची, तब राजा बलि ने अपना सिर आगे कर दिया।

## 14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड –(अ)**

**दीर्घ प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. भारतीय साहित्यकार के रूप में ओडिया कवि सीताकांत महापात्र का परिचय दीजिए।
2. सीताकांत महापात्र की कुछ कविताओं के आधार पर उनकी कविताओं की विशेषताएं बताइए।
3. "सीताकांत महापात्र शब्द और समय के कवि हैं।" पठित कविताओं के आधार पर चर्चा कीजिए।

4. सीता कांत महापात्र की कविता को भारतीय साहित्य में शोहरत मिलने के कुछ कारणों को प्रस्तुत कीजिए।

**खंड –(ब)**

**लघु प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।**

क) 'अधेड़' कविता का प्रतिपाद्य अपने शब्दों में लिखिए।

ख) 'मृत्यु' कविता में किन दो मिथकों का प्रयोग हुआ है?

ग) हरसिंगार के जीवन की सच्चाई 'हरसिंगार का स्वप्न' कविता के आधार पर बताइए?

घ) 'वर्षा की सुबह' कविता के संदेश को अपने शब्दों में पेश कीजिए ।

च) 'शब्द अब शब्द नहीं' कविता के शीर्षक की विशेषता पर प्रकाश डालिए।

**खंड- (स)**

**I. सही विकल्प चुनिए**

क) सीता कांत महापात्र मूलतः किस भाषा के कवि हैं?

1) हिंदी 2) मराठी 3) ओडिया 4) इनमें से सभी

ख) 'बिन बोले एक शब्द तक' महापात्र की किस कविता की अंतिम पंक्ति है?

1) शब्द अब शब्द नहीं 2) वर्षा की सुबह 3) अधेड़ 4) हरसिंगार का स्वप्न

ग) 'वामन का तीन पग' में किसका प्रयोग है?

1) अलंकार 2) मिथक 3) रुपक 4) ये सब

घ) "यह है या यह नहीं है" के बीच की स्थिति क्या होती है?

1) निर्जनता 2) निर्धनता 3) मृत्यु 4) अधेड़

**II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।**

1. डॉ महापात्र एकमात्र ऐसे भारतीय कवि हैं जिनके कविता-संग्रहों के अनुवाद पर पाँच अनुवादकों को ___________________________ मिला है।
2. _______________ पुस्तक में महापात्र की तीस वर्ष की काव्य यात्रा के अनेक पड़ाव हैं।
3. 'वर्षा की सुबह' कविता की मूल संवेदना _________________ है।
4. 'मृत्यु' कविता में कवि ने मृत्यु का _________________ किया है।
5. ______________शीर्षक कविता का आदमी हारा-थका और अकेला है।
6. सीता कांत महापात्र ने______________ की मौखिक कविताओं के संग्रह, संरक्षण और अनुवाद के लिये बहुत श्रम किया।

**III. सुमेल कीजिए ।**

1. नामवर सिंह — क ) शब्दर आकाश
2. सीता कांत महापात्र — ख) समय और शब्द का कवि

3. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ग) भारतीय प्रशासनिक सेवा

4. साहित्य अकादमी घ) अनुवादक

## 14.8 पठनीय पुस्तके

1. वर्षा की सुबह –कविता संग्रह –(सीता कांत महापात्र ओडिया में 'वर्षा सकाल')
2. हिंदी में अनुवाद : राजेन्द्र प्रसाद मिश्र,प्रकाशक राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली
3. तीस कविता वर्ष – सीता कांत महापात्र, वाणी प्रकाशन , दिल्ली

## इकाई 15 : मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की निर्धारित कविताओं का विवेचन

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 मूल पाठ : मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की निर्धारित कविताओं का विवेचन

1 5.3.1 कवि परिचय

15.3.2 कंडति

1 5.3.3 वाल्मीकि पर्व

1 5.3.4 लौह लेखनी

1 5.4 पाठ सार

1 5.5 पाठ की उपलब्धियां

1 5.6 शब्द संपदा

1 5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

1 5.8 पठनीय पुस्तकें

### 15.1 प्रस्तावना

यह तो अब आप समझने लगे हैं कि भारत की अनेक भाषाओं में लिखित साहित्य भारतीय साहित्य है। यह बहुत सी भाषाओं में लिखा जरूर जाता है पर इसमें संवेदना एक है। पुराने जमाने में तो तमिल और संस्कृत जैसी कुछ ही भाषाएं आगे आगे थीं। उनके सरोकार भी कम थे। पर आधुनिक काल में अनेक बोलियों और भाषाओं में लिखने वाले बढ़ते चले गए। एक तरफ अंग्रेजी का दखल हो रहा था और अरबी-फारसी के जानकार कम हो रहे थे, दूसरी तरफ हिंदी-उर्दू में लिखकर मुल्क को आजाद कराने के लिए तराने लिखे जा रहे थे। गांधी और अंबेडकर जैसे नेताओं ने हरिजनों और दलितों के उत्थान को आजादी से भी ज्यादा जरूरी बताया। आजादी के बाद दलित वर्ग के बहुत से रचनाकार हर भाषा में खासे लोकप्रिय हुए। आपने ओम प्रकाश वाल्मीकि का नाम जरूर सुना होगा। मराठी, गुजराती, तेलुगु और तमिल से लेकर मलयालम कन्नड भाषाओं तक में बहुत से ऐसे कवि लगातार लिख रहे हैं जो अपनी अलग पहचान पर जोर देते हैं। वे कहते हैं कि अभिजात साहित्य (किसी भी भाषा का हो) के बाहर भी एक बड़ा संसार है। दलित साहित्य ने अपनी जगह अब पक्की कर ली है। दलित लेखन में आक्रोश (क्रोध) का स्वर मुख्य है। जहां भी अन्याय है, वहाँ आक्रोश होना लाज़मी है।

केरल राज्य की प्रमुख भाषा मलयालम है। मलयालम के अनेक कवियों को बहुत चाव से हिंदी में पढ़ा जाता रहा है। अय्यप्प पाणिक्कर, अक्कितम, के सच्चिदानंदन, गोपीकृष्ण कुट्टूर, मीरा नायर आदि के नामों से शायद आप वाकिफ भी होंगे।सामाजिक-सुधार आंदोलनों ने कवियों को भी प्रेरित किया। उनमें कई कवि सीधे-सीधे आंदोलन का हिस्सा भी बने जैसे के.के. गोविंदन उर्फ गोविंदन आशान।

इस इकाई में एक समकालीन दलित कवि और उनकी कविताओं से आप रू-ब- रू होंगे। उम्मीद है कि मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की कविताओं को हिंदी अनुवाद में पढ़कर आप उस संवेदना से अछूते न रहेंगे जिसको कई विद्वान 'दलित संवेदना' कहते हैं। भारतीय साहित्य में मौजूद इस डिस्कोर्स को दलित विमर्श भी कहते हैं। मलयालम भाषा में रचित इन कविताओं का पाठ करके आप सामाजिक विकास में पीछे छूट गए भारतीय समुदाय के अटूट अंग को बेहतर समझने लगेंगे। इसी एहसास को लेकर आगे पढ़ें कि राघवन अत्तौलि कवि की कविता उधार के विचार से पैदा हुई कविता नहीं है। यह दर्द की कोख से पैदा हुई कविता है।

## 15.2 उद्देश्य

इस इकाई के पाठ से आप

- मलयालम भाषा में लिखित भारतीय साहित्य के एक प्रमुख कवि की कविताओं का पाठ करेंगे।
- भारतीय साहित्य के दलित विमर्श के एहसास और जद्दोजहद को बेहतर समझ सकेंगे।
- पढे गए दूसरे कवियों की कविता से तुलना करते हुए भारतीय साहित्य की विविधता को माप सकेंगे।
- निर्धारित कविताओं के पाठ के विवेचन से कवि के बयान को खुद बयान कर सकेंगे।

## 15.3. मूल पाठ : मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की निर्धारित कविताओं का विवेचन

### 15.3.1 कवि परिचय

राघवन अत्तौलि उत्तर-आधुनिक मलयालम साहित्य के एक प्रमुख कवि, उपन्यासकार और मूर्तिकार हैं। उनकी कविताओं में गहराई और विस्तार दोनों मौजूद हैं। मलयालम कविता में कवि के अपनी खास जगह बना ली है। वे एक ऐसे क्रांतिकारी कवि हैं जिन्होंने दलित कवियों के लिए भी रास्ता बनाया है। उनकी कविताएँ दलितों के जीवन के दर्द को पेश करती हैं। दलित विमर्श के विद्वान लेखक बजरंग बिहारी तिवारी के शब्दों में, ' इनकी रचनाएं व्यथा की दस्तावेज हैं।'

राघवन का जन्म 1957 में कोझिकोड जिले के अत्तौलि नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम थन्नीमेल पारोटी और माता का नाम कंडति था।कवि अपने बचपन को याद करते हुए बताते हैं कि जब उनके पास खाने के लिए भोजन या पहनने के लिए कपड़े नहीं थे, तब भी उनके पिता कविता के दीवाने थे और उनके पिता उनकी भूख को भुलाने के लिए अपनी मधुर आवाज में लोक गीत सुनाया करते थे। बचपन से ही राघवन को ये गीत-संगीत कविता की दुनिया में ले गया। धीरे धीरे उनकी रचनाओं से भी आग की लपटे निकलने लगीं। समाज से मिले जाति-आधारित अनुभवों की भट्टी से यह आग निकली। उनके माता पिता के दुख दर्द से दर्द भरी कविता निकली। वे खुद को जातिगत भेदभाव और राजनीतिक प्रतिशोध के जीवित शहीद मानते हैं। 1996 में प्रकाशित कविता संग्रह 'कंदाथी' से शुरुआत की। 'चोरापरीशम' उपन्यास ने वैकम मुहम्मद बशीर पुरस्कार जीता। उन्होंने कविता, उपन्यास, लेख और कार्टून सहित बहुत

सी किताबें प्रकाशित की हैं और 300 से अधिक रचनाएँ लिखी हैं। बाल-साहित्य भी लिखा है। इसके अलावा पेंटिंग और मूर्तियां भी अनेक हैं।

एक बार जब वह नदी में मछली पकड़ रहे थे, तो उन्होंने सड़क के किनारे मिली एक लकड़ी के दस्ते को लेकर पहली मूर्ति बनाई। फिर उन्होंने पड़ोसी बढ़ई से एक पुरानी छेनी मांगी। इस शुरुआत से लेकर केरल और देश भर में 51 मूर्तिकला प्रदर्शनियाँ आयोजित की। उनके द्वारा 15000 से अधिक मूर्तियाँ बनाई गईं। वे लेखन और मूर्तिकला के क्षेत्र में अब भी भरपूर लगे हैं। फिर भी कवि को चिंता है तो केवल अपने भरण पोषण की। लकड़ी के अनगढ़ से घर में पत्नी और तीन संतानों के साथ रहते हुए कवि जमीन पर पसर कर लिखते हैं। इस भरी दुनिया में यह बेसहारा कवि कहता है कि यदि किसी ने उसे आसरा दिया होता तो न तो वह लिख पाता और न मूर्तिकला में खुद को निखार पाता। काश! जमीन से जुड़े ऐसे कवियों की आवाज भारत के आम लोगों तक पहुँचती। राघवन कहते हैं, “जितना मैं लिख सकता हूँ मैंने लिखा है, लेकिन मेरी रचनाएं उन लोगों तक नहीं पहुंची जिनके लिए मैंने लिखा था। मैं एक उत्पीड़ित समुदाय में पैदा हुआ था और मेरे पास उन कड़वे अनुभवों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हैं जिनसे मुझे गुजरना पड़ा है। हताशा और पीड़ा ने मुझे लेखक बनाया। मेरा लेखन उन उत्पीड़ित समूह के लोगों के लिए है। मैंने अपने जीवन में एक क्षण भी आनंद नहीं भोगा, लेकिन उस दिन मैं आनंदित हूँगा जब मेरा सपना पूरा होगा। एक दिन होगा जब असमानता नहीं होगी, भेदभाव किसी का अधिकार नहीं छीनेगा और सभी सद्भाव से रहेंगे।” ( न्यूइंडियन एक्सप्रेस, 28-10-13)

बात तो ठीक है क्योंकि अनुभव मनुष्य को परिपूर्ण बनाता है और जो लोग अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुंचाने में सक्षम होते हैं, वे प्रतिभाशाली कहलाते हैं। प्रतिभाशाली राघवन कवि, उपन्यासकार, मूर्तिकार, चित्रकार, वक्ता आदि के रूप में जाने जाते हैं क्या आप इन्हें बहुमुखी प्रतिभा के धनी कहेंगे?

**बोध प्रश्न**

- कवि राघवन का बचपन कैसा था?
- कवि राघवन का सपना क्या है और यह कब पूरा होगा?
- कविता लेखन के अलावा कवि राघवन और क्या करते हैं?

**15.3.2 कण्डति**

गली के कूड़े के ढेर पर
गंदे लूगड़ों में
जलती भूख से
पसीना पसीना हुई वह
कुछ चीजें समेटे

बुझे दिये वाली कोठरी में
अकेली बैठी वह
दिन की सफेदी खींचते
कालिख छोड़ते
सूरज को सरापती
दिशाओं के चेहरे
करिया जाने तक
ठहराई मजूरी के बदले
घास खोदती वह
पत्थर कूट-कूट कर
हाथ बठराती वह
बीज बिखेर
आंसुओं से खींचती वह
जुए से जूते बैलों से
खींची गाड़ियां
हांफते-सिसकते जनम
आवारा –भटकते बच्चे
मरे गोत्र
कुचले लक्ष्य
खिले लहराते खेतों में
उगे अनाज से
भरता किसी और का भंडार
अधभरे पेट पर
कसी लगोटी बांधे
कमर झुकी बुढ़िया –सी
झुकी रहती वह
खेत के किनारे भूख से बिलबिलाते
बच्चे के चेहरे को धोती
आँसू बहाती वह
आधे निमिष को स्तनपान करा
आंसुओं को
पसीने में बदलती वह
निषेध सूक्तों को लगातार उलीच
कविता रच सजाती यह

नारियल के रेशों सी
बिखरी बिखरी जिंदगी
कुचले खोपरे-सी फैली जीर्णताएं
भीड़-भड़क्कर में
मंडराती भीख मांगती
भीख में मिले अनाज –सी कुचली वह
प्यास से जब गला तड़कता
तो छुआछूत की राक्षस- लीला में
फटे –फूटे कंठ वाली वह-
वही है मेरी जन्मदात्री
उसे चाहिए रोशनी जो बुझ गई
और गरमागरम तेल
इसे चाहिए कपड़े जो पाप में डूबे हों
इसे तो चाहिए बस मुट्ठी भर रेत
जिसमें पाप के दाग न हों
जरा सा धान
जिसमें खून के दाग न हों
यही है मेरी
जन्मदात्री माँ ...।

**शब्दार्थ**

कण्डति = कवि की माँ का नाम

जन्मदात्री = जन्म देने वाली माता

**कविता का विवेचन:** किसी इंसान की जिंदगी में उसकी 'माँ' का स्थान बहुत खास होता है। इसके बारे में जितना भी लिखा जाए कम होगा। कवि राघवन ने अपनी माँ 'कंडति' को अपने बचपन से लगातार कष्ट सहते देखा था। कवि अपनी माता की जिंदगी के बारे में बिना कुछ छिपाए लिखते हैं। इस कविता में कवि अपनी माता को केवल आधार बनाते हैं, पर यह एक दलित स्त्री की दुख भरी कहानी भी है।

'कंडति' शीर्षक कविता में कवि ने दलित स्त्री के जीवन के दुख दर्द को समेटा है। इस कविता को पढ़ते हुए आपको निराला की 'भिक्षुक' कविता तो बार बार याद आएगी ही, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की ये पंक्तियाँ भी बरबस सामने आ खड़ी होंगी : अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी"। इस कविता में खास बात यह है कि इसमें 'माँ' का दुख और दर्द आपको भी दुखी करेगा। दुखी ही नहीं करेगा, आपको गुस्सा भी खूब आएगा। अब आप इस कविता को फिर से पढ़ें और गौर करें। इस कविता का अनुवाद रति

सक्सेना ने किया है। दर्द और पीड़ा के ये स्वर किसी भी पाठक के दिल को तार तार कर देंगे। यही नहीं इनको पढ़ने से कोई भी क्रोधित हुए बगैर नहीं रहेगा।

माता सुबह से शाम तक बहुत मेहनत करके किसी तरह गुजर बसर कर रही है। उसके नसीब में अच्छा पेट भर खाना और तन ढकने भर के किये कपड़ा भी नहीं है। मुट्ठी भर धान के लिए खुद को खपाती जन्म देने वाली माता को उसके बेटे क्या दे सकते हैं? वह दिन रात मेहनत मजदूरी करके अन्न के कुछ दाने और वस्त्र का इंतजाम करती है। उसके लिए मुट्ठी भर चावल और चुल्लू भर पानी ही बहुत होता है, पर वह भी उसे मुश्किल से नसीब होता है। उसके नसीब में तो धूप में तपना और बेगार में खटना है। क्या कभी उसको जन्म देने वाली माता के दिन फिरेंगे?

**बोध प्रश्न**

- इस कविता के शीर्षक के दो अर्थ कौन-कौन से हैं?
- दलित स्त्री के दर्द को पढ़कर पाठक को क्रोध आता है या दया?
- ‘इसे’ और ‘उसे’ के संकेत को स्पष्ट कीजिए।

### 15.3.3 वाल्मीक पर्व...

शब्दों के
आँसुओं के तीर पर बैठकर
साँझ की कंजी बनाने को
यह भभकती आग
किसी झोपड़ी का
पूरा इतिहास नहीं

पसीने का लावण्य बोध
जो कीच में तड़पता है
चिरपरिचित विरचित कथाएं
और नामावलियाँ ही गाता है
जले पुराने अखबारों में भी क्या
पुरानी पलायन कथाएं ही भरी हैं
शब्दों के वर्णाश्रम चतुर्वेद चातुर्वर्ण
जुए में अनुजों को हारने वाले
माँ, बहन, पत्नी को

धोखे से दीमक लगे निशा पर्वों में
फेंकने वाले आधी रात में
मजदूरी को मापने से बुखार वाले

पतन गर्त जो
पुरागामियाँ ने देखे नाक काट कर
बढ़े स्तन काटने को तैयार
क्या तारे ही हैं ?

शब्दों की आत्महत्या में
दर्द से तड़पती तीव्रता से
सच्चाई की कटी हुई हजार जबाने
कुलजातों की उँगलियाँ काट
गोत्रों के कटे गले वाली
किसी शिला प्रतिमा पर
छिड़कने को रक्त और लंबे दाँत
और विष की थैली
जिगर निकालने को त्रिशूल
रथों की मजबूती के लिए
बच्चे का खून
सच्चाई को छिपाने वाली
कविता को मजबूत करने वाला
निष्काम कर्म
और करुणा के वीभत्स संचार वेग में
बंदरगाह से आ लगा झंझावात का जहाज
शब्दों की
जड़ में बंदूक का दबा घोडा
मृत मातृभूमि की
आँखों में एक गिद्ध की चोंच
जंगली चींटों के काटने से
दर्द वाला दिमागी पागलपन
चलो नरमेघ को बंद कर
साँझ के ब्यालू के लिए
पत्तलें परोस लें

शब्दों के वाल्मीक पर्व में
भोज –पत्रों के ढेर में
तालि तोड़ पुरं उत्सव देखने को तैयार

अतिथि चले आ रहे हैं
हुंडी की पेटी में
अजन्में बच्चे की जन्मपत्री
उधार ले लें हम
शब्दों की अरणी सुलगे तो
बरसात बुला लें हम
दृष्टि में
करुणा जलने लगे तो
आँखें भिगो लें हम !

**शब्दार्थ**

कंजी = भात का माँड़ जैसा पतला भोज्य पदार्थ

वीभत्स = घृणित; भयानक, असभ्य; जंगली; बर्बर

नरमेघ = बड़े पैमाने पर मानव हत्या; नरसंहार

वल्मीक - शाब्दिक अर्थ है दीमक द्वारा बनाई बांबी याने मिट्टी का ढेर

वाल्मीक – यह इस कविता का शीर्षक है

वाल्मीकि – संस्कृत में रामायण के रचयिता का नाम

तालि =जंगली पत्ते जिनका उपयोग सिर धोने के लिए किया जाता है

पुरं =मंदिर उत्सव

अरणी = लकड़ी की एक कलछी जो हवन में अग्नि निकालने के काम आती है।

वर्णाश्रम= वर्ण + आश्रम अर्थात, वह वर्ण (रंग, व्यक्तित्व) जो स्वभाव द्वारा अपने आप (आश्रम या बिना श्रम के) बन जाये।

चतुर्वेद = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

चातुर्वर्ण = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र

**कविता का विवेचन**

यह कविता अपने आप में एक आंदोलन है। आंदोलन ही नहीं कवि की विवशता भी इसमें झलकती है। 'वाल्मीक पर्व' कविता कवि के बयान से शुरू होती है। कवि कहता है कि बाहर से देखकर किसी दलित के जीवन की कठिनाइयों का पता नहीं चल सकता। जिस तरह से शाम के वक्त कोई अपनी झोपड़ी के बाहर बैठकर चावल का भात पकाता हो, तो कैसे पता चलेगा कि उसके मन में क्या चल रहा है? उसका जीवन कैसा है? इसी तरह किसी मेहनतकश के पसीने को देखकर या कीचड़ में लथपत आदमी को देखकर कुछ समझ में न आएगा। पूछने पर वह केवल कुछ नाम ही तो बताएगा। उसी तरह पुराने अखबारों में भी दलित जीवन के समाचार सरसरी तौर पर ही देखे जा सकते हैं। कैसे वे किसी जगह से खदेड़ दिए गए और कहीं दूसरी जगह जा

बसे। शब्दों के जाल से भी या बहुत सी पुस्तकों और वेद-पुराणों – रामायण –महाभारत जैसे ग्रंथों में भी यही तो लिखा होता है कि कैसे धोखे से कोई माँ, बहिन, पत्नी को जुए में हार जाता है और फिर आगे बढ़ जाता है। पुराने जमाने से ही इज्जत की खातिर नाक-काट लेने वाले आज स्तन तक जा पहुंचे हैं। और फिर भी वे चमकते सितारे कहे जाते हैं। इज्जत लूटने वाले इज्जत पाते हैं। जिस समाज में युगों से बोलने वाले की जीभ काट दी जाती रही हो, सच्चाई का गला घोंट दिया जाता हो और कलम चलाने वाले को खुदकुशी करनी पड़े, उसे क्या कहेंगे? ये नाम गोत्र के तथाकथित ऊंचे लोग, शिला-प्रतिमा के आगे खून से बलि देने वाले लोग चारों तरफ हैं। ये लोग सच को छिपाने के लिए कुछ भी कुकर्म करते हैं। हिंसा भी करते हैं। इनके बारे में कितना कहा जाए। बेहतर यह होगा कि इस तरह के हिंसक नरमेघ की चर्चा को बंद करके साँझ के भोजन के लिए पत्तलें परोसी जाएं।

देखा जा सकता है कि शब्दों के वाल्मीक पर्व में लोग जंगली पत्ते लेकर मंदिर की तरफ जा रहे हैं। कवि यह संकेत देता है कि हमारे शास्त्रों में जो विचारणीय शब्द लिखें हैं ,उन्हें लोग पत्थर की लकीर मानकर लकीर के फकीर हुए चले जा रहे हैं। अपने ऊपर हुई ज्यादतियों को भूल कर थोड़ा सा अन्न पाकर ही खुश हो जा रहे हैं। आने वाले वक्त में पैदा होने वाले बच्चों के बारे में खुशफहमी पालते हुए जीते हैं। यदि कुछ लोग इस जमावड़े में बैठकर शब्दों की आंच सुलगा लेते हैं। पुराने प्रसंगों और आप-बीती को दुहराते हैं तो उनकी आँखें जरूर बरसाती नदी की तरह बहती हैं। कवि दलित जीवन की जद्दोजहद, उनका इतिहास, उनकी छोटी छोटी उम्मीदों और परेशानियों का बड़ा मार्मिक चित्रण करता है।

**बोध प्रश्न**

- कवि दलित जीवन की तुलना अभिजात वर्ग के जीवन से किस तरह करता है?
- कवि इस कविता में कुछ पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत करता है? केवल दो के बारे में बताइए।

### 15.3.4 लौह लेखनी

किनारीदार रातें
अकाल में खदबदाते चूल्हे
जलती चिताओं की रोशनी
बंधीं चिंताओं की गुत्थियाँ
स्तनों को छेदती काम लीलाओं में
गिर पिघलते कत्ले आम
बच्चों को न सुलाने वाली
लोरियों में
पीने वाले जल के गर्भ में
जहर घोल
देश भर को सुलाने वाली
काव्य सारंगियाँ बेचती

पुस्तकों के बाजारों में
मशाले ले क्रूर राक्षसों को भजता
हिंसक कवियों का सम्मान
देखने-भालने में तो
सभ्य लगते ही हैं
होशियार है क्रीडा में
धोखेबाजी में भी
जो वंचित हैं उसे मृत्युदंड
जो हमेशा पीड़ित हैं
उसे वरदान बलि का
और फिर
वामन की प्रशंसा और पुरस्कार
विप्र लीला की
विकृतियों को गाते हम
काम मोहित हो
जननी माँ को बाँट कर
विदेशी संस्कृति की ओर बहती
हमारी ठंडी शिराएं
नग्न शासक बुढा रहा है
व्यक्त ऋण बिलबिलाते हैं
सही सही हिसाबों किताब
यूनियनों में शिष्ट –जुल्फें
यदि ऐसा ही है तो किसलिए
ये मृत प्राय रागिनियाँ
खाली-खाली बटुए
शैशवों में पंख रहित स्वप्नों में
देव नाम का आदमी ठूँसता है चिंताएं
उसने छोड़े हैं बाण
पहाड़ियों में , मिट्टी में चट्टानों में
आकाश की शून्यता के पार से...

रोकनी चाहिए ये मधुर संलापे
ये कठोर संचार-वेग
ये कठिन वेधी वियोग

ये धूप में मूर्छित एक पिता के प्राण
ये वो जमीं जहां बेटा लगा देता
दांव पर माँ को
यह वह बलि-धरा
जहां भाई -भाई को मारता
कपटी पैतृक कवि की गाई गीता
दलितों द्वारा हरी –भरी बनाई ये भूमि
कुटिल बुद्धिवालों की
फसल कटाई का काल
कवियों के नर मेघ का उत्सव काल

हे भावगीत! तुम कड़वी औषध लगा
मेरी जीभ को अपने गोत्र के
दुख –दर्द से अलग कर
पीछे चले जाते हो

जिंदगी वह कविता है
जो जीभ रहति गोत्र से
दर्द का निवारण करती है।

**शब्दार्थ-**

वंचित- ठगा हुआ, धोखा खाया हुआ
कपटी- धोखा देने वाला, छली
पैतृक -पुरखों का, पुश्तैनी
कुटिल- छली, चालबाज

**कविता का विवेचन –**

यूँ तो लेखनी या कलम सरकंडे या बांस की होती है, पर इस कविता के शीर्षक से यह पता चल जाता है कि वह किसी मामूली या आम लेखनी की बात नहीं करता, वह लोहे की लेखनी की बात करता है।साफ हो जाता है कि दलित कवि दूसरे आम कवियों की तरह प्रेम और वासना भरी कविताएं नहीं करता। वह जानता है कि किताबों की मंडी में उन हिंसक कवियों का सम्मान होता है जो चापलूसी करते हैं। गरीब की पीड़ा, भूख और परेशानियों का जिक्र तक नहीं करते। ये परपीड़ा को अपनी तरह से पेश करने वाले कवि बड़े होशियार हैं और धोखा देने में उस्तादी दिखाते हैं। वे वंचित की झोली नहीं भरते बल्कि उन धनी-मानी लोगों को वरदान देते हैं जो पहले से ही खुशहाल हैं। जैसे विप्र के भेष में आए वामन ने राजा बलि के साथ किया था,

वैसे ही ये अपनी विप्र-लीला से ठगते हैं। और आगे के कवि लोग इन लीलाओं का गान करके वाह वाही लूटते हैं। देखने-भालने में सभ्य लगते लोग अपना उल्लू सीधा करने में लगे हैं। सरकार और शासक वर्ग अपने फायदे को देखते हैं। देश पर कर्ज चढ़ रहा है। पर मजदूर यूनियनों के नेता आदि सही सही हिसाब-किताब रखने से बचते हैं। खजाने खाली हैं पर दिखावट जारी है। लोग वायदे करते हैं।ख्वाब दिखाते हैं। बचपन से लेकर जवानी और बुढ़ापे तक किसी अबूझे देव के जाल में सब फँसे हुए जीते हैं।

हमें ये सब लुभावने वाले और न पूरे होने वाले ख्वाबों से छुटकारा पाना होगा। यह धरती दलित, शोषित, वंचित और पीड़ित लोगों के सामूहिक प्रयास के हरी –भरी बनी है। इसमें गरीबों को खून पसीना लगा है। उन्होंने अपनी कुदाल से इस धरती पर अपने कर्मों की इबारत लिखी है। जबकि इन दूसरे कवियों, इतिहासकारों और कपटी लोगों ने बरसों से न जाने कितनी मन-घडन्त कहानियों को सुना सुनाकर अपना उल्लू सीधा किया है। उन्होंने हमारी मेहनत से हमारे द्वारा उगाई फसल को अपनी चालाकी से अपने कब्जे में कर रखा है। मेहनतकश इंसानों की फसल चतुराई से काटने वालों की बड़ाई करने वाले कवि उनसे कुछ कम नहीं जो अपने यज्ञ में नर-बलि दिया करते थे।

कवि कहता है कि वे ऐसे किसी कवि की पीढ़ी में शुमार नहीं होना चाहते। वे उस नाम और गोत्र से दूर ही रहना चाहते हैं जो आम आदमी के दुख-दर्द को नहीं ,खास लोगों के ऐशों आराम की चिंता करता है।

कवि कहता है कि असली जिंदगी उन आरामतलबों की नहीं, जो अपने नाम, कुल, गोत्र या वर्ण की बदौलत सब कुछ हड़पते चले जाते हैं। वे तो उसी तरह के राक्षस हैं जैसे नरमेघ करने वाले होते हैं। जिंदगी रूपी कविता तो दुख में दवा का काम करती है। सच्चा और अच्छा कवि मामूली कलम से भी जो कलाम लिखता है उसमें दलित और वचित का दर्द होता है और वह उनके लिए दवा का काम करती है।

**बोध प्रश्न**

- 'लौह लेखनी' से क्या मतलब निकलता है?
- जिंदगी की कविता कैसे दर्द दूर करती है?

## 15.4 पाठ सार

यह इकाई मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की निर्धारित कविताओं का विवेचन करने के लिए है। भारतीय साहित्य में दलित और आदिवासी विमर्श की अपनी खास जगह है। कवि और शिल्पकार राघवन अत्तौलि इन दोनों विमर्शों के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। हिंदी में रति सक्सेना द्वारा अनुवाद की गई इन कविताओं में दलित की पीड़ा और दुख दर्द हर पंक्ति में झलक झलक पड़ता है। कवि को उन कवियों और पुराने ग्रंथकारों से भी खासी नाराजगी है जिन्होंने दलित की पीड़ा को अपना अधिकार समझ लिया था। राघवन अत्तौलि की कविता में भुक्त-भोगी की पीड़ा है। वे अपनी माता को केंद्र में रखकर जब लिखते हैं तब पाठक का मन भी कवि की तरह भारी हो जाता है। नून-तेल-लकड़ी के चक्कर में पड़ा आदिवासी, वंचित और दलित

जीवन भर बदनामी और बेइज्जती के कडवे घूंट पीता है। फिर भी वह उनके ही उत्सवों में शिरकत करता है जो उसका सदियों से खून पीते रहे हैं।

## 15.5 पाठ की उपलब्धियां

इस इकाई के पाठ से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-

1) दलित और आदिवासी जीवन की अपनी समस्याएं हैं और उनका जिंदगी को देखने का नजरिया दूसरों से अलग है।

2) दलित जीवन को करीब से देखने वाले और इस जीवन के दुख को झेलने वाले मलयालम भाषा के कवि श्री राघवन अत्तौलि की कविता दलित जीवन की व्यथा और चिंताओं का प्रामाणिक दस्तावेज हैं।

3) वे दूसरे कवियों की तरह प्रेम, प्रकृति और परिवेश पर नहीं लिखते बल्कि समाज के वंचित और दमित लोगों के जीवन के दुख को कविता के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

4) अपनी कविता के लिए वे विषय भी अपने जीवन से लेते हैं। उनका उपनाम 'अत्तौलि' भी उनके गरीब गाँव का नाम है।

5) कविताएं एक दलित आदिवासी भुक्त-भोगी और दुखी कवि की पुकार हैं। 'कण्डति' कविता में वे अपनी वृद्ध माता की पीड़ा को शब्द देते हैं।

6) दलित की आवाज और उसके शब्द वेद, पुराणों, ग्रंथों और पुस्तकों में उस तरह नहीं पेश की जाती जैसे की जानी चाहिए। दलित के प्रति किये गए अपराध भी अनदेखे किये जाते हैं। कवि राघवन अत्तौलि अपनी लौह लेखनी से अर्से से चली आ रही रीति –नीति का पर्दाफ़ाश करता है।

7) आधुनिक भारतीय साहित्य में मलयालम भाषी राघवन अत्तौलि की कविताएं अपने तेवर, सख्ती और बेबाकी के लिए दलित साहित्य और विमर्श के क्षेत्र में खास जगह बनाती हैं।

## 15.6 शब्द संपदा

1. अभिजात - कुलीन, ऊंचे कुल का, रईस
2. भुक्त-भोगी - जिसे किसी बात या कार्य का अनुभव हो,जिसने सुख-दुख झेला हो, जिसे बेवजह किसी काम का दंड भोगना पड़ा हो।
3. दलित - कुचला हुआ, दबाया हुआ, पीड़ित, शोषित, जिसका हक छीना गया हो
4. नरमेघ - बड़े पैमाने पर मानव हत्या, नरसंहार
5. गोत्र - वंश, उन लोगों का समूह जिनका वंश एक मूल पुरुष पूर्वज से सीधा जुड़ा हो

6. बलि - किसी देवता या देवी के नाम पर मारा गया पशु, पूजन सामग्री, चढ़ावा, त्याग

7. धरा – पृथ्वी, जमीन

## 15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड –(अ)**

**दीर्घ प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।**

1. राघवन अत्तौलि की किसी एक प्रतिनिधि कविता के आधार पर उनका परिचय दीजिए।
2. भारतीय साहित्य के दलित विमर्शकार के रूप में मलयालम कवि राघवन अत्तौलि की कविताओं की विशेषताओं पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
3. 'लौह लेखनी' से कवि का क्या तात्पर्य है? पठित कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4. 'दलित व्यथा की दस्तावेज' के रूप में राघवन की कविताओं की समीक्षा कीजिए।

**खंड –(ब)**

**लघु प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।**

1. 'कण्डति' कविता के कथ्य पर टिप्पणी कीजिए।
2. 'वाल्मीक पर्व' कविता के शीर्षक के महत्व को अपने शब्दों में लिखिए।
3. राघवन अत्तौलि को अभिजात कवियों से क्या शिकायत है?
4. मेहनतकश इंसान लोहे की कलम से अपना कलाम कैसे लिखता है? स्पष्ट कीजिए।

**खंड- (स)**

I. सही विकल्प चुनिए

1. राघवन अत्तौलि कवि के अलावा और क्या हैं?

अ) अध्यापक आ) शिल्पकार इ) समाज सुधारक ई) यूट्यूबर

2. दलित लेखन का प्रमुख स्वर है?

अ) पछतावा आ) आक्रोश इ) करुणा ई) प्रेम

3. 'इनकी रचनाएं व्यथा की दस्तावेज हैं।" यह किसने कहा है?

अ) गांधी जी आ) अंबेडकर

इ) राघवन अत्तौलि ई) बजरंग बिहारी तिवारी

4. राजा बलि से वामन क्या मांगने आए थे?

अ) वरदान आ) भिक्षा इ) दान ई) अनुदान

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. राघवन अत्तौलि की कविता _________________ से पैदा हुई कविता है।
2. __________________ कविता का शीर्षक कवि राघवन की माता के नाम पर भी है।
3. कवि राघवन का उपनाम 'अत्तौलि' वास्तव में उनके _____________ का नाम भी है।
4. राघवन अत्तौलि की _________________ शीर्षक कविता एक गरीब दलित महिला की दुर्दशा पर एक कड़वी टिप्पणी है।

III. सुमेल कीजिए

| | |
|---|---|
| 1. राघवन अत्तौलि | क) आदि कवि |
| 2. रति सक्सेना | ख) दलित वृद्धा |
| 3. कण्डति | ग) दलित कवि |
| 4. वाल्मीकि | घ) अनुवादक |

## 15 .8 पठनीय पुस्तकें


1. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी(2002): संपादक रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. https://www.newindianexpress.com/cities/kochi/2013/oct/28/Cast-away-in-the-world-of-creativity-530990.html

## इकाई 16 : तेलुगु कविता : जल रहीं झोपड़ियाँ कविता संग्रह – बोई भीमन्ना

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 मूल पाठ : तेलुगु कविता : जल रहीं झोपड़ियाँ कविता संग्रह – बोई भीमन्ना

16.3.1 जल रही हैं झोपड़ियाँ

16.3.2 धर्म

16.3.3 जाति पाँति

16.3.4 चढ़ने दीजिए ऊपर की सीढि

16.3.5 न बदलने वाला

16.3.1 हम आधुनिक हैं

16.4 पाठ सार

16.6 पाठ की उपलब्धियाँ

16.6 शब्द संपदा

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

16.8 पठनीय पुस्तकें

### 16.1 प्रस्तावना

तेलुगु के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, आलोचक, पद्मभूषण डॉ. बोई भीमन्ना का भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। वे अपने साहित्य में समाज का यथार्थ रूप का वर्णन किया है। बोई भीमन्ना तेलुगु के महाकवियों में से एक हैं। उन्होंने सभी विधाओं में लेखन किया है। उनके साहित्य में सामाजिक यथार्थ, दलित और शोषित समाज के प्रति सहानुभूति को व्यक्त किया है। उनमें मानवीय संवेदना झलक रही थी।

### 16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- तेलुगु साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- तेलुगु कवि बोई भीमन्ना से परिचित हो सकेंगे।
- बोई भीमन्ना के रचनाओं को जान सकेंगे।
- बोई भीमन्ना के कविताओं को जान सकेंगे।

## 16.3 मूल पाठ : डॉ. बोई भीमन्ना के प्रमुख कविताएँ

### 16.3.1 बोई भीमन्ना का जीवन परिचय-

बोई भीमन्ना आधुनिक तेलुगु कविता के एक सशक्त कवि हैं। उनका जन्म 19 सितम्बर 1911 को मामीडीकुदुरू गाँव, पूर्व गोदावरी जिला, आंध्र प्रदेश में हुआ। वे एक दलित परिवार से आते हैं। उनके पिता पुल्लय्या और माता नागम्मा थे। बोई भीमन्ना के भाई बहनों की संख्या छः थी उनमें पांच भाई थे और एक बहन थी। उन्होंने 1935 में पीठापुर राजा कॉलेज से बी। ए की उपाधि प्राप्त की। सन् 1937 में बीएड किया है।

बोई भीमन्ना सबसे पहले (सन् 1940 से 1945 ई. तक) शिक्षक के रूप में कार्य किया। उन्होंने आन्ध्रा प्रभा के संपादक, आंध्रा प्रदेश सरकार में अनुवाद निर्देशक, रजिस्ट्रार ऑफ़ बुक्स कई पदों पर कार्य किया। सन् 1946 ई से राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने प्रदेश कांग्रेस के संचालक और 'हरिजन सेवक संघ' के संयुक्त सचिव के रूप में कार्य किया। सन् 1978 से 1984 ई। तक MLC के सदस्य के रूप में रहें। डॉ. बोई भीमन्ना को भारत सरकार द्वारा सन् 1973 ई. में पद्मश्री और सन् 2001 ई. को पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। अंततः 16 दिसम्बर 2005 को हैदराबाद में अंतिम सांस ली हैं।

**रचनाएँ-**

बोई भीमन्ना ने लगभग सत्तर रचनाएँ प्रकाशित की। इन्होंने 11 वर्ष से ही कविता लिखना शुरू किया था। भीमन्ना ने काव्य, गीत, वचन और नाटक भी लिखें हैं। इसी के साथ आकाशवाणी के लिए भाव गीतों की रचना भी की और डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखी कुछ किताबों का अनुवाद तेलुगु भाषा में किया है। उनके प्रमुख रचनाएँ -

नाटक - पालेरू, कुलि राजू, रागवाशिष्ठ, आदि कवि वाल्मीकि आदि हैं।

काव्य - बोम्मा, दिन सभा, मधुबाला, अशोकबनिलो रामुडु आदि।

काव्य संकलन – राभिलु, बामन्ना उगादुलु और गुडिसेलु कालिपोतुनाई आदि।

'गुडिसेलु कालिपोतुनाई' काव्य संकलन को 1976 में केंद्रीय साहित्य आकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। इस काव्य संकलन में 53 गद्य कविताएँ संकलित हैं।

### 16.3.1 जल रही हैं झोपड़ियाँ

जल रही हैं झोपड़ियाँ
अरे रे .....जल रहीं ...
ये झोपड़ियाँ किसकी होंगी ?
बेचारे, महार या चमार की होंगी
नहीं तो झोपड़ियाँ किसकी होंगी ?
शायद बहुत लोगों की होगी ये झोपड़ियाँ
सच में वही है इस देश का धर्म
साल भर में कम से कम का धर्म
जल जाती हैं ये झोपड़ियाँ

फिर से जलने के लिए
आती हैं कहाँ से ?
        हाँ, यह सच बात है
        कहाँ से आती हैं ये झोपड़ियाँ ?
        यही है, अपने धर्म की हकीकत
        धर्म की स्थापना के लिए इन झोपड़ियों की
        अवतरित होती है धर्म संस्थापनार्थाय
        बार-बार ये झोपड़ियाँ
        नाश होती है
        पुरानी झोपड़ी का
        फिर से पैदा होती हैं नयी झोपड़ियों का
कहाँ तक फैला जाता है
यह जहर का जाल
झोपड़ियों वालों को
यह हकीकत
मालूम होने तक

| **निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए।<br>इस कविता का मौन वाचन कीजिए |
|---|

**भाव पक्ष -** जल रही है झोपड़ियाँ कविता के माध्यम से बोई भीमन्ना दलित समाज का वर्णन किया है। वे प्रश्न करते हैं कि यह झोपड़ियाँ किसके होंगे ? वह सिर्फ महार, मांग की होती हैं और किसके हो सकते हैं ? भारतीय गरीबों की होती हैं झोपड़ियाँ। इस देश में अधिकांश परिवार झोपड़ियों में निवास करता है, क्योंकि देश में गरीब लोगों का प्रतिशत ज्यादा है, यह झोपड़ियाँ साल में एक बार तो जलती हैं। एक बार जल गई झोपड़ियाँ फिर से कैसे आती हैं। झोपड़ियाँ जलकर खाक हो जाती हैं फिर से कैसे आती हैं झोपड़ियाँ ? बोई भीमन्ना कहते हैं कि जल गई झोपड़ियों की जगह फिर से एक नयी झोपड़ी तैयार हो जाती हैं। यह झोपड़ियाँ निशक्त, निरीह, लाचार दलितों की ही होती हैं। जलानेवाले किसी ऊँच जाति के ही होंगे। इस कविता के माध्यम से भारतीय दलितों की दयनीय स्थिति को दर्शया गया है।

**कला पक्ष –**

1. झोपड़ियों में रहने वाले दलित, गरीब लोगों का जीवन दर्शन है।
2. झोपड़ियाँ दलितों की आर्थिक दयनीयता, शोषण का कटु एवं वीभत्स यथार्थ का प्रतीक हैं।
3. इस कविता में दलितों की वेदना है। इस की भाषा प्रश्नात्मक के साथ विवरणात्मक है।

**बोध प्रश्न –**

- झोपड़ियाँ किसके हैं ?

### 16.3.2 धर्म

शिवाय नमः, नारायणाय नमः
शक्तिये नमः, बुद्धाय नमः
अल्लाय नमः , यहोवाय नमः
कार्ल मार्क्स वे नमः
महात्मा गांधीये नमः
डॉ. अम्बेडकर नमः, प्रकाशाय नमः
स्वामी आप कौन हैं ?
मैं....मैं.... सर्वधर्म समन्वयवादी हूँ
हिन्दू है क्या आप ?
क्यों ऐसा पूछते हो ?
माफ़ कीजिएगा
सिर्फ एक हिन्दू में ही रहता है
इस तरह का पागलपन
मानव माने जानवर है
धर्म माने एक तरह का पागलपन है
अलग-अलग पागलपन
आदमी को है धर्म का पागलपन
हिन्दू को एक विश्व समन्वय का
ज्यादा पागलपन
हे सर्व धर्म समन्ववयवादी
'कृणवम तो विश्वं आर्यम' कहते हुए
जंगल के विलाप से
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम कहते हुए
आजादी आन्दोलन में देश
जिसने भारत जाति के
कानों को फटा दिया था
तुम्हारे तक इतने सारे दिमागवाले
गंगा, गोदावरी, कावेरी के
सार गर्भित मिट्टी में
कैसी पैदा हुए थे ? ये सब
काल अजीब सा है
हे मूर्ख, धर्म जहर ही जहर है
किसी ने उसे कहा था नशीली दवा

वह बिल्कुल झूठ है
धर्म ऐसा विष है
जो आत्मा को मारता है
मिला हुआ तरह-तरह के
विषों का काढ़ा है
अमृत बन सकता है बाबू
आपके सर्व धर्म समन्वय की
कोशिश भी वैसा है
वह विष है
उसका नींव से करो उन्मूलन
मानव के मन से
धर्म हटाना जरुरी है
विश्व मानव की भलाई
सारे मानव के जीवन में
भर देता है प्रकाश
सच्चाई का उदय होता है
हर एक जीव संपति से समृद्ध होते हैं
प्रकाशमान होती है मानव की आत्मा
बादलों में से आया हुआ सूरज सा

**निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए

**भाव पक्ष -** बोई भीमन्ना ने 'धर्म' कविता के माध्यम से सभी धर्मों को समन्वय की बात करते हैं। आदमी धर्म के लिए पागल बनते जा रहा है। लेकिन मानव शोषण का जड़ धर्म ही है। दलितों का शोषण एक धर्म की वजह से है। पाखण्ड के नाम पर हिन्दू धर्म है लेकिन अन्य धर्म भी इससे मुक्त नहीं हैं। सभी धर्मों में थोडा बहुत पाखंड देखने को मिलता है। कवि कहता है कि मानव माने जानवर, धर्म माने आदमी का पागलपन। देश आजादी के समय एक ही जाति थी वह भारत जाति। यह सब गंगा, गोदावरी, कावेरी सार गर्भित मिट्टी में कैसे पैदा हुए थे ? यह काल अजीब था। कवि आगे कहते हैं हे मूर्ख धर्म एक जहर है, किसी ने धर्म को नशीली दवा कहा था वह सरासर झूठ है। धर्म विष है और आत्मा को मारता है। धर्म तरह तरह के विषों का मिला हुआ काढ़ा है। धर्म समन्वय से अमृत बन सकता है, धर्म विष को मानव मन से निकालना जरुरी है। प्रकाशमय जीवन विश्व मानव की भलाई सभी मानव में भर देता है। सच्चाई का उदय होता है। मानव की आत्मा सूरज जैसी बादलों में से आती हैं। पूरा विश्व मानव जीवन सुखमय बन जाता है। कवि का कहना है कि धर्म एक मानव-मानव में भेद भाव पैदा करता है। धर्म के कारण ही मानव शोषित है। सभी धर्मों में पाखड का भंडार भरा हुआ है।

**कला पक्ष**

1. मानव धर्म के लिए पागलपन है।
2. धर्म को नशा भी कहा गया है।
3. धर्म की तुलना विष के समान किया है।
4. कवि ने कविता में तुक का प्रयोग किया है।
5. आम भाषा का प्रयोग हुआ है।

**बोध प्रश्न**

- अमृत कैसा बन सकता है ?

### 16.3.3 जाति पाँति

आसमान में है आग ही आग
अरे, कुछ जल रहा है,
जो जलते हुए गिर रहा है
क्या बचा है ? भस्म
        एक पल के पहले तक, वह हवाई जहाज है,
        मूल्यवान है, जो करोडो रुपयों का है
        अब वह बन गया है राख, मिट्टी
        उसमें जो यात्री हैं करोड़पति और
        उत्तराधिकारी हैं कुबेर के, अब ये बन गए हैं लाशों के ढेर
स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बूढ़े
हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और बौद्ध
मंत्रीगण, कर्मचारीगण, व्यापारी आदि
पल के पहले वे कई तरह के जन हैं
अब सब एक ही तरह की लाश हैं
जाति, पेशा, धर्म रहित मांड खंड हैं वे
        मुख कहाँ है, कमर कहाँ है ? पैर कहाँ है, हाथ कहाँ है ?
        कपाल कहाँ है, तोंद कहाँ है ?
सच में अलग-अलग रूप में क्यों है वहां ...
सब के पुकारने वाले विधि नाम के धर्मनामक शेर हैं
हवाई-जहाज नाम से बुलाने वाला
एक जंगली जानवर के
टुकड़े-टुकड़े कर रखा हुआ ढेर है वहाँ
सारे धर्म, सारी जातियाँ, सारी पेशाएँ
सारे वर्ग मिलकर बहायी आँसू की व्यथा है वह
        हे मानव, हे मूर्ख, हे बुद्धिहीन

उधर देख, कब्रिस्तान की चिता की ज्वालाएँ हैं वे
मानव एक ही है, मानवता भी एक ही है
वे संयुक्त अग्नि संस्कार की ज्वालाएँ हैं वे
जाति पाँति, पेशा, की भेद भावनाओं की अंतिम क्रियाएँ
सीखो अनुभव से, बदल लो कपड़े

**निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए

**भाव पक्ष –**

कवि कहता है कि असमान सभी के लिए समान है किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता है और उसमें आग ही आग है। कुछ क्षण के पहले इस असमान में हवाई जहाज है जो जल रही थी वह जहाज मूल्यवान है और करोंड़ों की है। उसका अस्तित्व अब बचा नहीं है। वह जलकर ख़ाक बन गई है। अब राख हो गई, मिट्टी में मिल गई। उसमें जो यात्री थे करोड़पति थे। कुछ उनके उत्तराधिकारी कुबेर लोग भी थे। यह सभी अब लाशों के ढेर बन गए हैं। कवि का कहना है कि एक दिन मनुष्य इस संसार से मुक्त होगा कोई नहीं बचेगा। गरीब और श्रीमंत सब मिट्टी में मिल जाएगें। फिर किस बात का घमंड। क्यों भेदभाव की भावना, यह सब मिटा दो।

स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और बौद्ध या मंत्रीगण, कर्मचारीगण, व्यापारी ये सब कुच्छ क्षण के लिए अलग–अलग जन थे लेकिन जैसे ही जहाज जल गई तो उसमें एक ही तरह के लाश बन गए हैं। जाति, धर्म और पेशे से जुड़े हुए लोग थे अब उनका मुख, कमर, पैर और हाथ कहाँ है ? कपाल कहा है ? तोंद कहा है ? अब उनका शरीर पहचानने लायक नहीं रहा है। देह के चितड़े बन गए हैं। फिर जाति भेद क्यों ? सब मिटा दो।

कई रूप थे सब को अलग-अलग पहचान थी। धर्म के नाम पर सब अलग – अलग थे । हवाई जहाज एक जंगली जानवर की तरह ढेर हो गया। सारे धर्म, जाति और पेशाएं सब वर्ग मिलकर बहायी है अपने आँसू। हे मानव, हे मूर्ख, हे बुद्धिहीन व्यक्ति देख कब्रिस्तान में जो चिता जल रही है वह एक मानव की है, उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। वह संयुक्त अग्नि संस्कार की ज्वालाएँ हैं, किसी प्रकार का भेदभाव नहीं न जाति, न पेशा, सब का अंतिम संस्कार हो रहा है। सिख ले अपने अनुभवों से बदल दे अपने कपड़ों को। क्यों करता है भेदभाव को बढ़ावा इसे रोक दो। मानव मानवता को मान लो।

**कला पक्ष-**

1. यह कविता अनुदित है।
2. इसमें हवाई जहाज को एक जंगली जानवर का प्रतीक के रूप में माना गया है।
3. धार्मिकता की नकारात्मक भाषा का प्रयोग है।
4. भाषा शैली वर्णात्मक है।

**बोध प्रश्न**

- हवाई जहाज में कौन थे ?

### 16.3.4 चढ़ने दीजिए ऊपर की सीढ़ि

रामायण, महाभारत और पुराणों को
पढ़िये साहित्यिक दृष्टि से देखिए
ऐसे पात्रों का
भक्ति करुण और श्रृंगार वचनों को
सुनिए पसंद की इच्छा से
आनंद का अनुभव कीजिए
लेकिन....
ये पुरानी कथाएँ है
सच्चाई को मत भूलिए
उन दिनों में कहीं-कहीं जन्म लेकर
अच्छा या बुरा जीवन बीताकर
वहीं मरे व्यक्तियों की गाथाएँ हैं वे
आज वे जीवित नहीं है
त्रेता युग में जन्म लिया था राम ने
उसी युग में अंत हुआ था वह महाराजा ने
अगर आप को वह आदर्श पुरुष हो तो अपनाइए
उसके द्वारा दिखाए गए रास्ते को
परन्तु ....
आज राम नाम से उन्हें पुकारते हो तो
भ्रम में मत पढ़िए कि वह आएगा
किसी को, कहीं बताया था
कहीं दिखाई दिया था जैसी खबरें
रहती हैं किसी धर्म प्रचारक के दंभ में
और सिर्फ अंध भक्तों के मनो बिम्ब में
सच नहीं हैं वे, नहीं होंगे
अगर 'राम' शब्द महान हो तो
वह राम कौसल्या का बेटा नहीं है
वह रामायण का राम नहीं है
शब्दार्थ ने मार डाला था जाति की आत्मा की शक्ति को
उन दिनों कोई भी व्यक्ति
कृष्णा नाम से बुलाते हैं तो
संभव होगा कि कृष्ण का प्रत्यक्ष साक्षात्कार
जब कृष्ण की मृत्यु हुई थी

दूसरे दिन ही साला पार्थ की
देखभाल करने वाले कोई नहीं थे
उन दिनों जो मर गए थे
आज वे कैसे मदद करेगा ?
अगर राम, कृष्ण अवतार मूर्ति हो तो....
मूल भगवान विष्णु की पूजा कर सकते हैं ना
क्यों त्याग किया गया अशाश्वत अवतारों को क्यों
एक-एक अवतार लिया गया था
एक-एक काम पूरा करने के लिए
उनके व्यक्तित्व के प्रति अगर आदर भाव हो तो
उसके अपेक्षा जिसने अधिक रूप में
मानव – सेवा किए थे गांधी, अम्बेडकर
जैसे महात्माओं को भी उस सूची में जोड़ दीजिए
वीरों की पूजा करना अच्छा ही है
परन्तु....
हमारे दुखों को, इच्छाओं को पूरा करने के लिए
बहुत पहले मरे हुए वीरों को बुलाते हुए
केवल भजन गाते हुए बैठने से
किसी फल की प्राप्ति नहीं होती है
पहचानिए...
प्रधान रूप से युवकों को बताता हूँ....
कम से कम भ्रम से बाहर आइए आप
चढ़ने दीजिए मानव को ऊपर की सीढ़ि

**निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए.
इस कविता का मौन वाचन कीजिए

**भावार्थ -** कवि कहता है कि रामायण, महाभारत और पुराणों को एक साहित्यिक दृष्टि से पढ़िए और उनकी कथाओं को नाटक की तरह, कला के रूप में देखिए। ऐसे पात्रों का करुण और शृंगार वचनों को सुनकर इच्छाओं को आनंद का अनुभव कीजिए। लेकिन ये पुरानी कथाएँ हैं इस सच को मत भूलिए। उन दिनों में कहीं कहीं जन्म लेकर अच्छा या बुरा जीवन बिताने वाले मरे हुए व्यक्ति की गाथाएँ हैं, वे आज जीवित नहीं है लेकिन उनकी गाथाएँ हैं। त्रेता युग में जन्म लिया राम ने उसी युग में मृत्यु हुई महाराजा की। आप को वही आदर्श पुरुष हो तो उसी का ही मार्गदर्शन को स्वीकार करों। लेकिन आज राम के नाम से पुकारते हो तो भ्रम में मत पढ़िए वह आएगा। किसी को कहीं बताया था कि मैं आऊंगा। किसी को राम दिखाई दिया कहकर समाचार में रहते हैं, किसी धर्म प्रचारक या अंध भक्तों के मनो बिम्ब का चित्र है। यह सच नहीं कि वो हैं, लेकिन नहीं है वह। अगर राम शब्द को मंत्र शक्ति हो तो वह राम कौसल्या का बेटा नहीं है।

अगर आत्माराम हो तो वह रामायण का राम नहीं है। शब्द सामर्थ्य मार डाला है जाति की आत्म शक्ति को।

उन दिनों में कृष्ण नाम से प्रत्येक व्यक्ति को संबोधित करते थे। कृष्ण का प्रत्यक्ष रूप से मूल्य था। जब कृष्ण की मृत्यु हुई तब दूसरे ही दिन पार्थिव को देखभाल करनेवाला कोई नहीं था। उन दिनों में मरने वाले आज कैसे साहयता करेंगे ? अगर राम, कृष्ण अवतार मूर्ति हो तो फिर मूल भगवान विष्णु की ही पूजा कर सकते हो ना क्यों त्याग किया गया अशाश्वत अवतारों को ? एक-एक अवतार लिया गया था, एक-एक काम पूरा करने के लिए। उनके व्यक्तित्व के प्रति आदर भाव हो तो उसकी अपेक्षा जिसने अधिक रूप में मानव सेवा किए हैं वे गांधी, अम्बेडकर जैसे महात्माओं को भी सूची में जोड़ सकते हो। वीरों की पूजा करना अच्छा है लेकिन हमारे दुःख को इच्छाओं को पूरा करने के लिए कभी की मरे हुए वीरों को बुलाते हुए केवल भजन गाते हुए बैठने से किसी प्रकार का फल की प्राप्ति नहीं होगी ऐसा अहसास कराएँ। कवि प्रधान रूप से युवकों को कहते हैं कि कम से कम ऐसे भ्रम से बाहर आइए। अपने कार्य में विश्वास रखिए। और चढ़ने दीजिए मानव को ऊपर की सीढि।

**कला पक्ष –**

1. काव्य में मिथकों का प्रतिरोध किया गया है।
2. वीर और महात्माओं का समर्थन है।
3. साधारण भाषा शैली का प्रयोग है।
4. यथार्थ एवं वास्तविकता पर बल दिया है।

बोध प्रश्न -

### 16.3.5 न बदलने वाला

वह ? वह ?
मर कर भी नहीं बदलेगा
    आदमी बदल जाए, समाज बदल जाए
    दुनिया बदल जाए, वह नहीं बदलेगा
ऐसा न बदलने वाला आत्माराम
कौन है ऐसा सोच रहे हो ना?
व आत्माराम नहीं जी
वह दलित है, केवल अछूत है
भीख मांग के जीने वाला
उसे आपने कभी देखा क्या?
नहीं देखा होगा,
वह न दिखने वाला है
उसकी खोपड़ी में आपने
कुछ डाला है क्या ? डाला नहीं होगा,

वह पहुँच नहीं पाएगा ?
उसके हाथों में
क्या है ऐसा सोच रहे हो ना?
वह मिट्टी की खोपड़ी भी नहीं है
सर की हड्डी है
बकरी की, भैंस की नहीं है
इंसान का,
वह इंसान के सर की हड्डी है
अब कितना गन्दा है
कभी देखा है क्या उसके पैर
उसके पैरों के नीचे कितनी गंदगी है
इसलिए उसे अछूत कहा होगा शायद
दुनिया की सारी गंदगी
छुता हुआ नजर आता है
उसने जो बांधा वह गंदा खाल
किसी मरे हुए सो
जानवर का ही होगा
रहने को नहीं, बांधने के लिए भी
कुछ नहीं है उसके पास
चाहे तो अपनी कंपनी के
गोदाम में धोकर
सुगंध लगाकर सुखाये हुए
ताजे चमड़े कितने नहीं हैं
एक चमडा उसके मुँह पर फेंक कर
अछूत सेवा करने के लिए
आवार्ड ले सकते हो, पर
उसके लिए, क्यों व्यर्थ है
बिना पब्लिसिटी की प्रजासेवा
बाप रे, साँप, साँप
उसका घर श्मशान है शायद
उसे यहाँ क्यों लाया है
कब आया है वह यहाँ
यही उसका घर है
समझकर बैठा है
अहो, उसका साँप फूस करता है तो

मेरी रीढ़ की हड्डी बूस कहती है
उसके बालों में क्या है
गंगा तीर्थ ? है क्या उसका श्राद्ध
वह ताड़ी है जी ताड़ी
वह बाजू का नहीं है
वह किसी पैसे वाले के घर से
चुराया गया है शायद
यह पूरा मर्द है
वह चाँदनी,
चाँदी की कटोरी कहाँ के हैं
शायद वह झुकाई बांधा नव चंद्र सा
ताड़ी का नाला हो सकता है
मद्य निषेध को रद्द किया था पर
उसे अभी मैं
गिरफ्तार कर सकता हूँ
देखो बंधी हुई चोटी
वह गन्दगी भरा शरीर
उस पर धुल भरा हुआ
किसी-किसी की जलायी गयी राख
वह एक बैल से कृषि करनेवाला
निगलने के लिए
एक दाना नहीं है उसे
पेट, आँख भूख से जल रहे हैं
फिर भी सामने के
दुकान से कोई चीज छीन कर नहीं खा सकता है
उसके पीछे चार कुत्ते भी हैं
अरे उस तरफ मत जाओ
कान्टेंगे वे. उसके जैसे वे भी
हर समय नशे में रहते हैं
वह सिर्फ मारा हुआ अछूत ही नहीं
असली गिरिजन भी है
वह तो बदलता नहीं है
वदलने वाले लोगों को भी
बदलने वाले समाज को भी
अपने जैसे बदलता हुआ

परम दुष्ट है वह
अब तक आप जान लिए होंगे
आज के नव नागरिक
अत्याधुनिक, हिप्पी बढ़ाने वाले,
सभी को
वह ही आदि पुरुष नहीं है क्या
फिर भी वह दिशाहीन दिगंबर है
वह अछूत अवर्ण भिक्षान्देही है
इस अमीर सवर्ण गली
में क्यूँ आया था
उसे कितना भी आरक्षण देने पर भी
कितनी सहानुभूति जताने पर भी
कितने कानून और
संविधान के रथ पर इसे
थोड़ा आगे ले जाने के लिए सोचते हैं
फिर भी वह एक कदम भी
आगे नहीं बढ़ता है
उसे, उसके जीर्णान्ध की तामस ही
पुर्नेध की श्रेय इतना ही है
वह बिलकुल बदलने वाला नहीं है

**निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए।
इस कविता का मौन वाचन कीजिए

**भावपक्ष -** बोई भीमन्ना ने 'न बदलने वाला' कविता के माध्यम से दलित समाज की स्थिति को दर्शाता है। वे कहते हैं कि मर कर भी नहीं बदलेगा। मनुष्य, समाज, दुनिया सब बदल जाएंगे लेकिन वह नहीं बदलेगा। यह न बदलने वाला आत्माराम कौन है ? वह आत्माराम नहीं वह दलित है, अछूत है, भीख मांगकर जीनेवाला है। कवि पूछता है कि आप कभी उसे देखा ? नहीं देखा होगा, वह न दिखने वाला है। उसकी खोपड़ी में कुछ डाला होगा क्या ? नहीं डाला होगा और उसके पास पहुँच ही नहीं पायेगा। यहाँ कवि का कहना है कि दलित समाज पर किसी का ध्यान नहीं गया।

आप सोच रहें होंगे उसके हाथों में क्या है वह मिट्टी की खोपड़ी नहीं है सर की हड्डी है। बकरी, भैंस की नहीं इंसान की है। यह कितना गंदा है। दलित झाड़ू मार कर पूरी दुनियाँ की गंदगी साफ़ करता है। कवि पूछता है कभी आपने उसके पैर देखे हो ? उसके पैर कितने गंदे हैं। इसलिए ही आप उसे अछूत कहा होगा।

उसने बाँध कर रखा गंदा खाल किसी मरा हुआ जानवर का होगा। चाहे तो अपनी कंपनी के गोदाम में सुगंध लगाकर सुखाये हुए ताज़ी चमड़ी तो नहीं है।

कवि कहता है कि दलित की सेवा करने के नाम से कई लोग आवार्ड ले सकते हैं। लेकिन उसके लिए एक प्रेसिडेंट, पत्रकार और फोटोग्राफ़र की जरुरत है वह समय पर मिलना चाहिए। नहीं तो उसकी प्रजासेवा बिना पब्लिसिटी की व्यर्थ होगी।

साँप यहाँ सवर्ण जाति के लोगों का प्रतीक है। दलित श्मशान रहने वाला वह गाँव में क्यों आया, आया भी तो घर यहीं कर बैठा है। सवर्णों की डांट से तो वह डर जाता है। कवि भीमन्ना ने व्यंग्य किया है कि दलित गंदा रहता है उसके जो बाल गंदे है। बालों का जटा बन गया है। उसे धोने से जो गंदा पानीनिकलता है इसी पानी को वह गंगा जल कहा रहा है। गंगा जल नहीं वह ताड़ी है जो दलित उसका सेवन करते हैं वही जमा हुआ है।

दलित की बंधी हुई चोटी पर जलाई हुई चिंताएं की राख उसकी चोटी पर बैठ गई है। दलित एक बैल से खेती करता है मेहनत करता है लेकिन उसके घर में खाने के लिए एक दाना भी नहीं है। पेट आँखे भूख से जल रही है। इतने भूखे होने पर भी वह दुकान से खरिद कर खा नहीं सकता, उसके साथ जो कुत्ते है वह भी नशे में रहते हैं वे कान्टेंगे।

ऐसी स्थिति दलित ही नहीं है वह गरिजन भी है जो कभी बदल नहीं सकते। आधुनिक में हिप्पी बढ़ाने वाले यह सभी लोग आदि पुरुष नहीं। वह दिशाहीन दिगंबर जो अछूत अवर्ण भिखारी है। यह अमीर सवर्णों के गली में क्यों आया। उसे कितना बी आरक्षण देनेपर सहानुभूति जतानी पर भी और अलग से कानून बनाने से भी और संविधान के रथ पर आगे ले जाने से भी वह आगे नहीं बढ़ता वह बिलकुल ही बढ़ानेवाला नहीं है।

**कला पक्ष –**

1. इस काव्य में कमत्तर या नीच दिखाने की भाषा है।
2. पीड़ित होने का एहसास है।
3. इसमें कहीं कहीं तुक बंदी का भी प्रयोग हुआ है।
4. व्यंगात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

### 16.3.6 हम आधुनिक हैं

आगे बढ़ो कहते हुए पीछे से भागते हैं हम
आगे जाने वालों को देशद्रोही कहकर मारते हैं हम
इंदिरा से मिलकर साम्यवाद का ऐलान करते हैं
हिरण्याक्ष के गोद में बैठकर छिप जाते हैं हम
आधुनिक हैं हम

कहाँ भाग रहे हैं पूछे तो कहते हैं पता नहीं
तेज की कल्पना हैं, पीछे पड़कर दौड़ रहे हैं
यंत्रों का निर्माण किए है, उसमें गिर पिसा रहे हैं
अनुबम को फोड़े दिए हैं, हम उस से मर रहे हैं

आधुनिक हैं हम
ईशा वास्या मिदम जगत'  कहते हैं
अँधेरे के मंदिर में उसे बाँधते हैं
मानव सेवा माधव सेवा कहते हैं
इसलिए हमें ही पूजने को कहते हैं
आधुनिक हैं हम
घर के काम करते नहीं
खाना पकाते नहीं कहते हैं
घर का नौकर, बाहर का नौकर पति ही है
अपने को सजाते हैं हम
आखिर बच्चों को
पैदा नहीं करते हैं
दिमाग को ताला लगाते हैं
मुँह को छुट्टी ही नहीं देते हैं
आधुनिक हैं हम
रोज दो बार सिनेमा देखते हैं
भगवान की तस्वीर को फाड़कर
नायिका की तस्वीर चढाते हैं हम
रेडियो सुनते हैं, अखबार पढ़ते हैं
तैयार होते हैं कहाँ जाते हैं नहीं बता सकते हैं
आधुनिक हैं हम
भिखारी को एक पैसा भी नहीं देते हैं,
कुबेरों क दावत देते हैं
पारिवारिक जीवन में आग लगाते हैं
बाजू रहकर आग की गर्मी से
दूर करते हैं डंक
स्वच्छ शीलवान पर कलंक लगाते हैं
अकेली औरत जाती है तो बंदर बन जाते हैं
आधुनिक हैं हम
खाना नहीं है कहकर चिल्लाते हैं, पैरों पर पड़ते हैं
जिसने खिलाया था
उसी के पात्र को छेद करते हैं
जो मालूम नहीं है फिर भी बकते हैं
जो मालूम नहीं है फिर भी बकते हैं
बाजा-बाजों के साथ जुलुस निकलते हैं

कहते हैं खाना और चूना एक ही है वह परब्रह्म स्वरुप है
खाना हम खाते हैं
चूना दूसरों के लिए छोड़ते हैं
काम नहीं करते हैं
करने वालों को करने नहीं देते हैं
दिमाग को डिस्मिस कर के
मुँह खोलकर जीतते हैं
आधुनिक हैं हम

घर में बदबू फैलाते हैं
बाहर सुगंध फैलाते हैं
मन को सुखा बहलाते हैं हम
शरीर को सजाते हैं हम
इड़ा  का बहिष्कार करते हैं हम
दुराशा को दावत देते हैं हम
स्वार्थ के झंडे बांधकर फहराते हैं
हम आधुनिक हैं हम

कामयावी से दोस्ती करते हैं हम
काम हुए पुराने मित्रों को दूर भगाते हैं
कहीं पर बी अच्छा हुआ तो
हमारा कहते हैं
उसे प्रेसिडेंट वनाने में
हमारी मेहनत ही है कहते हैं
आधुनिक हैं हम

सभा में बैठते हैं हम
वाद वादा बरसाते हैं हम
जाति का खंडन करते हैं
समता का ऐलान करते हैं हम
हम कहते हैं आप और हम
सब एक हैं अलग रहते हैं
अपने कमरे में घुसकर नहा लेते हैं
आधुनिक हैं हम

बच्चों को पैदा करेंगे हम
उन्हें बाजार में नीलामी करेंगे हम
मनुष्य जाति को खाएँगे हम
जानवरों के लिए आँसू बहते हैं हम

चौराहे के बीच
कानून के पाठ पढ़ाते हैं हम
गली-गली थूकते हैं हम
आधुनिक हैं हम
दस लाख का काम कहकर
गिन लेते हैं हम
पच्चीस लाख का टेंडर देते हैं हम
आखिर पांच लाख ही
खर्च करते हैं हम
झूठीं बातों से प्रोजेक्ट बाँधते हैं हम
आधुनिक हैं हम
हमें नहीं दिखाती है
शहरों में गरीब बस्तियाँ
हमें सुनाई नहीं देते हैं
गाँव के गरीब जनता की चीत्कार
हम ऊपर ही देखते हैं उपग्रहों को
रेडियो में सुनते हैं मुनियों के बारे में
आधुनिक हैं हम
कौए मारते हैं हम
चील को खिलाते हैं हम
हमारी मुर्गियों के बच्चों को उठाकर ले जाते तो रोते हैं हम
बीते हुए कल से नहीं सीखते हैं हम
आँख मूंद कर कूद पड़ते हैं हम
काँटो में फंस जाते हैं हम
आधुनिक हैं हम
प्रचार माध्यम को
मुट्ठी में रखते हैं हम
अपना बड़प्पन खुद ही गाते हैं हम
वीणा –गीणा कुछ भी
सुनने नहीं देते हैं हम
हम ही देवताएँ हैं
आप हम ही हमारी मंथनी हाँ
आधुनिक हैं हम
युवाओं की कमजोरी को
ऐसे ही पहचानते हैं

उनके चरित्र की हत्या करते हैं अहम्
उन्हें दफनाते हैं हम
उस समाधि हमारा
बाक्स ऑफिस रखते हैं
रोते हुए माँ बाप को चंदा देते हैं हम
आधुनिक हैं हम
वेतन बढ़ाने को कहते हैं हम
पाठशाला में पाठ नहीं पढ़ाते हैं हम
उन्हीं को अंक भी देते हैं हम
स्तर घट गया कहकर
आवाज उठाते हैं हम
सारी गलती
राजनीतिक दलों पर थोंपते हैं हम
घर में पढ़ाने को बुलाते हैं हम
आधुनिक हैं हम
मक्खन से बनाए घी बताकर
डालडा तोलते हैं हम
चावल में कंकर मिलाकर
बेचते हैं हम
करोंडो कमाते हैं
नारियल फोड़ते हैं हम
करोड़ों पापों को धर्म के नाम से
पैसा चुकाते हैं हम
हम आधुनीक हैं
हम पीछे चलने पर भी
वह तरक्की कहलाता है
दूसरे आग कूदने पर भी
वहाँ होती है अवनति
कच्चे पक्के दाने परोसते हैं हम
उसे कहते हैं
अधिक वास्तविक दावत
हम आधुनिक हैं हम
बेरोजगार, आवारा,
घुमक्कड़ भिखारी
इन्हीं को लेते हैं प्रामाणिक

बाकी किसी को भी
नहीं मानते हैं जनता
पुरे समाज को
इन्हीं के स्तर पर उतारते हैं
आधुनिक हैं हम
हँसी में रोना,
रोने में हँसी का
मन की मलिनता को
सुगंध लगाते हैं हम
हमारी बकवास को कला कहते हैं
आप के कला की निंदा करते हैं
धिक्कारों को हमारे ही सरस्वती कहकर
विश्वास दिलाते हैं
आधुनिक हैं हम
कॉलेज का विद्यार्थी ही हमारा नेता है
जिसने पढाई पूरा किया था
वे सभी गणेश सा है
जिसने नौकरी पाया था
वह एक गुलाम कुत्ता है
तीस वर्ष पार किया वह बूढी लोमड़ी
आधुनिक हैं हम
दूसरी पार्टी जो खेलती है वह जुआ है
हमारी पार्टी जिसे स्वीकृत करती है
वह वेद है
हमें वह शादी ही है
कैसा मरने पर भी
दूसरे कितना श्रेष्ठ जीवन बिताने पर भी
वह मृत्यु बराबर है
आधुनिक हैं हम
पाँव पकड़कर रेल चढ़ते हैं हम
पीछे वालों को चढ़ने नहीं देते हैं हम
आँसू बहाकर सीट पाते हैं, हम
दूसरों को बैठने नहीं देते हैं हम
रिश्वत के नाम पर
दूसरों को पकड़वाते हैं

उसके बदले में हम लेते है भेंट
आधुनिक हैं हम

| |
|---|
| **निर्देश** : इस कविता का सस्वर बाचन कीजिए। |
| इस कविता का मौन वाचन कीजिए |

**भाव पक्ष -**

भोई भीमन्ना ने समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं वे कहते हैं कि हम किस प्रकार के आधुनिक बन गए हैं। समाज में मानव आधुनिक होने का झूठा आवरण ओढ़ लिया है। अपने को आधुनिक होने का दिखावा कर रहा है। प्रस्तुत कविता के माध्यम से आधुनिक होने की चेष्टा करता है। आज कल के लोग खुद आगे नहीं होते हैं और दूसरों को भी आगे बढ़ने में प्रोत्साहन नहीं देते हैं। धीमी से वह पीछे से भाग जाते हैं और आगे होने वाले नेता को ही देशद्रोही कहकर मारते हैं। इंदिरा गांधी से मिलकर हम साम्यवाद का ऐलान करनेवाले हम हिरण्याक्ष के गोद में जाकर छिप जाते हैं क्योंकि हम आधुनिक हैं।

आधुनिक युग में मानव भाग दौड़ कर रहा है उसे पूछने पर उसे ही नहीं पता कि मैं क्या कर रहा हूँ। कल्पना के पीछे दौड़ने लगें हैं। यंत्रों का निर्माण कर रहे हैं और उसमें ही गिर कर पीस जा रहें हैं। हम ही अनुबम जैसे बम फोड़ कर उसमें मर रहे हैं फिर कहते हैं हम आधुनिक हैं।

कवि आगे कहते हैं कि जगत की बात करते हो लेकिन मंदिर की चार दीवारे तक ही सीमित रहते हो। मानव सेवा को माधव सेवा कहकर खुद को पूजने को कहते हो और कहते हो हम आधुनिक हैं। घर में काम नहीं करते हो, खाना नहीं पकाते हो फिर भी कहते हो घर में नौकर बहार नौकर पति ही है। अपने आप को संवारते हो। बच्चों का जीवन सुधारते नहीं अपना दिमाग चलाते नहीं कभी मुँह को बंद नहीं रखते और कहते हो हम आधुनिक हैं। सिनेमा देखकर भगवान की तस्वीर फाड़कर किसी नायिका की तस्वीर अपने घरों में लगा रहे हो। रेडियो है तो सुनते हैं अखबार मिले तो पढ़ लेते हो अपने आप को तत्पर रहते हो। लेकिन कहाँ जाना है वही पता नहीं रहता फिर कहते हो हम आधुनिक है।

आधुनिकता में मानव दिखावे का शिकार बन रहा है। वे कभी किसी भूखे, गरीब पर दया नहीं करते हैं। उन्हें कभी पैसों की साहयता नहीं किए बल्कि कुबेरों को बड़ी बड़ी दावत देते हो। अपने पारिवारिक जीवन को आग लगाकर बगल में बैठते हो। स्वच्छ पवित्र शीलवान स्त्री देखकर उसके साथ बंदर जैसी हरकते करते हो और अपने आप को कहते हो हम आधुनिक है। खाने के लिए खाना नहीं है कहकर चिल्लाते हो, पैरों पर पड़ते हो जब किसी ने खाना खिलाया हो और उसी के साथ उलटा व्यवहार करते हो। जो मालूम नहीं खाली उसके बारे में बकते हो और जो मालूम है उसके बारे में छुप रहते हो और कहते हो हम आधुनिक हो। कहा जाता है कि खाना और चुना परब्रह्म स्वरुप है। खाना हम खाते हैं और चुना दूसरों के लिए छोड़ देते हैं। खुद काम करते नहीं हो और काम करनेवालों को करने नहीं देते हो। दूसरों के साथ झूठ बात करके जीतते हो और कहते हो हम आधुनिक हैं।

भीमन्ना आगे कहते हैं कि कुछ लोग आपने ही घर के परिवार के सदस्यों के साथ ठीक से व्यवहार नहीं करते हैं। बाहर लोगों के साथ बड़े सदव्यवहार करके अपने आप को अच्छा सदगुणी समझते हो और शरीर को सुंदर बनाते हो लेकिन बुद्धि को बहिष्कृत करते हो। दूसरों को दावत देते हो अपने स्वार्थी के झंडे फहराते हो, हुशारियों से दोस्ती करते हो जैसे ही अपना काम पूरा हो जाता है वैसे ही मित्रों को दूर भगाते हो। किसी की मेहनत को और जहाँ अच्छा हुआ वहाँ हमारा कहते हो, अपनी मेहनत ही कहते हो स्वार्थ हो सभा में बैठकर वादे पर वादे करते हैं कि जाति का खंडन करते हैं और समता की बात करते हो। कहते हो हम और आप सब एक हैं। जैसे ही सभा ख़त्म होने के बाद घर जाते हो और नहा लेते हो।

बोई भीमन्ना कहते हैं कि हम बच्चों को जन्म देगें और बाजारों में उन्हें नीलामी करेंगे। मानव जाति का उत्पीड़न करेंगे और जानवरों के दुःख को लेकर रोएगें। चौराहों के बीच कानून के पाठ पढायेगे। गली-गली में जाकर उनके ऊपर अन्याय करते हो और कहते हो हम आधुनिक हैं। कवि ने यहाँ भ्रष्टाचार का भी वर्णन करते हैं वे कहते हैं कि झूठ बुलकर प्रोजेक्ट बांधने के लिए दस लाख का काम कहकर उसके लिए पच्चीस लाख का टेंडर निकालते हो। वास्तविकता में पांच लाख का ही काम करते हो और बाकी पैसों से अपने जेब भरते हो। भीमन्ना कहते हैं कि हमें गरीबी की बस्तियाँ शहरों में दिखायी नहीं देती है और गाँवों में गरीब जनता की चीत्कार हमें सुनाई नहीं देती है। सिर्फ हम उपग्रहों को ही देखते हैं और रेडियो में मुनियों के बारे में सुनते हैं और हम आधुनिक हैं।

बोई भीमन्ना कहते हैं कि चील को खाने के लिए कौए दिये जाते हैं फिर भी चील हमारे मुर्गियों के बच्चों को उठाकर ले जाती है। फिर हम चील को कौए क्यों मार के दे इसलिए कवि कहता है बीते हुए कल से भी हम कुछ सीख नहीं सकते और भविष्य का भी नहीं सोचते हैं हम। आँख बंद कर के कूद पड़ते हैं कांटों में फिर भी हम आधुनिक है। युवाओं की कमजोरी को पहचान कर उनके चरित्रों की हत्या करते हैं हम। उन्हें दफनाकर उस पर हमारा ऑफिस बॉक्स बनाते हैं। उनके माता-पिता को हम चंदा देते हैं और हम आधुनिक है।

बोई भीमन्ना ने शिक्षक या अध्यापक की करतूती पर भी आवाज उठायी है वे कहते हैं कि शिक्षक वेतन बढ़ाने को कहते हैं लेकिन कोई काम नहीं करना चाहते हैं बच्चों को पाठ पढ़ाते नहीं। उन्हें कम अंक देकर उनका स्तर घट रहा कहकर आवाज भी हम उठाते हैं। जो भी यह गलतियाँ हैं सब राजनीतिक दलों पर थोप दे देते हैं और बच्चों को अपने पास ट्यूशन पढ़ने के लिए बुलाते हैं हम। डालडा को मक्खन से बना घी बताकर हम बेचते हैं। चावल में छोटे छोटे कंकर मिलाकर बेचते हैं हम, करोड़ों रुपये कमाते हैं हम। इन सारे पापों से मुक्ति मिलने के लिए एक नारियल फोड़ते हैं घर्म के नाम पर हम आधुनिक है। हमारी स्थिति बिकट और पीछे चल रही है फिर भी हम उसे तरक्की ही समझते हैं। बेरोजगार, आवारा, भिखारी और घुमक्कड़ लोगों को ही हम प्रामाणिक जनता मानते हैं बाकी किसी को भी नहीं पूरे समाज में इन्हीं स्तर पर रखते हैं। रोने में हँसाना और हंसने में रोना यही हम अभिनय करते हैं मन की दुर्गंघ को सुगंध लगाते हैं अपने बकवास को कला समझते हैं दूसरों के कला की निंदा करते हैं। अधिकारों को हमारी ही सरस्वती कहकर विश्वास दिलाते हैं। कॉलेज का विद्यार्थी ही हमारा नेता है जिसने

पढाई पूरा किया सभी गणेश जैसा है। जिसने सरकारी नौकरी पाया वह एक गुलाम कुत्ता है। तीस वर्ष पार किया हुआ बूढी लोमड़ी है और हम आधुनिक है। दूसरी पार्टी जो खेलती है वह जुआ है जो हमारी पार्टी जिसे स्वीकृति करती है वह वेड है। हम कैसे भी मरे वह विवाह है। दूसरे कितने भी जीवित रहें वह मृत्यु के समान है। विनंती कर के रेल चढ़ते हैं हम हमारे पीछे वाले लोगों को चढ़ने नहीं देते हैं हम। आसूँ बहाकर सीट पाते हैं हम और दूसरों को बैठने नहीं देते है हम। रिश्वत के नाम पर दूसरों को पकड़कर देते हैं हम उसके बदले में लेते हैं भेंट हम आधुनिक है।

**कला पक्ष**

1. प्रस्तुत कविता में समाज पर कटाक्ष व्यंग किया है।
2. समाज का यथार्थ को प्रस्तुत किया है।
3. व्यंग्यात्मक भाषा शैली का प्रयोग हुआ है।

## 16. 4 पाठ सार

भारतीय साहित्य में तेलुगु कवि बोई भीमन्ना का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय दलित समाज का यथार्थ को प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज जातिभेद और सवर्ण लोगों की मानसिकता को अपने रचना के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। बोई भीमन्ना के 'कालिपुतुनाई' (जल रही है झोपड़ियाँ)काव्य संग्रह को केंद्रीय साहित्य आकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। वे कई तेलुगु काव्य का संकलन किया है। उनका प्रसिद्ध नाटक 'पालेरू' नाम से हैं।

बोई भीमन्ना ने प्रस्तुत कविता 'जल रही हैं झोपड़ियाँ' के माध्यम से भारतीय दलित की परिस्थितियों के साथ उन पर किया गया सवर्णों के द्वारा अन्याय को प्रस्तुत किया है। 'धर्म' कविता में सभी धर्म को समन्वयन होने की बात हैं। 'जाति पांति' कविता में सभी जाति, धर्म, व्यवसाय के आधार पर अलग अलग मानने भ्रम को दूर करते हैं। सभी मानव एक है इसकी पहचान करते हैं। 'चढ़ने दीजिए ऊपर की सीढ़ि' कविता के माध्यम से कवि कहता है कि मिथकों के भ्रम से बाहर आने के लिए कहता है। वीर और महात्माओं का सम्मान करने को कहता है। 'न बदलने वाला' कविता में कवि का कहना है कि न बदलने वाला दलित है उसके लिए संविधान में कानून और आरक्षण कितने भी सुविधा दे लेकिन उसकी स्थिति जैसी की वैसी ही हैं। 'आधुनिक है हम' कविता के माध्यम से भारतीय समाज आधुनिक होने की चेष्टा की गई है।

## 16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त हुई है –

1. तेलुगु कविताओं का ज्ञान प्राप्त हुआ
2. तेलुगु कवि बोई भीमन्ना के रचनाओं का ज्ञान प्राप्त।
3. तेलुगु दलित समाज के बारे में जानकारी प्राप्त।

## 16.6 शब्द संपदा

| | | |
|---|---|---|
| 1. हकीकत | - | यथार्थता, वास्तविकता, सच्चाई |
| 2. समन्वयवादी | - | समन्वय संबंधी, समन्वय के सिद्धांतों को मानने वाला |
| 3. अमृत | - | वह दुर्लभ मिथकीय पेय जिसको पीने से अमरता प्राप्त होती है, सुधा, सोमरस |
| 4. विलाप | - | रोना, बिलख-बिलख कर रोने की क्रिया |
| 5. भस्म | - | चिता, भभूत, विभूत, राख |
| 6. तोंद | - | मोटापे या चरबी के कारण बढ़ा हुआ पेट |
| 7. भ्रम | - | दुविधा, संदेह, संशय |
| 8. पार्थ | - | अर्जुन, अर्जुन नामक वृक्ष, राजा, भूपति |
| 9. साम्यवाद | - | मार्क्स द्वारा स्थापित एक सिद्धांत जो वर्गहीन समाज की स्थापना पर बल देता है तथा जिसके अंतर्गत संपत्ति पर समाज का अधिकार होता है |
| 10. शीलवान | - | अच्छे शील या चरित्रवाला, सुशील, सदाचारी |
| 11. परब्रह्म | - | जगत से पर निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म |
| 12. नीलामी | - | नीलाम के रूप में बेचा या ख़रीदा गया |

## 16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

**खंड (अ)**

**(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग<u>600</u> शब्दों में दीजिए।**

1. 'आधुनिक हैं हम' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ।
2. 'न बदलनेवाला' कविता का सारांश लिखिए।
3. 'धर्म' कविता का भाव पक्ष एवं कला पक्ष पर विचार कीजिए।

**खंड (ब)**

**(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>200</u> शब्दों में दीजिए।**

1. बोई भीमन्ना का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. 'जल रही हैं झोपड़ियाँ कविता' का भाव पक्ष एवं कला पक्ष लिखिए।
3. भारतीय साहित्य में बोई भीमन्ना का स्थान बताइए।

## खंड (स)

### I. सही विकल्प चुनिए

1. बोई भीमन्ना को साहित्य आकादमी पुरस्कार किस रचना पर मिला?
2. बोई भीमन्ना की रचना 'पालेरू' किस विधा की रचना है ?
3. बोई भीमन्ना का जन्म कब हुआ ?

### I. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. 'चढ़ने दीजिए ऊपर की सीढ़ि' कविता के कवि ________ हैं।
2. बोई भीमन्ना को साहित्य अकादमी पुरस्कार सन् _____________को मिला।
3. बोई भीमन्ना का जन्म ______________ गाँव में हुआ।

### III. सुमेल कीजिए

| | |
|---|---|
| 1. 1973 ई. | (अ) राजनीतिक में प्रवेश |
| 2. 2001 ई. | (आ) पद्मश्री से सम्मानित |
| 3. 2005 ई. | (इ) पद्मभूषण से सम्मानित |
| 4. 1946 ई. | (ई) मृत्यु |

### 16.8 पठनीय पुस्तकें

1. जल रही हैं झोपड़ियाँ (काव्य संग्रह) – अनुवादक डॉ. जी. वी. रत्नाकर
2. गुड्सेल्लू कालिपोतुनाई (काव्य संग्रह) तेलुगु – डॉ. बोई भीमन्ना
3. भारतीय साहित्य